उस पार से

-डा. महेश जायसवाल

उस पार से

डा. महेश जायसवाल

डॉ० महेश जायसवाल लेखक, पत्रकार या भाषाविज्ञानी ही नहीं व्यसनी घुमक्कड़ भी हैं। मात्र ३० वर्ष की आयु में वे ईरान से कैनाडा तक और रूस से ग्रीस तक ३२ देशों की सघन यात्रा कर चुके थे। कई देशों की कई बार भी यात्राएँ कीं। 'उस पार से' उनके चुने हुए यात्रावृत्तों का संकलन है। इनमें कई यात्रा-वृत्त वर्षों पहले 'धर्मयुग', 'आजकल' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं जिनका पाठकों और समीक्षकों द्वारा बहुत स्वागत हुआ था। उन्हें अब पुस्तकाकार प्रस्तुत करने का उद्देश्य है आज के पाठक के लिए भी उस जीवंत और विचारोत्तेजक सफरनामा को उपलब्ध कराना। इसके अन्य दो भाग भी तैयार हो रहे हैं। हिन्दी यात्रा साहित्य में डॉ० जायसवाल का उल्लेखनीय योगदान है। इन रचनाओं में राहुल सांकृत्यायन की खोजी टूरिस्ट की दृष्टि और फणीश्वरनाथ 'रेणु' की रिपोर्ताज शैली का समाविष्ट प्रभाव स्पष्ट है। मन से टूरिस्ट होते हुए भी लेखक ने अपनी सहज बौद्धिकता और अनुसंधानात्मकता को छोड़ा नहीं है।

उस पार से

(यात्रा संस्मरण)

डा० महेश जायसवाल

उस पार से

ज्ञानलोक

राधा नगर : बल्केश्वर मार्ग : आगरा-४

योरोप में मेरा प्रथम दिन

□ □ □

"योरोपा, योरोपा। हिप हिप हुर्रा ! विव्वा योरोप !" पचीसों यात्री एक साथ चिल्ला उठे। 'योरोप, योरोप, योरोप जिंदाबाद !' उनका उद्घोष वायु-मंडल में दूर-दूर तक दौड़ गया। समुद्र-तट से पक्षियों का कोई दल जहाज की ओर आ रहा था। इतने कंठों का निनाद सुनकर वह भी सहम गया और जहाज से परे हटकर कुछ दूर-दूर उड़ने लगा। हम लोग बैठे ताश खेल रहे थे। तेरह दिन की निरंतर जल यात्रा से कुछ ऊब से उठे थे। तिस पर आज तो बादल घिर आये थे। मेघ क्षितिज से उठकर आकाश के मस्तक पर झूल आये थे। लगता था किसी भी समय बूंदें गिरने लगेंगी। लेकिन अब शाम के पांच बज चुके थे। आकाश ज्यों-का-त्यों रहा और मेघराज की आज्ञा की प्रतीक्षा करते-करते मेघ वृंद भी इधर-उधर फिर क्षितिज की ओर घूमने चले गये थे। फिर भी धुंधलका सा छाया हुआ था। समुद्र का नीला रंग साँवला हो गया था। दो-तीन घंटे डेक पर बैठकर हम चार-छह भारतीय बंधु भीतर ताश खेलने चले आये थे। कोलाहल सुनकर हम दौड़कर डेक पर गये। देखा हमारा जहाज पहाड़ों की एक छोटी शृंखला के निकट से गुजर रहा था। कई इताल्वी यात्री जो शायद बरसों बाद ऑस्ट्रेलिया से अपने मूल देश वापिस जा रहे थे इन पहाड़ों को देखकर किलक उठे क्योंकि ये पहाड़ सिसिली द्वीप (इटली का एक भाग) के थे। हम योरोप की धरती को देख रहे थे। प्रथम बार देख रहे थे। जिंदगी के बीस-पचीस बरसों से जिस योरोप की चर्चा दिन-रात सुनते रहते थे, जिस योरोप ने हमारी संस्कृति और इतिहास को इतना बदला और तोड़ा-मरोड़ा वह योरोप हमारे सामने दोनों ओर पहाड़ों की बाहें फैलाये समुद्र के आरपार खड़ा था। शायद स्वागत के लिए, शायद पहरे के लिए या शायद निगल जाने के लिए। कौन जाने ! अभी हम कैसे जान सकते थे ? अभी तो हम उसमें प्रवेश ही करने जा रहे थे। सच भी तो है भारत माता के कितने लाड़ले सपूत देश छोड़कर यहाँ आये और फिर कभी न लौटे। हमारी माताएं कहती रहीं कि योरोप उनको निगल गया। फिर भी वे कहती ही रह गयीं।

ठंडी हवा का एक झोंका आया। हम सिहर उठे। स्वेटर लेने नीचे केबिन में भागे। आखिर अब योरोप आ गया था। दिल की गर्मी कब तक साथ देगी? मोटा ऊनी स्वेटर पहन कर चुस्ती से फिर ऊपर पहुँचा और कैमरे से तत्काल बायें-दायें से तीन-चार चित्र खींच लिये। योरोप का प्रथम दर्शन स्मरणीय था।

जहाज ने और एक जोर लगाया तो हम सिसिली के प्रमुख नगर और बंदरगाह मैसीना जा पहुँचे। झुटपुटा-सा हो आया था। जहाज लंगर डाल रहा था. मगर हम नीचे कूद पड़ने को बेताब हो रहे थे। उस कल्पना-जगत् की ठोस धरती को हम स्पर्श करना चाहते थे। जहाज के द्वार पर पर्सर ने हमारे पासपोर्ट ले लिये और साफ-साफ दुहराकर कहा—"ठीक नौ बजे जहाज छूट जायेगा। इस समय छः बजे हैं। गुड लक एंड डोंट गेट लॉस्ट (शुभ हो और रास्ता मत भूल जाइयेगा)।"

मैसीना वस्तुतः पश्चिमी योरोप की प्रथम चौकी है। प्रायः प्रत्येक जहाज यहाँ रुकता है। पोर्ट सईद (मिस्र) से लगभग आधा भूमध्य-सागर पार कर चार दिन की अविराम यात्रा के बाद यहाँ पहुँचने पर उसे विश्राम ही नहीं ईंधन, यात्रियों के लिए भोजन आदि की आवश्यकता रहती ही है। खास तौर से उस जहाज को जिसे फ्रांस या इंग्लैंड तक और कई दिनों की यात्रा करनी है। इस-लिए कम से-कम दो-तीन घंटे मैसीना में ठहरकर योरोप में आने वाले नये यात्रियों को योरोप का प्रथम चित्र मैसीना में ही मिलता है। इस दृष्टि से इसका महत्व काफी है। और शायद मैसीना की नगरपालिका इस बात को महसूस करती है। योरोप के स्तर से भी देखने पर मैसीना यथेष्ट साफ-सुथरा, व्यव-स्थित और सजा-धजा लगा। हालांकि हम लोग समयाभाव के कारण बंदरगाह से बहुत दूर नहीं जा सके। हम में से कुछ अनुभवी लोगों ने अपना संदेह प्रकट किया कि बंदरगाह के इर्द-गिर्द विदेशियों के आगमन के कारण इसे विशेष रूप से संभाला गया है। वैसा ही जैसा बंबई में। भीतर अवश्य दूसरा चित्र होगा। जो भी हो, योरोप के न सही इटली के स्तर से भी मैसीना अत्यन्त आधुनिक और आकर्षक है। लगभग दो लाख की आबादी का यह इताल्वी शहर योरोप की कई विशेषताओं—यथा स्वच्छता, व्यवस्था, प्रकाश, सजावट—का सही प्रतिनिधित्व करता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी मैसीना महत्त्वपूर्ण शहर है। कहते हैं कि इसको

स्थापना आठवीं सदी ईसा पूर्व में कुछ समुद्री लुटेरों ने की थी। उसके बाद रोमन-साम्राज्य से टक्कर लेने वाले प्रायः प्रत्येक राजा ने मैसीना को पादाक्रांत किया। इसकी समुद्री और भौगोलिक स्थिति ऐसी विशिष्ट है कि योरोप की ओर बढ़ने वाला प्रत्येक अरबी, तुर्की या अफ्रीकी सेनापति को पहले इससे निपटना पड़ता। एक ओर अफ्रीका के अरब देश, दूसरी ओर यूनान, टर्की और युगोस्लाविया। मनुष्य से अधिक मैसीना को सताया है स्वयं प्रकृति ने। कई बार भूचाल ने इसे तहस-नहस किया। सन् १७४३ में भयानक प्लेग फैला जिस में ४०००० व्यक्ति मारे गये। सन् १७८३ में भूचाल से आधा शहर नष्ट हो गया। १८५४ में हैजा आया जिसने १५००० लोगों को हजम कर डाला। और कुछ ही बरसों में १९०८ की एक सुहावने प्रातःकाल में इस शहर पर वह कहर बरसा जो दुनिया में शायद ही कहीं बरसा हो। पृथ्वी दो क्षण के लिए थोड़ा कसमसायी और उसमें ८४००० मैसीनावासी समा गये। सैंकड़ों मकान ताश के खिलौने की तरह ढह गये। उस समय इस शहर की आबादी मुश्किल से एक लाख के ऊपर थी। अनुपात से, इतना बड़ा विनाश इतने कम समय में पहले किसी नगर ने नहीं झेला था। इतना ध्वंस हुआ है आज तक इस बंदरगाही नगर में कि अब पुराना कहने योग्य उसमें बहुत कम बचा। शायद इसीलिए वह इतना आधुनिक और व्यवस्थित है।

दो घंटे तक हम सड़कों, बाजारों और गलियों में घूमते रहे। रात की चकाचौंध देखकर हम सोचते कि यहाँ यह हालत है तो पेरिस, लंदन और रोम का क्या हाल होगा? वहाँ तो शायद धूप का चश्मा लगाकर रात में बाहर निकलना पड़ेगा। दरअसल हम लोग भारत के पुराने और मटमैले परिवेश से गये थे। बंबई, कलकत्ते में कभी जमी रह आये थे। पर उसका रंग अभी आँखों पर चढ़ा नहीं था। अतएव योरोप की चकाचौंध से हमारी आँखें ही नहीं बुद्धि भी चकरायी थी। दो दिनों बाद जब मैं हाम्बुर्ग (पश्चिमी जर्मनी में) पहुँचा तो कई छोटी सडकों पर यथेष्ट प्रकाश होते हुए भी मन-ही-मन कहा 'यहाँ कुछ और रोशनी होती तो कितना अच्छा होता।'

जहाज में लौटते ही खाने की पुकार हुई। शहर में हम कुछ हल्की-फुल्की चीजें खा आये थे। फिर भी डटकर खाया। जहाजी यात्रा में स्वयं न चलने पर भी ऐसा लगता है कि हम दिनभर चलते रहे हैं। कई प्रकार के खेल-कूद, तैरना,

डेकपर घूमना और समुद्री हवा । इन सबसे भोजन जल्दी पच जाता और हम कैंटीन से भी लेकर खाते । दूसरे, पिछले दिन भूमध्य सागर ने हमें इतना अजा झुलाया था कि प्रायः सभी को थोड़ी बहुत समुद्री बीमारी हुई थी । भारतीयों को विशेष तौर से इस विलायती झूले ने परेशान किया । पेट भर खाने की आदत से बाज न आने वाले लोगों को इतना मूल्य चुकाना ही चाहिए । भोजन करके उठे ही थे कि जहाज चल दिया । हम लोग डेक पर जा पहुंचे । उस समय हम मैसीना के प्रकाश-पुंज को छोड़कर उसके जलडमरूमध्य में प्रवेश कर रहे थे । यह जल मार्ग केवल दो से तीन मील चौड़ा है जो समुद्र के लिहाज से काफी संकरा है । रात में भी दोनों ओर पहाड़ियां और तट दिखायी दे रहे थे । कहते हैं यह जलडमरूमध्य दुनियां में सबसे सुन्दर जलमार्गों में से एक है । कुछ देर तक यह भव्य दृश्य देखने के बाद हमें भीतर जाने को विवश होना पड़ा । अब ठंड बढ़ गयी थी । कुछ कुहरा-सा भी हो रहा था ।

भीतर बैठकखाने में देखा किसी चीज की विशेष तैयारी हो रही थी । ख्याल आया आज की रात नाच और संगीत की रात है । अधिकांश योरोपियन यात्री प्रायः सभी इताल्वी कल नैपुल्स में उतर जायेंगे । इसलिए वे आज जी भर के शगल कर लेना चाहते थे । दूसरे, आज योरोप-दर्शन का प्रथम दिन था, योरोप की प्रथम रात थी । नाच और संगीत बिना कैसे गुजर जाती ! हम भारतीयों में एक सरदारजी को छोड़कर जिनकी पगड़ी, दाढ़ी और मूंछ सभी जहाज पर आते ही गायब हो गये थे और आज नाच में जाने के पहले किसी ने हाथ का छल्ला भी उतार देने को कहा तो सत् श्रीअकाल कहकर उस पर धावा बोल दिया । कोई नाचना नहीं जानता था । बाहर बैठे कांच से देखकर ही संतोष कर रहे थे । काली पोशाकें पहने लोग जोड़े बनाकर नाचते और फिर अपनी-अपनी जगह बैठ जाते । पर्सर ने प्रस्ताव किया कि अब महफिल समाप्त हो । पर कई नौजवानों ने प्रतिवाद किया—'अभी तो बारह भी नहीं बजे । नाच का मजा तो मध्य रात्रि के बाद ही आता है ।' बात कप्तान तक पहुंची । उसने निर्णय दिया—'नाच चलने दो ।' पर मेरे शरीर ने साथ न दिया । मैसीना में मीलों का चक्कर, सुस्वादु भरपेट भोजन और अब ठंडी हवा । मन गरम बिस्तर की ओर अधिक भाग रहा था ।

रात में तीन-चार बार नींद खुली । समुद्र कुछ उग्र हो उठा था । जहाज

कभी-कभी जोर से झूम उठता तो लगता कोई सोता हुआ जानकर हमें चोरी से गोद में उठाये भागा जा रहा हो। मेरी बर्थ के नीचे मुखर्जी थे। अंधेरे में मुझे हिलाते हुए बोले—"जायसवाल, जरा उठो। शायद मुझे फिर उल्टी होगी।"

"क्यों? कितनी बार हो चुकी है?"

"आज अभी नहीं हुई है। मेरा मतलब उस दिन पोर्ट सईद से जब चले थे तब........।" कहते ही मुखर्जी को जोर की मरोड़ उठी और 'ओख-ओख' करने लगे। बत्ती जलाकर मैं भी उठा। लेकिन देखा वे केवल हांफ रहे थे। उल्टी नहीं हुई थी। जहाज भी कोई खास नहीं डोल रहा था। जाहिर था कमजोर मन के कारण ही मुखर्जी को मितली आ रही थी। मैंने उनका मन बहलाने के लिए कहा—

"बंधुवर, इतनी हिचकोलें तो तैरते समय भी मिलती हैं। तुम तो तैरते होगे। बंगाली होकर तैरना जो न सीखे वह बंगाली कैसा!"

"नहीं भई, मुझे तैरना भी नहीं आता।" पहली बार मालूम हुआ। खैर, किसी तरह दवा की टिकिया ने उनकी मितली शांत की।"

दो-तीन घंटे ही और सोये होंगे कि बाहर पौ फटती दिखायी दी। अब हम नेपुल्स की सुन्दर खाड़ी में पहुंच गये थे। समुद्र शांत था। दूर-दूर तक नीली तरंगों और सूर्य की फैलती हुई रक्तिम आभा की लुका-छिपी चल रही थी। हमारा सफेद जहाज मानों रात्रि की खुमारी से शिथिल होकर धीरे-धीरे फिसलता हुआ चला जा रहा था। थोड़ी ही देर में नेपुल्स बंदरगाह में वह प्रवेश करेगा और खड़े-खड़े सोने की कोशिश करेगा ताकि यात्रा का अंतिम चरण—नेपुल्स से जेनोआ एक दिन की यात्रा—पूर्ण सजगता के साथ तय कर सके।

आदरणीय श्री मोहनलाल जी बाजपेयी उन दिनों रोम विश्वविद्यालय में अध्यापन-कार्य करते थे। वे भारतीय भोजनों के इतने शौकीन हैं कि योरोप में रहते हुए भी पापड़, दाल, आचार, मसालों वगैरह के बिना उनको सूना-सूना सा लगता। इसलिए जब भी कोई परिचित इटली आता या उधर से गुजरता उनके लिए कुछ सीधा-पिसान लेता आता। तब भला मैं इस अधिकार से क्यों वंचित रहता! चिट्ठी लिख दी थी कि फलां तारीख को फलां समय हमारा जहाज नेपुल्स पहुंचेगा। वैसे भी लम्बे अर्से से अपने भाई स्वरूप स्नेही अध्यापक को देखा नहीं था। इसलिए नेपुल्स बंदरगाह पर जहाज लगते ही मैं

अधीरता से बाहर निकलने की प्रतीक्षा करने लगा। नीचे किनारे कई लोग अपने मित्र-कलत्रों का स्वागत करने आये थे। तमाम रूमाल और हाथ हिल रहे थे। बाजपेयी जी कहीं न दिखे तो सोचा शायद बाहर हों। बाहर आया तो वहाँ भी नहीं। आधा घंटा इधर-उधर खोजता रहा। लाउडस्पीकर पर पुकार करायी। इधर अन्य साथी शहर देखने को उतावले हो रहे थे। उनका साथ छोड़ना नहीं चाहता था। इसलिए निराश होकर सामान वापिस केबिन में रख साथियों के साथ शहर चल दिया। बाद में पता चला कि पोर्ट सईद में छोड़ा हुआ मेरा पत्र उन्हें कुछ ही घंटे देरी से मिला था जिससे वे समय पर पहुँचाने वाली गाड़ी पकड़ न सके। खैर, बाद में वही खाद्य-सामग्री मैंने डाक के जरिये उनके पास रोम भेज दी।

हम लोग टैक्सियों की ओर बढ़ रहे थे कि हमारा ध्यान पास ही फाटक के पास कुछ लोगों की जमा हो गयी एक भीड़ की ओर गया। पंजों पर खड़े होकर मैंने भीतर झांका तो देखा वही इतालवी महिला काली मातमी पोशाक में अपने रिश्तेदारों से घिरी खड़ी थी जो हमारे साथ जहाज में आस्ट्रेलिया से आयी थीं। जहाज पर ही उनके पति का देहान्त हो गया था। उस समय जहाज सिंगापुर और कोलम्बो के बीच विशाल हिन्द महासागर में था। कई दिनों की यात्रा के बाद ही वह कोलम्बो पहुँचने वाला था। उधर नियम के अनुसार शव को जहाज पर तीन दिन से अधिक नहीं रखा जा सकता था। इसलिए कप्तान को बाध्य होकर उसकी अन्तिम क्रिया कर देने का आदेश देना पड़ा। जहाज पर एक ही प्रकार की अन्तिम क्रिया सम्भव होती है। वह है लाश को ससम्मान समुद्र के हवाले कर देना। अतएव चीखती-चिल्लाती इतालवी महिला के ही सामने नाविकों ने उसके पति के शव को पानी में फेंक दिया। कोचीन बन्दरगाह पर जब हमने यह हृदयविदारक घटना सुनी तो रोयें खड़े हो गये। सुन्दर, जवान और सम्पन्न महिला के इस दुर्भाग्य को याद कर हम उदास हो उठते। पहली बार हम लोग विदेश जा रहे थे। न जाने क्या हो! वह महिला जिधर से निकलती हम संवेदना और सहानुभूति में विगलित होकर एक ओर खड़े हो जाते। वह थी भी करुणा की साक्षात् प्रतिमा जो प्राय: काली पोशाक में इधर-उधर डोलती नजर आती। या डेक पर एक कोने में बैठी लहरों को एकटक देखती हुई गुमसुम बैठी रहती मानो समुद्र की अतल गहराई में अपने

पति की तलाश रही हो। कोचीन से जहाज छूटने के दो-तीन दिन बाद ही वह महिला बदलने लगी, हालांकि उसकी पोशाक अब भी वैसी ही थी। धीरे-धीरे वह संगीत, नृत्य, भोजन, खेल, कूद इत्यादि में भाग लेने लगी। एकाध बार तो वह किसी नौजवान के साथ रात में डेक पर हँसती-घूमती भी दिखायी दी। हम भारतीयों ने अपनी सरलतावश एक बार किसी विदेशी बन्धु से इसकी चर्चा की तो उन्होंने उससे भी अधिक सरलता से कह दिया—"तो इसमें क्या हर्ज है ? उसके पति को मरे आज बारह दिन हो भी तो गये ?" हमारे पास इसका कोई जवाब न था। हमारी जल यात्रा के बाकी दस दिनों में वह महिला अपने स्वाभाविक—या असली कहें—रूप में आ गयी थी। और आज अब उसके या उसके पति के सम्बन्धी उसे घेरे खड़े थे तो उसे विवश होकर अपने आँसू पोंछने पड़ रहे थे। बेचारी ! पति गया ! दिल टूट गया ! और अब दूसरों का दिल रखने के लिए उसे रोना पड़ रहा है। हमें उससे जितनी सहानुभूति कोचीन बन्दरगाह पर हुई थी उससे कम सहानुभूति नेपुल्स बन्दरगाह पर नहीं हुई। हम आगे बढ़ने लगे तो एक मित्र श्रीदास इधर-उधर खोजने लगे। मैंने पूछा तो बोले—"इस विधवा के उस नये 'बॉयफ्रेंड' को ढूंढ रहा हूँ जो उसके साथ रात को एकान्त में डेक पर घूमता था। वह तो कहीं नहीं दिखता।" हम लोग हँस पड़े। लेकिन महिला रिश्तेदारों के घेरे में खड़ी अब भी रोये जा रही थी।

लगभग ढाई हजार वर्ष प्राचीन नेपुल्स शहर की ख्याति जितनी आज है उतनी ही इतिहास में भी रही है जब वह नियापोलिस कहलाता था। 'नियापोलिस' बदलकर आधुनिक इतालवी में नापोली बन गया, किन्तु उसका संशोधित रूप 'नेपुल्स' अब भी अंग्रेजी में विद्यमान है। पहले यह एक स्वतन्त्र रजवाड़ा था। समुद्री स्थिति और खाड़ी के मुहाने पर होने के कारण आसपास के राजाओं, ड्यूकों और सरदारों के दाँत हमेशा इस पर गड़े रहते थे। आये दिन युद्ध होते। सल्तनतें बदलतीं और नेपुल्स इतिहास में पैठता जाता। कालांतर में चलकर यह रजवाड़ा इतालवी राज्य का ही एक अंग बन गया और सन् १८६० में नेपुल्स प्रान्त की राजधानी और प्रमुख नगर बन गया। अतएव स्वाभाविक ही इस शहर पर इतिहास के बेशुमार चिह्न चारों ओर बिखरे पड़े हैं। दुनिया के कम ही देश ऐसे ऐतिहासिक संग्रहालयों, प्राचीन राजमहलों

और गिरजाघरों के लिए इतने विख्यात हैं जितना नेपुल्स है । आस-पास की पहाड़ियों पर कई पुराने दुर्ग (कासिल) आज भी अपनी भव्यता के साथ खड़े हैं । नेपुल्स के पास ही है विश्वविख्यात ज्वालामुखी पर्वत वीसूवियस जिसने पोम्पाई की प्राचीन नगरी को नष्ट कर दिया था । पोम्पाई के खंडहर आज भी वीसूवियस की तराई में मौजूद हैं । इसकी संस्कृति, शिल्प, राज्य व्यवस्था रहन-सहन और निवासियों का सही परिचय देने वाले ध्वंसावशेष नेपुल्स के विशाल राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित हैं । इस प्रकार पुरातत्त्व शास्त्र की दृष्टि से भी नेपुल्स बहुत महत्त्वपूर्ण नगर है ।

प्राचीनता के अतिरिक्त नेपुल्स में नवीनता का भी मनोरम प्रतिनिधित्व और झाँकी मिलती है । कुछ ही वर्षों पहले यह इटली का सबसे बड़ा शहर था (अब मिलान हो गया है) । उद्योग, रंगीनी, ऐशो आराम वगैरह सब इसमें अन्य आधुनिक शहरों के अनुरूप ही हैं । बड़ी-बड़ी आधुनिक इमारतें, चौड़ी सड़कें, पार्क और एवेन्यू उसकी प्राचीनता में एक विशेष आकर्षण पैदा करते हैं । वस्तुतः शहर के भीतर पहुँचने के पहले ही नेपुल्स सबको आकर्षित कर लेता है । बन्दरगाह के बाहर खाड़ी में आते हुए जहाज से इस शहर का शायद सर्वोत्तम रूप दिखाई देता है । पहाड़ियों की तराई और ज्वालामुखी ढलान पर बसे होने के कारण इसकी पृष्ठभूमि किंचित् धूमिल और रहस्यमय लगती है । शहर की बनावट खाड़ी के किनारे किनारे कुछ ऐसी है जैसे कोई एम्फीथियेटर हो । नीचे समुद्र की सतह से बस्ती धीरे-धीरे ऊपर पहाड़ियों की ओर उठती जाती है और पीछे ऊँचाई के धुँआ से में छिपती जाती है । जहाज से इसकी इस विलक्षण बनावट को देखकर मुझे लगा मानो किसी विशाल रंगशाला में नीले जलाशय में जलपोतों की जलक्रीड़ा देखने के लिए दर्शकों की कोई भारी भीड़ आ जमा हुई है । शायद इस शहर का निर्माण किसी चित्रकार ने किया था जो कैनवेस के बदले धरती पर ही एक चित्र बनाना चाहता था । हम भारतीयों का छोटा-सा दल दक्षिणी यूरोप की इस महानगरी की विशेषताओं का मन ही मन रस लेता हुआ सड़कों पर घूम रहा था । जहाँ कोई रोचक चीज दिखाई देती ठहर जाता । बच्चों की-सी जिज्ञासा के साथ सिर उठाये इधर-उधर भटक रहा था । आस-पास की पहाड़ियों पर जाने के लिए सीढ़ियाँ नहीं दिखाई दीं तो हम लोग बिजली की गाड़ी में ही जा बैठे । सोचा जहाँ

तक ऊपर ले जायेगी जायेंगे । पर न जाने कैसे थोड़ी देर बाद फिर वहीं लौट आये । बाद में मालूम हुआ कि इसके दो भाग हैं । एक से चढ़ती है और दूसरे से उतरती है । उतरते समय वह सीधे नहीं बल्कि घुमावदार रास्ते से आती है इसलिये हम लोगों को उतरने का सन्देह अवश्य हुआ पर निश्चय ज्ञान नहीं हुआ । हँसते-खीझते हम फिर ऊपर चढ़ चले ।

कुछ घण्टों में नेपुल्स की सड़कों का चक्कर ही लगाया जा सकता था । इसके संग्रहालयों और ऐतिहासिक इमारतों को देखने के लिये हमने मन-ही-मन दूसरा अवसर चुन लिया । ये ही क्यों अभी तो इसके इर्द-गिर्द के महत्वपूर्ण स्थल—यथा वीसुवियस, पाम्पाई, काप्री द्वीप इत्यादि भी तो थे । अतएव हम अगली यात्रा की भूमिका तैयार कर दोपहर होते तक अपने जहाज पर आ गये । एक बार फिर जहाज छूटा—यह अन्तिम छूटना था । कल सवेरे हम अपने गंतव्य पर पहुँच जायेंगे । यह 'ओशियानिया' जहाज छूट जायेगा । ये सहयात्री छूट जायेंगे । इनकी मात्र स्मृतियाँ रह जायेंगी । कुछ मधुर, कुछ जटिल, कुछ अजनबी और कुछ आत्मीय । हमने योरोप का सर्वप्रथम बड़ा शहर देख लिया था—रात में नहीं दिन में । बिजली के कृत्रिम और रंगीन प्रकाश में नहीं, सूर्य के उसी प्रकाश में जो हमें मध्यप्रदेश के गांवों में भी मिलता था । उस सार्वभौमिक प्रकाश में योरोप को देखकर कुछ अपनापन महसूस हुआ । कुछ ढाढ़स भी बँधा कि शायद योरोप इतना अजनबी और बेगाना नहीं है जितना हम समझ बैठे थे । यहाँ भी वही सूर्य चमकता है, वही धरती है, वही आकाश है, वही पानी है जो भारत में है । यहाँ भी वैसी ही हवा बहती है, वैसे ही पेड़-पौधे हैं जैसे विन्ध्याचल की कछारों में । यहाँ भी चट्टानों से वैसी ही लहरें टकराती हैं जैसी बंगाल की खाड़ी में । ४-५ बज गये थे । जहाज अब भी इटली के समुद्र तटीय भाग के साथ-साथ चल रहा था । किनारे खड़े वृक्ष, नावें, पक्षी, मनुष्य और उनके गाँव-घर दिखाई दे रहे थे । जाड़े की शाम जल्दी-जल्दी उतरी आ रही थी । योरोप में मेरा प्रथम दिन समाप्त हो रहा था । और न जाने कितने दिनों का समारंभ होने जा रहा था । किन्तु कल की अपेक्षा मैं आज अधिक आश्वस्त था । विदेश का आतंक मन पर से हटने लगा था ।

इटली से डेन्मार्क

□ □ □

भोंपू की लगातार आवाज से हमारी नींद खुल गयी। केबिन के बाहर देखा तो कुछ समझ में न आया हम इस समय कहाँ हैं। भूमध्यसागर पर्वत की तरह शांत सोया था। पानी की सतह पर काफी ऊँचाई तक घना कुहरा छाया था। एक-दो सौ गज से आगे देख सकना संभव न था इसलिए हमारा जहाज अपने आगमन की सघोष सूचना देता हुआ मंथर गति से जेनोआ के बंदरगाह में प्रवेश कर रहा था। धीरे-धीरे बंदरगाह और शहर की बत्तियों का प्रकाश दिखायी देने लगा। यह हमारी चौदह दिनों की जल यात्रा के विराम का चिह्न था।

भारतीय बंधुओं ने दो दिन पहले से ही विलायती ठंड का ऐसा हौवा बना रखा था कि भूमध्यसागर में जितना हम प्रवेश करते उतनी ही हमारी ठंड बढ़ती जाती और उसके अनुसार शरीर पर कपड़ों की संख्या भी। तिस पर अब तो हम संपूर्ण रूप से योरोप में थे। अतएव हाथ-मुँह धोकर बाहर निकलते ही पहले इसकी चर्चा शुरू हुई। क्या पहना जाये ? कितना पहना जाये ? शरीर को गरम रखने के लिए क्या-क्या किया जाये ? समान ठीक-ठाक कर शरीर पर एक गधे का बोझ लादे हम नाश्ते के लिए जमा हुए तो सेन महाशय देखते ही बोले—

''भई जायसवाल, सामान स्टेशन पर रखकर सबसे पहले हमें ऊनी अंडर-वेयर, बनयानें और एक चुस्त हैट खरीदना है। यहाँ सबसे पहले खोपड़ी का बचाव करना चाहिए।'' मैंने उनकी बात का अनुमोदन किया। करता भी क्या ! ठंड का भय मेरी खोपड़ी पर भी तो छाया था। बचाव करना लाजिम था।

नाश्ता करके हम अपना-अपना सामान लेकर डेक पर आये तो जहाज किनारे लग चुका था। कर्मचारियों की सरगर्मी बढ़ गयी थी। किनारे डॉक पर तमाम लोग खड़े थे। कोई रूमाल हिला रहा था, कोई हाथ हिला कर कुछ कहने की चेष्टा कर रहा था तो किसी की आँखें अधीरता से अपने परिचित

को भीड़ में ढूँढ रही थी । बड़ी देर बाद कहीं जाकर यात्रियों का दल धीरे-धीरे सीढ़ियों पर उतरता नजर आया । जमीन पर शेक हैंड और चुम्बन आलिंगन का दौर चल रहा था । प्रायः सभी भारतीय यात्री एक साथ थे । दो या तीन के पीछे मैं था और बाकी मेरे पीछे थे । दृष्टि भटक कर सामने गयी तो देखा एक सज्जन ने अपनी परिचित महिला से ऐसे उत्साह और झटके से हाथ मिलाया कि बेचारी महिला का सारा शरीर झकझोर उठा । स्वागत में यह गरमाहट देखकर मुझे एक मजाक सूझा । नीचे उतरते ही सूटकेस जमीन पर रख पीछे की ओर घूम पड़ा और बड़े तपाक से हाथ मिलाकर दोस्तों का स्वागत करने लगा । मजाक सफल साबित हुआ । आस-पास खड़े तमाम लोग पुलिस के अधिकारी तक—इस दृश्य को देखकर कहकहा लगा उठे । सबसे पीछे थे सहानी जी अपने बच्चे के साथ । मेरे हाथ बढ़ाने के पहले ही उन्होंने मुझे फुर्ती से बाँहों में लेकर मेरा माथा चूम लिया ।

"वेरी ग्लैड टु सी माई चाइल्ड ! (तुमसे मिलकर बड़ी खुशी हुई, मेरे बच्चे) ।" कहकर बड़े स्नेह से मेरे बालों को सहला दिया । मेरे तो होश फाख्ता हो गये । उधर भीड़ ने जो ठहाका मारा कि सहानीजी का छोटा बच्चा तक तालियाँ पीटकर हँसने लगा । सहानी जी इक्के साबित हुए । मेरा सुर्ख मुँह देखकर बोले—"इसमें इतना शर्माने की क्या बात है ! मेरे बाल पक रहे हैं । पिता-पुत्र का अभिनय ही अधिक स्वाभाविक था ।"

दिन चढ़ आया था । कुहरा भी धीरे-धीरे फट रहा था । ठंड वैसी ही थी किन्तु अँधेरा कम हो जाने के कारण हमारा उत्साह बढ़ गया था । मुखर्जी और मेरा साथ हम्बुर्ग तक का था । अतएव हम दोनों ने तय किया कि दिन भर जेनोआ घूमें और रात की आखिरी गाड़ी से हम्बुर्ग के लिए रवाना हों । सामान स्टेशन में रखा और बाहर घूमने निकल पड़े । जेनोआ में विशेष कुछ देखने लायक न होने के कारण हम प्रायः सड़कों और गलियों में निरुद्देश्य घूमते रहे । अपरिचित स्थान में निरुद्देश्य घूमने का अपना एक महत्व है । आनन्द भी विशिष्ट मिलता है । एक गली में देखा कि पाँचवें मंजिल की खिड़की पर एक गृहिणी नीचे सड़क पर खड़े फल वाले से फल खरीद रही है । महिला ने खिड़की से डोरी में बँधी एक टोकरी नीचे गिरा दी । उसमें एक कागज था जिस पर

इच्छित वस्तुओं के नाम लिखे थे। दुकानदार ने हर चीज तौलकर टोकरी में भर दी और चीजों के दाम उसी कागज पर लिख दिये। महिला ने टोकरी ऊपर खींच ली और दाम रखकर खाली टोकरी फिर नीचे झुला दी। कोई बात-चीत नहीं। मोल-भाव नहीं और न ही दुकानदार खराब सौदा देकर अपना रोजगार बिगाड़ता है। बेईमानी की न जरूरत है और न ही गुंजाइश।

यहाँ बड़े से बड़े स्टेशन पर भी दस मिनट-का समय यथेष्ट होता है। लोग इतना हल्का सामान लेकर चलते हैं और गाड़ियों में इतनी जगह होती है कि लोग आराम से चढ़ जाते हैं। दूसरे, सब सवारियों के चढ़ जाने पर ही गाड़ी छोड़ी जाती है। यदि किसी कारण दो-चार मिनट देर भी हो जाये तो इस समय की पूर्ति ड्राइवर रफ्तार तेज करके कर लेता है। योरोप में मेरी यह पहली रेल-यात्रा थी। कुछ अनोखा-अनोखा सा लग रहा था। यह सुविधा, यह आराम, यह सहजता। कोई घबराहट नहीं, कोई हडबड़ी नहीं। कानून का भय और न अधिकारियों का आतंक। मुखर्जी और मेरे अतिरिक्त एक अन्य सज्जन भी उस केबिन में यात्रा कर रहे थे। थोड़ी देर में हमारी बात-चीत शुरू हो गयी। वे जर्मन्न थे। हमने गाड़ी विषयक अपनी परेशानी बतायी तो बोले—"पता नहीं क्यों इटली में ऐसे अनुभव बहुतों को होते हैं। मुझे स्वयं कई बार परेशान होना पड़ा। कहते अच्छा नहीं लगता किन्तु यह सच है कई बातों में इताल्वियों का विश्वास नहीं करना चाहिए।"

धीरे-धीरे दक्षिण जर्मनी के किंचित् पहाड़ी और जंगली भाग को पार करके गाड़ी मध्य जर्मनी के उपजाऊ और समतल भाग में पहुँच रही थी। मौसम भी अब साफ हो गया था और हम चारों ओर खेत, गाँव और गाँवों में बने बड़े बड़े कारखाने स्पष्ट देख रहे थे। हर दृश्य की भारतीय गांवों से मन-ही-मन तुलना करता। मकानों को छोड़कर प्रायः बाकी सब वैसा ही लगता। केवल भारत के छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटे खेतों के स्थान पर यहाँ लंबे-चौड़े प्लॉट थे। बाकी तो सब वैसा ही। प्रकृति क्या सचमुच सर्वत्र एक ही रूप रंग की है? वही नीला आकाश, वही क्षितिज, वही धरती, वही धूप, वे ही घास-पत्ते। फिर योरोप और भारत का भेद कहाँ रहा? लेकिन मैं अब योरोप में हूँ। एक नये जगत में हूँ। भेद होना ही चाहिये। यहाँ पगड़ी बाँधे घुटने तक कछनी मारे मूँछों-वाला किसान कहाँ है? यहाँ पीठ पर बच्चे को

बाँधे घास काटती हुई सांवली काया कहाँ है ? तो क्या देश-देश का भेद केवल मनुष्य-निर्मित है ? प्रकृति तो अपनी एकरूपता से सारे विश्व को एक सूत्र में बाँधती है। मन और मस्तिष्क पर सर्वथा एक नयी दुनिया में होने का ख्याल छाया था। दौड़ती हुई रेल से जो भी देखता उसकी तुलना भारतीय वस्तु से करने लगता। विशेष कुछ तुलना योग्य न मिलने पर सोचता तो क्या ये ही सब देखकर लौटने वाले लोग अपने देश में बड़े ज्ञानी, अनुभवी और विलायत पलट कहलाते हैं ? नहीं जरूर कहीं सूक्ष्म अध्ययन योग्य भेद है जो मेरी स्थूल बुद्धि अभी तक नहीं देख सकी और फिर हर वस्तु को निरखने में लग जाता। ट्रेन तेज रफ्तार से सफेद धुआँ फेंकती हुई दौड़ी जा रही थी।

'अडर ग्राउड' गाड़ी पर चढ़ने का पहला अनुभव हम्बुर्ग में हुआ। सबेरे का समय तमाम काम करने वाले मजदूर, क्लर्क और विद्यार्थियों से गाड़ी ठसाठस भरी थी। हर दो मिनट पर गाड़ी आती, स्वचालित यंत्र से अपने आप दरवाजे खुलते, क्षण भर में सवारियाँ भीतर चढ़तीं, फिर दरवाजे अपने आप बंद होते और गाड़ी चल पड़ती। बड़ी तेज रफ्तार, हर सेकेंड का पूरा-पूरा उपयोग, साथ ही यात्रियों का भी वैसा ही सहयोग। जिस गति के साथ यंत्र, प्रशासन और जनता का यह सम्मिलित कार्य-व्यापार चल रहा था उसे देखकर आश्चर्य ही होता। शांत और मंथर स्वभाव के व्यक्ति के लिए ऐसी दुनियाँ में रहना सचमुच असंभव लगा। पता नहीं वह कितनी गाड़ियाँ चूकेगा और कितनी बार मृत्यु के मुख से वापिस लौटेगा।

डेन्मार्क की गाड़ी भर चुकी थी। फिर भी बैठने को जगह मिल गयी। सामने की सीट पर एक सज्जन अपनी पत्नी और तीन बच्चों के साथ बैठे थे। दो बार मेरी ओर देखकर मुस्कराये, तीसरी बार जर्मन में कुछ कहा। और फिर, मेरी असमर्थता देखकर, चौथी बार अंग्रेजी में बोले—"यह आपकी पहली योरोप यात्रा है क्या ?" "जी हाँ। आपको यह आभास कैसे मिला ?" मैंने पूछा।

इस पर उन्होंने कई सूक्ष्म बातों के उदाहरण दिये। चेहरे पर संकोच का भाव, दरवाजा खोलने का मेरा तरीका, अभी तक शरीर पर ओवरकोट लादे रहना इत्यादि। योरोप की गाड़ियों और यात्रा सम्बन्धी अन्य बातों से परिचित व्यक्ति सुनिश्चित पैरों से भीतर प्रवेश करता है, सहज ढंग से

दरवाजा खोलता है, आराम से सूटकेश ऊपर रखकर धीरे-धीरे कोट के बटन खोलता है और फिर चारों ओर देखते हुए स्वभावानुसार मुस्कराकर या नथुने फुलाकर अपने सहयात्रियों से मौन परिचय करता है । इत्मीनान से कोट और गुलूबंद खूंटी पर टाँगता है और तब निकलती है उसकी सिगरेट । यह है योरोप के औसत यात्री की यात्रा का प्रथम दृश्य । उनकी इस तीक्ष्ण दृष्टि की मन ही मन सराहना कर रहा था कि उनकी बुजुर्गों जैसी आवाज सुनायी दी ।

"कोट उतारिये । छोटा बैग ऊपर कहीं रख दीजिए और आराम से बैठिये । शायद आप भी कोपेनहागेन की तरफ जा रहे हैं ?"

"जी हाँ । इस गाड़ी से तो मैं केवल फ्रेडरेशिया तक जाऊँगा । इसके बाद एसबियर्ग । वहाँ से स्कियान होकर बोरिस । सारे दिन का सफर है ।" वे थे भी बुजुर्ग । चालीस के लगभग । आज्ञाकारी बालक की भाँति मैंने सब सामान ठीक से ठिकाने लगाकर कोट उतारा और आराम से बैठ उनके दूसरे आदेश की प्रतीक्षा करने लगा । लेकिन इस बार उनकी पत्नी की बारी थी । सिगरेट निकालकर बोलीं—"लीजिए ।" यह आदेश मेरे विमुख पड़ा । उल्लंघन करना ही पड़ा । हमारा वार्तालाप शुरू हो गया । फ्रेडरेशिया आते आते हम सब इतने घुल-मिल गये कि बच्चों ने जितनी बार केक, बिस्कुट खाये उतनी ही बार मुझे खाना पड़ा । हर बार श्रीमतीजी कहतीं—

"लीजिए भी । आप तो सिगरेट भी नहीं पीते । ऐसे ठन्डे देश में निटल्ले बैठने से और ठंड लगती है ।" अब मुझे ख्याल आया कि बीमार होते हुए भी ये महिला अपने पति से कहीं अधिक सिगरेट पी रहीं हैं । स्टेशन प्रायः आ गया था । अतएव प्रति घन्टा सिगरेट की खपत का ब्योरा न लगा सका । भगवान से मन ही मन उनके बेहतर स्वास्थ्य और सही आरोग्य ज्ञान के लिए प्रार्थना की, बच्चों के गाल थपथपाये, पति-पत्नी से हाथ मिलाये और नीचे उतरने लगा तो सज्जन बोले—"गली में भीड़ है । मैं सामान खिड़की से दे दूंगा । आप पहले उतर जायें ।"

यह था एक डेनिश व्यक्ति से प्रथम परिचय और डेनिश भूमि का प्रथम स्पर्श । पाँच मिनट बाद एसबियर्ग के लिए गाड़ी मिलती थी । अतएव वहीं प्लेटफार्म पर चहलकदमी करता रहा । बादल सबेरे से ही घिरे थे । ठन्ड भी कम न थी । डेन्मार्क जिसके लिए प्रसिद्ध है वह हवा भी धीरे-धीरे बह रही

थी। घर छोड़े पच्चीस दिन हो गये थे। इतने दिनों की लगातार यात्रा से मन और शरीर दोनों में क्लान्ति आ गयी थी। अस्थायी घर ही सही बोरिस पहुँचने को जी अकुला रहा था। अभी दो गाड़ियाँ और बदलनी थीं। स्कियान पहुँचकर देखा बोरिस के लिए दो घण्टे तक कोई गाड़ी नहीं है। स्कियान-बोरिस की दूरी केवल छः मील है। अतः स्टेशन मास्टर ने सीधे बोरिस फोन करने की सलाह दी। फोन पर हमारे प्रिंसिपल श्री ड्यूजेन की गम्भीर वाणी सुनायी दी।

"डेन्मार्क में आपका स्वागत करता हूँ। स्टेशन पर प्रतीक्षा करें। दस मिनट में कार लेकर पहुँचता हूँ।"

थोड़ी देर बाद बाहर का द्वार खुला। खिचड़ी बालों के नीचे चमकती अनुभवी आँखों पर कीमती चश्मा लगाये साठ वर्षीय एक सज्जन भीतर आये। पितृतुल्य स्नेह और मुस्कराहट से हाथ मिलाते हुए बोले—

"मैं ड्यूजेन हूँ। ये हैं इंग्रिड और गानहिल, मेरी पुत्रियाँ। यात्रा में विशेष कष्ट तो नहीं हुआ ?"

तीनों ने मेरी तीनों चीजें उठा लीं और कार की ओर बढ़े। मैं जब तक उन्हें ऐसा करने से मना करूँ सारा सामान कार तक पहुँच चुका था। मुझे भी ऐसा लगा, अब घर पहुँच गया हूँ। यात्रा समाप्त हो चुकी है। ●

जल कन्या के देश में

□ □ □

जल देश की मत्स्यांगना राजकुमारी मानवदेही राजकुमार को देखकर मोहित हो गयी। किन्तु बिना पैरों के वह धरती पर कैसे जाये ? निराश हृदय से रोज वह एक चट्टान पर बैठी अपने राजकुमार को देखा करती। मनुष्य की दुनिया से उसे इतना अनुराग हुआ कि अन्त में वह अपना सब कुछ त्याग कर राजकुमार का प्रेम जीतने चली। मनुष्य की अविनश्वर आत्मा पाने के लिए भोली प्रिया ने अपनी तीन सौ वर्षीय आयु त्यागी, अपनी वाणी खोयी और असह्य शारीरिक यातना का अभिशाप लिए वरदान रूप में पाये दो मानवीय पैरों से वह राजकुमार के महल में पहुँची। पन्द्रह वर्षीया प्रणयिनी को दुर्भाग्य ने वहाँ भी न छोड़ा। चली थी विजयिनी होने पर एक अन्य मानवी राजकुमारी से पराजित होकर अभिशाप के अनुसार समुद्र का फेन बन गयी। ·······किन्तु डेन्मार्क के मूर्तिकार एरिकसेन ने अमर कथाकार एन्डरसन की कल्पनाप्रसूत वियोगिनी को अमरत्व प्रदान कर दिया। समुद्र के किनारे एक शिला पर बैठी मुग्धा राजकन्या आज भी उदास आँखों से अपने राजकुमार की प्रतीक्षा कर रही है।

वैरा मेज पर से प्लेटें हटा रहा था और मैं अनन्त प्रतीक्षा में लीन इस पाषाणी की कल्पना में मग्न था। जाड़े की रात में, शहर के बाहर, समुद्र के किनारे, बरफ-सी ठण्डी चट्टान पर क्या वह अब भी बैठी होगी ? विचार रोमांचक होते हुए भी मन को भाया नहीं। इसकी प्रतिक्रियास्वरूप मन-ही-मन मैं इतना उत्कंठित हो उठा कि दृढ़ संकल्प पैरों से ही रेस्टोरां के बाहर आया।

समुद्र के किनारे जब बस से उतरा तो अनायास ही आँखें ऊपर उठ गयीं। फीकी चाँदनी अपनी दुर्बल किरणों से रात्रि की कालिमा से पुते आकाश को धोने का प्रयास कर रही थी। शहर की रोशनी में पहले चाँदनी का आभास ही नहीं मिला था। पेड़ों की कतार से होता हुआ पार्क का चक्कर लगाकर बाँधनुमा एक ऊँची सड़क पर पहुँचा तो सामने समुद्र आनन्द से डोल रहा

था। दूर बन्दरगाह में जहाज भोंपू बजाते हुए इधर-उधर आ-जा रहे थे। प्रकाशित खिड़कियों का प्रतिबिम्ब पानी पर पड़ रहा था, मानों उसके साथ-साथ पानी के भीतर भी जहाज आ-जा रहे हों। लहरें उन अवास्तविक जहाजों का अस्तित्व मिटाती हुई आगे बढ़तीं तो लगता पानी में तैरती प्रकाश की दीवार घुलकर जलवत् हो जायेगी किन्तु थोड़ी देर में फिर कोई जहाज आता और एक नयी दीवार की सृष्टि करता हुआ, लहरों को एक खिलौना देता हुआ चुप-चाप चला जाता। प्रकाश, लहर और जहाज की यह जलक्रीड़ा निर्बाध चल रही थी। बायीं ओर दृष्टि गयी तो देखा एक युवा जोड़ी समुद्र का अवलोकन कर रही है। उनके निकट जाकर भरसक विनम्र स्वर में कहा—"क्षमा करें, क्या बता सकते हैं 'लिल हाउफ्रू' कहाँ रहती हैं ?" डेनिश में मत्स्यांगना नारी को 'हाउफ्रू' कहते हैं और 'लिल' का अर्थ होता है छोटा। उस व्यक्ति की आँखों से लगा कि वह मेरा अभिप्राय समझ गया है, किन्तु उसका अभिप्राय मैं न समझ सका। पुरुषत्व के इस अभिप्राय संकट की मार्जना की नारीत्व ने अंग्रेजी बोलकर—"मैं बताती हूँ आपको। सीधे समुद्र के किनारे-किनारे चलते जाइये। दो-तीन सौ मीटर जाने पर आप स्वयं बायीं ओर देख सकेंगे।" मैंने उन्हें धन्यवाद कहा और आगे बढ़ गया।

झुका सिर तब उठा जब बगल में शिलासीन राजकन्या की उपस्थिति महसूस हुई। गोलाकार एक काली चट्टान पर घुटने मोड़े, शिथिलता से दोनों हाथ गोद में डाले वह एकाकिनी बैठी थी। लम्बी वेणी पीठ पर झूल रही थी। लाचार प्रेम की आकांक्षा में किंचित् पीठ झुकाये उस हताश कुमारिका की थकी आँखें जल के उस पार सुदूर क्षितिज पर अपने निर्मोही राजकुमार को खोज रही थीं! आकाश की पीठिका लिए चन्द्रमा के धुँधले प्रकाश में बैठी वह आकृति यही आभास देती थी मानों कोई सद्यःस्नाता षोडशी अपना शरीर सुखाने ऊँची चट्टान पर बैठ गयी हो। मैं भी नीचे एक छोटी-सी चट्टान पर बैठ गया और बैठा रहा।.........अचानक लगा कि किनारे पर लहरों के टकराने की आवाज सुनायी देने लगी है। समुद्री बयार बहने लग गयी थी। रात घिरती आ रही थी। देखा तो दस बज चुके थे।

मैं जहाँ ठहरा था वह वस्तुतः होटल नहीं सैनिकों के रहने का एक अड्डा था जहाँ वे सप्ताहांत में छुट्टी बिताने आते थे। किराया कम भोजन सस्ता।

हमारे स्कूल की एक अध्यापिका की बहन मिस नीलसेन इस आवास में काम करती थीं। जब बोरिस से चलने लगा तो वे बोलीं—

"कोपेनहागेन बड़ा शहर है। होटल महँगे हैं। अकेले भटकना न चाहो तो यह पता है। मेरी बहन अँग्रेजी भी बोलती हैं।"

सबेरे जरा देर से सोकर उठा। सैनिक गृह का रिस्टोरां खाकी रंग की ऊनी वर्दी पहने सिपाहियों से खचाखच भरा था। उस बड़े भारी कमरे में केवल मैं ही मुफ्ती पोशाक में था। अतएव स्वाभाविक ही कमरे में मेरे घुसते ही एक साथ सैकड़ों आँखें मेरे ऊपर टूट पड़ीं। क्षण भर के लिए सकपका गया कि कहीं गलत जगह तो नहीं आ पहुँचा। अस्तव्यस्त-सा आगे-पीछे हो रहा था कि मिस नीलसेन एक कोने में दिखायी दीं। सैनिकों को वे यन्त्रचालित टंकी से कॉफी दे रही थीं। सबकी दृष्टि का अनुसरण करते हुए उन्होंने भी मुझे देखा और इशारे से अपने पास बुलाया—

"गुडमार्निग ! नींद अच्छी आयी न ? नाश्ता यहीं करेंगे ?"

"धन्यवाद ! आराम से सोया। नाश्ते से पहले मैं नहाना चाहता हूँ।"

"हाँ, हाँ। दाहिनी ओर तीन-चार कमरों के बाद 'बाथरूम' है।"

आज नहाने का ऐसा मुफ्त सुअवसर देख कर पुलकित हो उठा। मैं था और था केवल 'बाथरूम'। दो महीने की कसर निकालने बैठा। एक घण्टे तक नहाया। बाहर आया तो मिस नीलसेन बोलीं—

"इतना नहाया कि आँखें लाल हो गयीं !" फिर मधुर परिहास से बोलीं—"लगता है आपने शराब पी रखी है।"

"तो बताइये नाश्ते में आपके यहाँ क्या है ?"

"मांस की 'सैंडविचें' हैं, केक हैं, कॉफी, दूध।"

"मांस वगैरा मैं खाता नहीं। और केक·······"

"अच्छा ! तो आप डेन्मार्क में रहेंगे कैसे ?"

"अभी तक तो जिन्दा हूँ। जान पर आ जायेगी तो देखूँगा। एक बोतल दूध और एक केक। कुछ फल वगैरा नहीं हैं ?"

"यहाँ फल कौन खायेगा ! इन फौजी बेचारों को इतना कम पैसा मिलता है कि इनके लिए ऐसी एक अलग सराय खोलनी पड़ी।" मेरे पीछे भीड़ लग गयी थी। अधिक बात करने का मौका नहीं था। दूध की बोतल और केक

लेकर जगह की तलाश में चला। खंभे के पास लगी एक मेज पर दो युवक सैनिक बैठे थे। बाकी दो कुर्सियाँ खाली थीं। मैंने अपनी बचकानी डेनिश में कहा—

"क्या यहाँ बैठ सकता हूँ ?"

जवाब मिला अंग्रेजी में। "बड़ी खुशी से। बैठिये, बैठिये मेहरबान !" बड़े उत्साह से दोनों बोले। दो मिनट की मौन भंग की कदाचित् गम्भीर दिखने वाले युवक ने—

"निश्चित ही आप डेनिश नहीं दिखते ?"

"बिलकुल नहीं। उतना ही जितने आप भारतीय नहीं दिखते।"

"अच्छा, तो आप भारतीय हैं। मैं भी यही सोच रहा था। लन्दन में मैं कई भारतीयों को देख चुका हूँ। एक बार मैं एक भारतीय रेस्टोरां में भी गया था। लेकिन मुझे खाना नहीं रुचा। ओह ! मुझे भारत के लोग बहुत पसन्द हैं। बड़े जिन्दादिल और बिनोदी होते हैं। लन्दन के रेस्टोरां में दाढ़ी, मूँछ और पगड़ी वाले…………।"

"तब आप ठीक कहते हैं। अन्यथा आज का औसत भारतीय, जो योरोप आता है अपेक्षाकृत गम्भीर होता है।"

"क्यों ?" कुछ हँसमुख चेहरे वाले सैनिक ने इस बार मुँह खोला।

"इसलिए कि उन्हें होना चाहिए।"

"आप यहाँ किस सिलसिले में आये हैं ?"

"कृषि-कर्म के लिए।" बाद में दिखा कि यह गम्भीर प्रकृति का युवक सामान्य रंगरूटों की अपेक्षा अधिक विचारशील और शरीफ है। गरम जल के लम्बे स्नान के बाद शरीर हल्का और कुछ शिथिल-सा हो रहा था। अतः मैं भी निढाल-सा कुर्सी पर पड़ा गप्पों में लगा रहा। भारत-डेन्मार्क, कृषि, सेना-युद्ध, शहर-गाँव, गांधी-नेहरू, रूस-अमरीका तमाम विषयों पर हम लोग चर्चा करते रहे। ध्यान खींचा एक महिला की पुरुषोचित गम्भीर घोषणा ने—"गरम भोजन तैयार है।"

घड़ी देखी तो बारह बजने वाले थे। मैंने कहा—"आप लोग तो खाना खायेंगे। मैं चलूं अपनी सैर के लिए।"

"क्यों, आप नहीं खायेंगे ?"

"खाऊँगा क्यों नहीं। लेकिन अभी नहीं। थोड़ा घूमने के बाद दो-तीन बजे खाऊँगा। दूसरे, यहाँ मेरे लायक शायद ही कुछ हो, निरामिष जो हूँ।"

"हाँ, हिन्दुस्तान में तो सामान्यतः लोग शाकाहारी होते हैं।" कहकर वे आपस में कुछ कहने लगे। फिर हँसमुख युवक ने व्यंग्यपूर्ण लहजे में कहा—

"यदि आप हमारी संगति नापसन्द न करें तो हम तीनों साथ घूमने चलें ?"

"इसमें नापसन्द करने की क्या बात है। हम तीनों चलेंगे।" दूसरा युवक बोला। कुछ कहना मेरे लिए अनावश्यक था।

ट्राम तक पहुँचते-पहुँचते हमने तय किया कि पहले चिड़ियाघर चला जाये। यदि मौसम ऐसा ही रहा तो तब तक वहीं के रेस्टोरां में भोजन करेंगे। घन्टे आध घन्टे में बरफ गिरनी कम होगी ही। रास्ता लम्बा था। शहर के बाहरी हिस्से में बसे चिड़ियाघर के निकट जब हम पहुँचे तो बरफ गिरनी प्रायः बन्द हो गयी थी। दो घन्टे तक हम कोपेनहागेन के सुप्रसिद्ध चिड़ियाघर में घूमते रहे। पक्षियों का इतना बड़ा और महत्वपूर्ण संग्रह योरोप के इने-गिने चिड़ियाघरों में ही है। हाथियों में एक हिन्दुस्तानी भी था—दुबला-पतला, निस्तेज। सोचा, क्या इन देशों में शाकाहारियों का सर्वत्र मेरा जैसा ही हाल है ? जबाब मिला बगल में खड़े अफ्रीकी गजराज से—स्वस्थ, झूमता हुआ, रह-रह कर सूंड़ उठाकर अपनी प्रफुल्लता प्रगट करता। ईर्ष्या हुए बिना न रही। फिर भी डेन्मार्क में उसके जीवन-साफल्य पर बधाई दी। रहम आया तो केवल भारतीय ऐरावत पर। ऐसी ठंड में भी तमाम छोटे-छोटे बच्चे अपने माता-पिता के साथ या स्वयं ही दल बनाकर चिड़ियाघर देखने आये थे। सैनिक बंधुओं ने बताया बाल दर्शकों की ऐसी भीड़ असामान्य बात नहीं है।

"योरोप में हम लोग जानवरों को बहुत प्यार करते हैं।"

"स्वभाववश या परिस्थितिवश ?" मैंने पूछा।

"शायद इसलिए कि हमारे यहाँ जंगल न होने के कारण जानवरों का अभाव-सा है।"

"सच बात अब कही आपने।" इस पर दोनों हँस पड़े।

चिड़ियाघर की लम्बी टहल ने भूख से बेचैन बना दिया था। मैंने बेतकल्लुफी से कहा—

"आप लोग तो नाश्ते में तमाम सारा खाके आये हैं। मेरा एक बोतल दूध और एक केक कब तक काम आयेगा? जल्दी कोई रेस्टोरां तलाशा जाये।" मेरे योरोपीय जीवन में यह पहला अनुभव था कि शिष्टाचारवश इन दो डेनिश युवकों ने मांस नहीं खाया। मैंने उन्हें समझाया—मैं वैसा शाकाहारी नहीं हूँ जैसा आप लोग भारतीयों के बारे में प्रायः सुना करते हैं। छुआछूत का भाव मेरे मन में नहीं है। आप निस्संकोच मेरे साथ बैठकर इच्छानुरूप भोजन कर सकते हैं। लेकिन हर बार वे यही कहते—"आपके साथ आज हम निरामिष आहार का मजा लें तो क्या हर्ज है। जीवन में पहली बार और शायद अन्तिम बार भी।" प्रवृत्ति ऊर्ध्वमुखी थी। अतः मैंने उन्हें मन-ही-मन बधाई दी। आलू, मटर, सलाद और केले की पुडिंग खाकर जब हमने हथियार डाल दिये तो मैंने पूछा—

"कहिये, कैसा लग रहा है?"

"ठंडा-ठंडा!" मजाक जंचा। कुछ झेंपते हुए कहा—

"शायद इसीलिए आप लोग इस भोजन से इतना दूर भागते हैं।"

कोपेनहागेन अपने संग्रहालयों के लिए प्रसिद्ध है। राष्ट्रीय संग्रहालय तो कदाचित् दुनिया के सबसे पुराने और बड़े संग्रहालयों में है। इसके अतिरिक्त अन्य कई संग्रहालय भी हैं—जैसे शस्त्र-संग्रहालय, कला-संग्रहालय इत्यादि। भोजन करते समय हमारा कार्यक्रम शस्त्र-संग्रहालय देखने को बन चुका था। इसलिए प्लेटें साफ करते ही हम संग्रहालय के लिए चल पड़े। लाल किले, हैदराबाद, झांसी, इलाहाबाद वगैरा में अस्त्र-शस्त्रों का संग्रह पहले देख चुका था। किंतु मनुष्य ने आत्म संहार के लिए कैसे-कैसे औजार ईजाद किये हैं और इस क्रिया में उसने कितनी उन्नति की है इसका अनुभूतिमूलक बोध कोपेनहागेन के उस संग्रहालय को देखकर ही हुआ। हिंस्र पशुओं को प्रकृति ने पैने नख और दाँत स्वतः प्रदान किये। मनुष्य को माँ का यह पक्षपात भला न लगा और उसने प्रतिकार किया प्रकृति-प्रदत्त बुद्धि से सैकड़ों हथियार बनाकर। आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है और मनुष्य की यह आवश्यकता जंतुओं से कितनी तीव्र और अशेष है इसका साक्षी है यह संग्रहालय। मानवीय पशुता का मानसिक इतिहास इस विशाल इमारत में बिछा पड़ा था। अपना आतमघाती जिघांसु चेहरा देखने के लिए मनुष्य को इससे उत्तम दर्पण की

शरीर बरफ से ढक गया। कांच में अपनी आकृति देखी तो काल्पनिक हिम-मानव की याद हो आयी। सामने से एक अन्य सज्जन आकर खड़े हो गये। एक दूसरे की शक्ल देखते ही हम दोनों हँस पड़े। उनकी हुलिया मुझसे भी मजेदार थी शायद काफी दूर से आये थे। वे बोले—

"कहाँ ?"

"घूमने"

"इस मौसम में ?"

"खेत में हल चलाने से फिर भी बेहतर।"

ठठाकर हँस पड़े। मेरी डेनिश और उनकी अँग्रेजी की क्षमता यहीं तक थी इसलिए हम दोनों चुप हो रहे। दोनों ने एक दूसरे की बरफ झाड़ी और गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगे।

स्टेशन छोटा-सा ही था फिर भी समझ में न आया टिकट कहाँ से लूँ। एक जगह दरवाजे पर डेनिश में कुछ लिखा था जो समझ नहीं सका। सोचा—अभी दूसरे यात्री भी तो आ रहे हैं। ये लोग टिकट लेने जायेंगे तो मैं भी पीछे हो लूँगा। बेकार इधर-उधर दरयाफ्त करने में क्यों अपनी थोड़ी-सी डैनिश को लजाऊँ। जब देखा कि गाड़ी आ रही है और खिड़की पर टिकट देने या लेने वाला कोई नहीं है तो चिंतित हो उठा। उधर यात्री लोग दरवाजा खोल प्लेटफार्म की ओर चले। इतने में गाड़ी आकर खड़ी हो गयी। सोचने का अब समय नहीं था। मैं भी बढ़ा। बगल के दरवाजे से स्टेशन मास्टर निकले तो मैंने प्रायः हकलाते हुए कहा—"मेरे पास टिकट नहीं है। कहाँ·······?"सुनते ही हँस पड़े। गार्ड से एक मिनट रुक जाने को कहा और मुझसे सौ क्रोन का नोट लेकर भीतर गये। एक मिनट में टिकट और बाकी रेजगारी मेरे हाथ में रखते हुए और बड़ी आत्मीयता से मेरे कन्धे पर हाथ रखकर बोले—"यात्रा सुखद हो।" गार्ड महोदय ने मेरे हाथ से सूटकेस लेकर गाड़ी में रख दिया। बोले—"कृपया भीतर तशरीफ रखें।" मेरे भीतर जाते ही उन्होंने दरवाजा बन्द किया, ड्राइवर को हाथ से संकेत दिया और गाड़ी चल पड़ी। इधर मैं सरकते हुए डब्बे में अब भी खड़ा-खड़ा सोच रहा था—अपने देश में कभी-कभी सुनता था राजों-महाराजों के लिए गाड़ी रोक ली जाती थी जिसके लिए वे शौकियाने तौर पर हरजाना देते थे। लेकिन यहाँ एक अपने

यात्री के लिए भी इतनी सहृदयता ! हाँ इन देशों में यह सामान्य-सी है। फिर भी गाड़ियाँ समय पर आती-जाती हैं और यात्री कभी इस सहृदयता का अनुचित लाभ नहीं उठाते। अधिकारियों को भरसक सहयोग देते हैं। सरकार और जनता का यह पारस्परिक सहयोग ही इन देशों में स्थापित सुदृढ़ प्रजातन्त्र की नींव है।

सीट पर बैठते हुए बगल में देखा तो एक प्रौढ़ महिला बड़ी उत्सुकता से मेरी ओर देख रही थीं। नमस्कार करके अत्यन्त मधुर अँग्रेजी में बोलीं—"बैठिये ! कहाँ जायेंगे ?"

"सोचता हूँ आज और कल आहुस में ठहरूँगा। वैसे जाना तो एलसिनोर तक है।"

"अच्छा तो लम्बी यात्रा पर निकले हैं। एक बार में ही पूरा डेनमार्क देख डालने का विचार है !"

"जी हाँ, डेनमार्क की यह जनवरी बार-बार नहीं मिलेगी।"

मेरे अर्थ को वे समझ गयीं और अन्य लोगों की तरह उन्होंने वही दुहराया—'बड़ी ठन्ड है। कष्ट होगा।' वस्तुतः बार-बार की इस सहानुभूति-पूर्ण सलाह से मैं तंग आ गया था। हमेशा सोचता—पता नहीं गर्म देश के निवासियों को यहाँ वाले इतना कमजोर क्यों समझते हैं। कुछ तो इन लोगों की इस अत्यधिक सहानुभूति से ही हमारी ठन्ड बढ़ जाती है—निश्चय ही वह शारीरिक से अधिक मानसिक होती है। अन्यथा हिमालय की तराई के आस-पास रहने वाले गरीब किसान नंगे पैर खेतों पर काम करते हुए एक बंडी और चदरा में जैसी ठन्ड काट देते हैं उसकी कल्पना भी ये नहीं कर सकते।

"मौसम फिर बिगड़ रहा लगता है।" कहते हुए महिला ने हैंड बेग से सिगरेट केस निकाली। एक सिगरेट मेरी ओर भी बढ़ायी। मैंने धन्यवाद देते हुए इन्कार किया तो बोलीं—

"आपके मलाया में धूम्रपान का कैसा प्रचार है ?"

मेरा मलाया ? मैंने चकित होकर कहा—"आपने कैसे सोचा कि मैं मलाया का निबासी हूँ ?"

उन्होंने ऊपर रखे मेरे सूटकेस की ओर संकेत करके कहा—"यह लिखा हुआ 'जायसवाल' नाम आप ही का है न ? कोचीन का नाम मैं कई बार सुन

चुकी हूँ।" मैंने गौर से देखा तो सूटकेस पर लिखे हुए मेरे नाम के पास ही अब भी 'कोचीन-जेनोआ' का लेबिल चिपका था जो दो महीने पहले कोचीन से इटली आते समय जहाज वालों ने लगा दिया था। सुन्दर और कीमती वस्त्रों में लिपटी और चेहरे से प्रचण्ड सभ्यता का रोब टपकाती उस महिला की यह स्वयंसिद्ध कल्पना देखकर मुझे बरबस हँसी आ गयी। शिष्टता की मर्यादा भंग न हो इसलिए किसी प्रकार अपने आप पर काबू पाते हुए मैंने कहा—"मलाया में मेरी ससुराल भी तो हो सकती है।"—सुनते ही हम दोनों ने जो ठहाका मारा कि आसपास के सब यात्री उत्सुकतावश गर्दन घुमाकर हमारी ओर देखने लगे। प्रायः एक मिनट तक हम सबसे बेखबर दिल खोलकर हँसते रहे। हँसी के मारे बेचारी महिला की आँखें भींग आयीं और सिगरेट मुँह से छूटकर पता नहीं कब नीचे गिर गयी। इस अट्टहास ने हमारे बीच की औपचारिकता को क्षण भर में बहा दिया। उसी बेतकल्लुफ लहजे में उन्होंने भी उलटकर जवाब दिया—"आशा करती हूँ, आपकी पत्नी आपके साथ होंगी। नहीं तो कौन जाने एक ससुराल डेनमार्क में भी बना लेंगे।"

"............और सूटकेस पर दूसरा लेबिल चिपका लेंगे।" मैंने समस्या पूरी की। इस पर एक और ठहाका लगा। चालीस वर्षीया स्त्री और एक विदेशी युवक में सामान्य परिचय के बाद ही हास-परिहास का यह उन्मुक्त विनिमय देखकर सभी यात्री हैरान थे। रह-रहकर हमारी ओर उत्सुकता भरी मुस्कराहट से देखते लेकिन शायद हमारी अँग्रेजी उनके पल्ले न पड़ती। आँखें पोंछते हुए किसी प्रकार गम्भीर होकर महिला ने कहा—

"क्षमा कीजिएगा मि० जायसवाल। मेरी अटकलबाजी बड़ी हास्यकर साबित हुई। लेकिन आपकी शकल भी तो मलायियों से मिलती है जिसने मुझे ऐसा अनुमान करने में सहायता दी।" उनकी अटकल बुद्धि की यह दूसरी किश्त थी। लेकिन हँसी की तरंग अब शिथिल पड़ गयी थी। थके मने से सोचा—शांतिनिकेतन पहुँचते ही कइयों ने बंगाली समझकर मुझसे बंगला बोलना शुरू कर दिया था। गनीमत कि यह भद्र महिला मलायी भाषा नहीं जानती। इसे सौभाग्य मानूँ या दुर्भाग्य कि उत्तरप्रदेश के बाहर लोग मुझे उत्तरप्रदेशीय नहीं समझते और भारतवर्ष के बाहर भारतीय नहीं। सारा दोष विश्वकर्मा के माथे मढ़कर मैंने एक-एक करके सारी बातें बतायीं—

कोचीन मलाया नहीं हिन्दुस्तान का एक बन्दरगाह है।

मैं भारतीय हूँ।

हमारे देश में धूम्रपान का काफी प्रचार होते हुए भी लोग इसे नैतिक दृष्टिकोण से देखते हैं और दुर्व्यसन मानते हैं।

भारतीय महिलाएँ तो स्वप्न में भी धूम्रपान नहीं करतीं।

मैं अविवाहित हूँ।

भारतीय नजदीक की ससुराल अधिक पसन्द करते हैं जबकि डेन्मार्क भारत से बहुत दूर है। गाड़ी से उतरते ही मैं सूटकेस पर लगे लेबिल को निकाल दूँगा।

रही मेरी शकल की बात, सो वह अपने बस की बात नहीं।

बाद में महिला ने बताया कि टेबिल-टेनिस और बेडमिन्टन में उनकी दिलचस्पी होने के कारण वे मलायी खिलाड़ियों की खबरें विशेष ध्यान से सुनती हैं और उसी सिलसिले में कहीं कोचीन (कौन जाने इंडोचीन) शब्द सुना था और यह कि वे स्वयं बेडमिंटन की अच्छी खिलाड़ी हैं। मेरे यह कहने पर कि इतनी सुघड़ अँग्रेजी डेनमार्क में पहली बार सुन रहा हूँ। उन्होंने बताया कि वे हैं तो डेनिश ही किन्तु कैलीफोर्निया (अमरीका) में चार वर्ष रह चुकी हैं। वहाँ भी उन्होंने अपना अधिकांश समय अमरीकी नहीं एक स्कॉट-परिवार के साथ बिताया जो बड़ा सुसंस्कृत और साहित्य-प्रेमी था। अमरीकी अंग्रजी वह स्वयं नहीं पसंद करतीं और अपने बीस वर्षीय बेटे को वे अगले वर्ष लन्दन भेजने जा रही हैं। उनकी स्वयं की बड़ी इच्छा थी एक बार लन्दन जाने की, किन्तु दो वर्ष पूर्व पति की अचानक मृत्यु हो जाने के कारण बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का बोझ उन पर आ पड़ा। और फिर वे परिवार की तमाम बातें बताने लगीं, बिना यह सोचे कि मुझे उनकी बातों में रुचि है या नहीं। इधर मैं सोच रहा था—पूर्व हो चाहे पश्चिम नारी स्वभाव में मौलिक भेद नहीं है। चार वर्ष अमरीका में रह आयीं, बीस वर्षीय पुत्र और अन्य कई सन्तानों की विधवा माँ, हालीवुड की इतालवी अभिनेत्रियों की तरह रंगी-पुती मुँह वाली चालीस वर्षीया प्रौढ़, सिगरेट-पर-सिगरेट फूँकने वाली और पुरुषों से भी अधिक जोर से अट्टहास करने वाली, बेडमिंटन की सिद्धहस्त खिलाड़ी यह नारी कितनी सरल है अपने बेटे के समवयस्क एक व्यक्ति के

सामने अपने परिवार का वर्णन वे ऐसे सहज भाव से किये जा रही थीं मानो कोई शिशु अपने हाथों बनाये घर-घरौंदे का बखान अपने से भी छोटे शिशु से कर रहा हो। मैं मुग्ध भाव से उनको देख रहा था। वे कहे जा रही थीं और मैं सोच रहा था—नारी सर्वत्र एक रूप है। देश काल से मुक्त, शाश्वत गुणों से पोषित।

"ह्यानिंग जंकशन। कोपेनहागेन के लिए दूसरी गाड़ी।" गार्ड ने लम्बे डग भरते हुए एक डिब्बे से दूसरे डिब्बे में जाते हुए घोषणा की। मेरी ओर देखकर उसने कहा—"आप बैठें। यह डिब्बा सीधा आहुस जायगा।" यह वही गार्ड था जिसने बोरिस में मेरा सूटकेस गाड़ी में चढ़ाया था। वही टिकट चेकर भी था। जरूरत पड़ने पर मुसाफिरों का कुली भी—वह भी मुफ्त। वस्तुतः ये लोग गार्ड (रक्षक) नहीं, गाड़ी और यात्रियों के सेवक होते हैं। यात्री अपनी रक्षा स्वयं कर लेते हैं और गाड़ी की रक्षा रेल-विभाग की त्रुटि-हीन व्यवस्था करती है। महिला ने चौंककर कुछ शर्माते हुए कहा—

"ओह, मुझे तो ह्यानिंग ही उतरना है।"

"आपके साथ मेरी यात्रा बड़ी सुखद और रोचक रही श्रीमती·········।" मैंने कृतज्ञ होकर कहा।

"अरे, मैंने अपना नाम तो बताया ही नहीं। मैं अपना पता देती हूँ। यहाँ से दूर जरूर है। कभी उधर जायें तो मेरा निमंत्रण न भूलें—आप घूमने के शौकीन भी तो हैं।" स्टेशन आ रहा था। जल्दी से मैंने एक अखबार निकाल-कर उन्हें दिया—

'इस पर लिख दीजिये फिलहाल। बाद में डायरी में नोट कर लूँगा।" पता लिखकर वे एक क्षण रुकीं। कुछ सोचकर फिर लिखने लगीं। "आहुस में मेरे पति के एक मित्र रहते हैं। पति की मृत्यु के बाद इधर दो वर्षों से वे हमसे नहीं मिले। लेकिन बड़े भले आदमी हैं। थोड़ी अँग्रेजी बोल लेते हैं। बड़ी भारी रेडियो-टेलिविजन की दुकान है। पता दे रही हूँ। मौका मिले तो उनकी दूकान पर आयें। शायद उनके पास भारतीय संगीत के रिकार्ड भी होंगे। आपको सुनायेंगे।" स्टेशन आया। बड़ी स्निग्धता से हाथ मिलाया—"आने के पहले सूचना जरूर दें। यात्रा सफल हो। नमस्कार!"

'श्रीमती···········ओडनर' आज इतना ही याद है। मेरे एक अन्य मित्र

का यही नाम होने के कारण सिर्फ इतना स्मरण रख सका अन्यथा अपनी अक्षम्य लापरवाही के कारण मैं वह अखबार आहुस के न जाने किस होटल या रेस्टोरां में छोड़ आया। जीवन में तमाम भूलें होती हैं किन्तु इस भूल को मैं कभी न भुला सका। श्रीमती ओडनर क्या सोचती होंगी ? यह प्रश्न बार-बार अपने आपसे करता हूँ और जब सूटकेस पर लिखे अपने नाम को पढ़ता हूँ तो शर्म से सिर झुक जाता है। लेकिन अब उपाय भी क्या है।

अब बरफ गिरनी बन्द हो गयी थी। आकाश हल्के मटमैले बादलों से छा गया था। धीरे-धीरे अंधेरा भी बढ़ता जा रहा था। खिड़की से दिखायी दिया शायद हवा फिर तेज हो गयी है। चारों ओर खेतों में बरफ बिछी थी। जनवरी में हमारे देश के खेत अधपकी फसल से लहलहाते रहते हैं। विशेष काम न होते हुए भी किसान बार-बार खेत पर आकर हसरत और आशा भरी आँखों से आसन्न प्रसव बालों को देखता है। किन्तु डेनमार्क के खेत इन दिनों हिमपात से ग्रस्त मरुभूमि-जैसे दिखायी दे रहे थे। कुछ बड़े फार्मों पर किसानों ने जरूर रासायनिक खाद्य देना शुरू कर दिया था। ट्रैक्टरों पर लगी प्लास्टिक की छतरी से होकर उनके मुँह में लगी पाइप स्पष्ट दिखायी दे रही थी। विकट ठन्ड और हवा से त्रस्त, सिकुड़े कन्धों और समेटे शरीर से ट्रैक्टर चला रहे थे। ऐसे मौसम में खेत की भुरभुरी मिट्टी भी ठन्ड से जमकर पत्थर की तरह कड़ी हो गयी थी जिस पर ट्रैक्टर उछलते गिरते ही आगे बढ़ पाते, धीरे-धीरे चारों ओर बरफ के स्थान पर घना सफेद-सा कुहरा-सा छा गया और सारे गांव, खेत, किसान और उनके ट्रैक्टर उसमें डूब गये। दृष्टि सिमटकर डिब्बे के भीतर सीमित हो गयी। सभी यात्री खामोश अपने-अपने में तन्मय थे। कोई गप्पों में, कोई अखबार में तो कोई सिगरेट के धुँए में। मैं भी अखबार उलटने लगा। ध्यान खींचा गार्ड की आवाज ने "आहुस !" मेरी ओर मुखातिब होकर उसने पूछा—

"यह डिब्बा आहुस बन्दरगाह तक जायेगा। आप कहाँ उतरेंगे ?"

"मैं तो शहर देखने आया हूँ। कौन-सा स्टेशन सुविधाजनक होगा ?"

"तब आप यहीं सिटी स्टेशन पर उतर जायें। होटल, टूरिस्ट ऑफिस आदि यहीं हैं।"

स्टेशन पर उतरते ही तेज हवा का जो झोंका लगा कि अन्तराल तक काँप

उठा। बोरिस से बरफ की छाया में प्रस्थान किया था और यहाँ मिली आँधी और अन्धकार। बड़ा निराश हुआ। लगा, कुछ न देख सकूँगा। होटल का बिस्तर तोड़ना ही भाग्य में है। लेकिन होटल के मैनेजर ने दूसरी ही बात बतायी—"आप निराश न हों। यह शहर समुद्र के किनारे है। हवा तेज है। जल्दी ही मौसम बदलेगा। आप भोजन कीजिए तब तक।" उसके मुँह में था शक्कर। दो बजते न बजते अन्धकार दूर हो गया। फीकी धूप सी निकल आयी। हवा वैसी ही चल रही थी। अतएव ठन्ड में कमी न आयी।

भौगोलिक रूप से योरोप (जर्मनी) के साथ डेनमार्क का जो एकमात्र भाग जुड़ा है उसका नाम जूटलैंड है। यह प्रायद्वीप डेनमार्क का सबसे बड़ा (लगभग तीन चौथाई) भाग है वैसे छोटे-बड़े सब मिलाकर डेनमार्क पाँच सौ से भी अधिक द्वीपों का देश है, जिनमें से चार सौ निर्जन हैं। आहुस जूटलैण्ड के पूर्वी समुद्र तट पर प्रायः मध्य में बसा है। डेनमार्क के दूसरे सबसे बड़े द्वीप जीलैण्ड—जिसमें कोपेनहागेन बसा है—और जूटलैण्ड के बीच समुद्री यातायात का प्रमुख द्वार होने के कारण यह व्यापारिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक हर दृष्टि से डेनमार्क का महत्त्वपूर्ण शहर है। आबादी दो लाख है और कोपेनहागेन के बाद देश का दूसरा सबसे बड़ा शहर है।

होटल वाले ने बताया कि कल पता नहीं कैसा मौसम रहेगा। अच्छा हो आप पहले 'पुरानी बस्ती' देख आयें। क्योंकि वह सबका-सब बाहर खुले में है। भीतर की चीजें संग्रहालय आदि चाहे जैसे मौसम में देखी जा सकती हैं। उसकी सलाह जँची और मैं सबसे पहले 'पुरानी बस्ती' देखने चला।

नाम सुनकर लगता है 'पुरानी बस्ती' शहर का पुराना हिस्सा होगा जैसे नयी दिल्ली और पुरानी दिल्ली। पर वस्तुतः 'पुरानी बस्ती' नाम की कोई बस्ती नहीं है। यह है एक अनोखा संग्रहालय। पुराने समय के मकान, फर्नीचर, सड़कें, नालियाँ, बाग आदि सब इस ढंग से एकत्रित करके सजा दिये गये हैं कि दर्शक प्रायः यही अनुभव करता है मानो वह अट्ठारहवीं सदी की दुनिया में घूम रहा हो। देश के हर भाग के नमूने इसमें संगृहीत हैं। नमूने लघु आकार के मॉडल नहीं बल्कि उस आकार के हैं जिसमें लोग रहा करते थे। इतिहास के विद्यार्थी के लिए इससे अधिक रोचक संग्रहालय की कल्पना करना मुश्किल है। इसमें कितने श्रम, धन और कल्पना-शक्ति की आवश्यकता पड़ी होगी इसका अनुमान
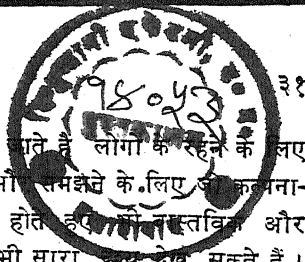
देखने वाला ही लगा सकता है। शहर बसाये जाते हैं लोगों के रहने के लिए लेकिन यह शहर बसाया गया है केवल देखने और समझने के लिए जो कल्पना-जन्य, निर्जन और इतिहास में अस्तित्वहीन होते हुए भी वास्तविक और ऐतिहासिक है। दर्शक घरों के भीतर जाकर भी सारा दृश्य देख सकते हैं। किन्तु जाड़े में टूरिस्ट मौसम न होने के कारण उन्हें बन्द रखा जाता है। फिर भी कांच की खिड़कियों से अन्दर का अधिकांश दृश्य दिखायी देता है। एक खिड़की के कांच से बरफ हटाकर मैं देखने की कोशिश कर रहा था कि अचानक एक विशालकाय लाल रंग का दानव मेरी बगल में आकर खड़ा हो गया। उस निर्जन मायानगरी में उसे देखकर क्षण भर के लिए मेरे रोयें खड़े हो गये। किन्तु चेहरे पर सौजन्य और मुस्कराहट देखकर मैं बोला—"हेलो।" उसने हाथ मिलाकर कहा—"एक कष्ट करेंगे? इस शहर में मेरी एक फोटो खींच दें।" अपना कैमरा मुझे दिया। जाकर एक मकान के द्वार पर खड़ा हो गया। मेरे 'क्लिक' करते ही आया। धन्यवाद दिया। कैमरा लिया और गुडबाई कहते हुए जिस नाटकीय ढंग से अवतरित हुआ था उसी नाटकीय ढंग से अन्तर्धान हो गया। मैं गुमहोश-सा हवा की ओर देखता रह गया। होश आया तो लगा वह मानव ही था।

'पुरानी-बस्ती' से निकला तो सोचने लगा–शाम आ रही है अब कहाँ जाऊँ? टूरिस्ट आफिस से मिले नक्शे में देखा तो पाया पास में ही एक म्युनिसिपल संग्रहालय है। हर प्रमुख शहर में म्युजियम बनाने की जो एक प्रथा है उसके प्रमाण से अधिक वह कुछ नहीं लगा।

संग्रहालय से निकला तो सांझ हो आयी थी। इन देशों में जाड़े का दिन इतना छोटा होता है कि सूर्य देवता की कृपणता पर मन खीझ उठता है। दिसम्बर मे तो करीब नौ बजे सूर्योदय और साढ़े तीन बजे सूर्यास्त होता है। कहीं घने बादल हुए तो तीन बजे ही रात मालूम होने लगती है। गर्मी में इसके ठीक विपरीत। ऊँघते ही रात गुजर जाती है। नार्वे के उत्तरी भाग में तो सूर्योदय और सूर्यास्त होता ही नहीं। बारह बजे रात (!) को सिन्धु के उस पार क्षितिज पर सूर्य विदा होने के लिए पहुँचता है कि न जाने क्या सोचकर वापिस लौट आता है। रानी वसुँधरा के प्रेम में मनुष्य ही नहीं देवता भी कैद हैं। मध्य रात में सूर्य की आसक्ति का वह भव्य दृश्य देखने दूर-दूर से यात्री

आते हैं। दूसरे की कमज़ोरी का मजा लेने की आदत मनुष्य की बहुत पुरानी है।

संध्या का समय आवारागिर्दी में काटा। आहुस अपेक्षाकृत आधुनिक शहर है। साफ-सुथरा, नया और सजा हुआ। स्टेशन के पास ही टाउनहाल है जो आधुनिकतम वास्तुशिल्प का सुन्दर नमूना है। कई सरकारी, कई प्राइवेट और सार्वजनिक इमारतें नयी बनी हैं। इन सबमें आकर्षक और महत्त्वपूर्ण इमारत है विश्वविद्यालय की। योरोप के सबसे आधुनिक विश्वविद्यालय के नाम से इसकी ख्याति सुन चुका था। अतः 'सवेरे सबसे पहले इसे देखने जाऊँगा, उसके बाद …………' ऐसा संकल्प करते हुए होटल लौट आया।

आँख खुली तो देखा खिड़की पर पड़े परदे से हल्के नारंगी रंग की धूप कमरे में झांक रही है। आनन्द से उछलकर उठ बैठा। पर्दा हटाया तो सारा कमरा खिलखिला उठा। बाहर निकलने को बेताब घन्टी का बटन दबाया।

"कुछ केले और सेब ला दो। गरम दूध मिलेगा ? एक गिलास दूध भी।" मेरा नाश्ता लेकर आया तो मैं हाथ-मुँह धोकर तैयार था। द्वार पर मैनेजर मिला। सवेरे की सलाम टोककर बोला—"विश्वविद्यालय देखने जा रहे हैं न ? रास्ते में बड़ा गिरजा (कैथेड्रैल) पड़ता है। जरूर देख लें। "बहुत दिनों से ऐसे मौसम के लिए तरस रहा था। मन उल्लास से भरा था। इच्छा हुई दिनभर घूमता रहूँ। अतएव पैदल ही चल पड़ा। गिरजे के बाहर आया तो एक पुलिस वाले से पूछने पर पता लगा कि विश्वविद्यालय बहुत दूर है। पैदल आने जाने में दो घन्टे निकल जायेंगे। बेहतर हो मैं बस से जाऊँ और बचे हुए समय का उपयोग किसी दूसरी चीज को देखने में करूँ। बस में चढ़ा तो टिकट के लिए ड्राइवर को एक क्रोन देने लगा। उसने इंकार करते हुए एक यन्त्र की ओर इशारा किया। मैं दुविधा में यन्त्र की ओर बढ़ा कि पास ही बैठे एक युवक ने अँग्रेजी में कहा—"क्या मैं आपकी मदद कर सकता हूँ ? शायद नये आये हैं। कहाँ जाना है ?"

"विश्वविद्यालय" मैंने कहा। उसने एक छिद्र में क्रोन डाला। बटन दबाया तो दस-दस 'नोट' के दस सिक्के खरखराकर दूसरी छेद से गिर पड़े। मुझे देते हुए बोला—"ड्राइवर रेजगारी नहीं रखता। रेजगारी देने का काम इस मशीन का है।" मैंने धन्यवाद दिया और दसों सिक्कों सहित हाथ ड्राइवर के सामने

फैला दिया। उसमें से उसने पाँच सिक्के निकाल लिये और टिकट दिया। मैं युवक की बगल में जा बैठा। उसने पूछा—

"क्या आप डेनिश बिलकुल नहीं जानते ?"

"भूखों न मरना पड़े इसलिए खाने पीने की चीजों के नाम पहले सीख लिये हैं। यह मेरी पहली यात्रा है। धीरे-धीरे यात्रा सम्बन्धी शब्द भी सीख लूँगा।"

"कब आये डेन्मार्क ? किस देश के हैं ?"

"दो माह हुए। भारतीय हूँ।"

"तब आप धीरे-धीरे डेनिश सीख लेंगे, हालाँकि यह सरल भाषा नहीं है। जर्मन जानने वालों के लिए जरूर यह थोड़ी सरल पड़ती है।" इस प्रकार हम लोग रास्ते भर बातें करते रहे। विश्वविद्यालय आया तो मेरे साथ वह भी उतर पड़ा। उसने कहा—"मैं इसी विद्यालय में गणित का विद्यार्थी हूँ। पास के छात्रावास में रहता हूँ। यदि आप चाहें तो मैं आपको पूरा विद्यालय घुमाकर दिखा सकता हूँ।"

"तब तो मैं विशेष उपकार मानूँगा....।"

"लेकिन एक बजे मेरी प्रेमिका का क्लास खत्म होगा और मुझे उसके साथ उसके घर जाना है।"

मैंने घड़ी देखकर कहा—"एक घन्टे का समय है। यथेष्ट है। मैं आपको मधुर मिलन से वंचित नहीं करूँगा। खासतौर से ऐसे सुहावने मौसम में।"

युवक मुस्कराकर बोला—"हाँ, ऐसा प्यार मुझे पहले किसी लड़की से नहीं हुआ। बड़ी उम्दा लड़की है।" योरोप के कोने में बसे इस छोटे शहर में ऐसा सुन्दर और आधुनिक विश्वविद्यालय और उसमें विद्यार्थियों के रहने की व्यवस्था देखकर आश्चर्य हुआ। धन्यवाद देकर मैं चलने को हुआ तो श्री यापसेन (युवक का यही नाम था) ने कहा—"अभी अपने पास बीस मिनट हैं। मेरे कमरे में बैठना पसन्द करेंगे ?" सोफे की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा—"बैठिये, कोई पेय लेंगे ?" मेरे कुछ स्पष्ट उत्तर देने के पहले ही उन्होंने आल्मारी खोली और बीयर की एक बोतल निकाली। बोले—"दुर्भाग्य! आज एक ही बोतल बची है।"

"बिल्कुल दुर्भाग्य नहीं। यह आपके लिए है। मैं इन चीजों का आदी नहीं हूँ।"

"क्यों ? क्या धर्म—?"

"नहीं नहीं ! महज कभी पी नहीं इसीलिए।"

"अच्छा लेकिन·········।" कहते हुए वे तेजी से बाहर गये और दूसरे क्षण लेमनाड की एक बोतल लेकर वापिस आये। बोले—"यह ठीक है न ?" "डेनिश लोग मेहमानों को सहज ही नहीं छोड़ते"—मैंने कहा। एक बजे तक हम लोग तमाम तरह की बातें करते रहे। यापसेन ने बताया कि उनके पिता किसान हैं। धनी भी हैं। लेकिन शहर में मजदूरी करके अपनी पढ़ाई का सारा खर्च वे स्वयं उठाते हैं। पिता से एक पैसा नहीं लेते। दो वर्ष में कोर्स पूरा करके वे अपनी प्रेमिका से विवाह करेंगे बशर्ते उसने बीच में कोई व्याघात नहीं उपस्थित किया जैसी कि वे आशा करते हैं, क्योंकि लड़की निहायत विश्वसनीय है। अचानक उन्हें याद आया। मेज पर खड़ी एक फोटो उठाते हुए बोले—"मैं तो भूल ही गया था। यही मेरी·········।" फोटो देखी और फिर देखा उस गर्वीले युवक के सुदृढ़ पेशियों वाले चेहरे को।

"आपका प्रेम फले और दीर्घजीवी हो, इसकी मैं हार्दिक कामना करता हूँ, श्री यापसेन एक बज रहा है। मुझे आज्ञा दीजिए। आपको भी जाना है।"

"जी हाँ। वैसे मुझे जाना नहीं है। वह यहीं आयेगी।"

"कभी हमारे यहाँ आइये गर्मियों में।" हाथ बढ़ाते हुए मैंने कहा।

"जरूर। अपनी मित्र के साथ ही आऊँगा। लेकिन शायद वह अँग्रेजी नहीं बोल पाती।"

"कोई हर्ज नहीं। तब तक मैं काफी डेनिश सीख लूँगा। आप दोनों का स्वागत है।"

लम्बा बरामदा पार करके सीढ़ियाँ उतर रहा था कि देखा सामने से बगीचा पार करते हुए एक स्वस्थ छरहरे बदन की लड़की सरल भाव से मुस्कराती चली आ रही है। हाथ में पुस्तकों का एक थैला है और सिर के सुनहरे बाल लापरवाही से कदाचित् एक ओर झूल गये हैं। निकट आयी तो पहचान गया। अभिसार में उठे पैरों की गति ने उसके अंग-अंग में एक अभूत तरंग और स्फूर्ति दौड़ा दी थी। मुझे देखकर क्षण भर के लिए सकुची,

शालीनता से मुस्करायी और सीढ़ियाँ चढ़ गयी। मैं बगीचा पार करके मैदान में आया। बायीं ओर घूमा और बस के लिए सड़क की तरफ चलने लगा। रास्ते में पेड़ों के बीच छोटे-छोटे लड़के बरफ पर 'स्की' कर रहे थे। और मैं सोच रहा था—भारतीय विद्यार्थी। यापसेन। विद्यार्थी। स्पष्टभाषी। कर्मठ। आत्म-निर्भर। उन्मुक्त। स्वाधीन। बोतलों बीयर पीता है। प्रेम करता है, एक से नहीं कई लड़कियों से कर चुका है। मजदूरी करता है। खाता है। पढ़ता भी है क्योंकि विद्यार्थी है। सीधी-सी बात है। कहीं कोई असंगति नहीं। कहीं तर्क-वितर्क नहीं।.........लेकिन हमेशा इस मानव-चरित्र को गणित की तराजू पर क्यों तौलता हूँ? सामने से एक छोटी बच्ची बरफ पर फिसलती आयी और मेरी ओर अपने पैरों को हिलाती सर्राटे से निकल गयी।

शहर के अन्य कई दर्शनीय स्थान देखकर थका हुआ जब होटल लौटा तो सामने टाउन-हाल की घड़ी में ठीक दस बजे थे। मैनेजर से पूछने पर पता लगा कि कोपेनहागेन के लिए कल दोपहर बारह बजे जहाज छूटेगा। होटल का बिल देखा तो चौंक उठा। चार केलों का दाम लगभग एक रुपया। हिन्दुस्तानी, तिस पर फल खाने की आदत। दोनों अखर गये।

भोंपू बजा और हमारा छोटा-सा सुन्दर जलपोत पानी पर खिसकने लगा। धीरे-धीरे जूटलैण्ड का किनारा धुँधला और छोटा होता गया। डेक पर गया तो देखा सैकड़ों समुद्री पक्षी ऊपर मँडराते हुए जहाज के साथ-साथ चल रहे हैं। यात्री रोटी, केक, बिस्कुट आदि का टुकड़ा हवा में उछालते, पक्षी झपट-कर आते और चोंच में उन्हें दबाये दूर एकान्त में खाकर दूसरा टुकड़ा लेने फिर आ जाते। मनुष्य और पक्षी की यह सहयात्रा बड़ी भली लगी। सिर पर चमकता सूर्य, नीला आकाश और नीला ही पारावार, मन्द हवा के झौंके से उठती हुई लहरें। इन सबके बीच श्वेत राजहंस-सा जहाज अविकम्प ध्वनि के साथ तिरता जा रहा था। सुखानुभूति में निमग्न सुदूर आहुस के बन्दरगाह को देख रहा था कि डेक पर खड़े सब लोग चीख पड़े और फिर खिल-खिला-कर हँस पड़े। एक रूपसी खिसियानी शकल से ऊपर आसमान की ओर देख रही थी। बेचारी रोटी का टुकड़ा ऊपर फेंक भी नहीं पायी थी कि कोई शोख पक्षी सुन्दर गोरे हाथों को स्पर्श करने का लोभ संवरण न कर सका और झपट पड़ा—कदाचित् उन कोमल उंगलियों को अपने पंजे से लाल रंग में रंगता

"बिल्कुल दुर्भाग्य नहीं। यह आपके लिए है। मैं इन चीजों का आदी नहीं हूँ।"

"क्यों ? क्या धर्म—?"

"नहीं नहीं ! महज कभी पी नहीं इसीलिए।"

"अच्छा लेकिन·······।" कहते हुए वे तेजी से बाहर गये और दूसरे क्षण लेमनाड की एक बोतल लेकर वापिस आये। बोले—"यह ठीक है न ?" "डेनिश लोग मेहमानों को सहज ही नहीं छोड़ते"—मैंने कहा। एक बजे तक हम लोग तमाम तरह की बातें करते रहे। यापसेन ने बताया कि उनके पिता किसान हैं। धनी भी हैं। लेकिन शहर में मजदूरी करके अपनी पढ़ाई का सारा खर्च वे स्वयं उठाते हैं। पिता से एक पैसा नहीं लेते। दो वर्ष में कोर्स पूरा करके वे अपनी प्रेमिका से विवाह करेंगे बशर्ते उसने बीच में कोई व्याघात नहीं उपस्थित किया जैसी कि वे आशा करते हैं, क्योंकि लड़की निहायत विश्वसनीय है। अचानक उन्हें याद आया। मेज पर खड़ी एक फोटो उठाते हुए बोले—"मैं तो भूल ही गया था। यही मेरी·······।" फोटो देखी और फिर देखा उस गर्वीले युवक के सुदृढ़ पेशियों वाले चेहरे को।

"आपका प्रेम फले और दीर्घजीवी हो, इसकी मैं हार्दिक कामना करता हूँ, श्री यापसेन एक बज रहा है। मुझे आज्ञा दीजिए। आपको भी जाना है।"

"जी हाँ। वैसे मुझे जाना नहीं है। वह यहीं आयेगी।"

"कभी हमारे यहाँ आइये गर्मियों में।" हाथ बढाते हुए मैंने कहा।

"जरूर। अपनी मित्र के साथ ही आऊँगा। लेकिन शायद वह अँग्रेजी नहीं बोल पाती।"

"कोई हर्ज नहीं। तब तक मैं काफी डेनिश सीख लूँगा। आप दोनों का स्वागत है।"

लम्बा बरामदा पार करके सीढ़ियाँ उतर रहा था कि देखा सामने से बगीचा पार करते हुए एक स्वस्थ छरहरे बदन की लड़की सरल भाव से मुस्कराती चली आ रही है। हाथ में पुस्तकों का एक थैला है और सिर के सुनहरे बाल लापरवाही से कदाचित् एक ओर झूल गये हैं। निकट आयी तो पहचान गया। अभिसार में उठे पैरों की गति ने उसके अंग-अंग में एक अभूत तरंग और स्फूर्ति दौड़ा दी थी। मुझे देखकर क्षण भर के लिए सकुची,

शालीनता से मुस्करायी और सीढ़ियाँ चढ़ गयी। मैं बगीचा पार करके मैदान में आया। बायीं ओर घूमा और बस के लिए सड़क की तरफ चलने लगा। रास्ते में पेड़ों के बीच छोटे-छोटे लड़के बरफ पर 'स्की' कर रहे थे। और मैं सोच रहा था—भारतीय विद्यार्थी। यापसेन। विद्यार्थी। स्पष्टभाषी। कर्मठ। आत्म-निर्भर। उन्मुक्त। स्वाधीन। बोतलों बीयर पीता है। प्रेम करता है, एक से नहीं कई लड़कियों से कर चुका है। मजदूरी करता है। खाता है। पढ़ता भी है क्योंकि विद्यार्थी है। सीधी-सी बात है। कहीं कोई असंगति नहीं। कहीं तर्क-वितर्क नहीं।·········लेकिन हमेशा इस मानव-चरित्र को गणित की तराजू पर क्यों तौलता हूँ? सामने से एक छोटी बच्ची बरफ पर फिसलती आयी और मेरी ओर अपने पैरों को हिलाती सर्राटे से निकल गयी।

शहर के अन्य कई दर्शनीय स्थान देखकर थका हुआ जब होटल लौटा तो सामने टाउन-हाल की घड़ी में ठीक दस बजे थे। मैनेजर से पूछने पर पता लगा कि कोपेनहागेन के लिए कल दोपहर बारह बजे जहाज छूटेगा। होटल का बिल देखा तो चौंक उठा। चार केलों का दाम लगभग एक रुपया। हिन्दुस्तानी, तिस पर फल खाने की आदत। दोनों अखर गये।

भोंपू बजा और हमारा छोटा-सा सुन्दर जलपोत पानी पर खिसकने लगा। धीरे-धीरे जूटलैण्ड का किनारा धुँधला और छोटा होता गया। डेक पर गया तो देखा सैकड़ों समुद्री पक्षी ऊपर मँडराते हुए जहाज के साथ-साथ चल रहे हैं। यात्री रोटी, केक, बिस्कुट आदि का टुकड़ा हवा में उछालते, पक्षी झपट-कर आते और चोंच में उन्हें दबाये दूर एकान्त में खाकर दूसरा टुकड़ा लेने फिर आ जाते। मनुष्य और पक्षी की यह सहयात्रा बड़ी भली लगी। सिर पर चमकता सूर्य, नीला आकाश और नीला ही पारावार, मन्द हवा के झोंके से उठती हुई लहरें। इन सबके बीच श्वेत राजहंस-सा जहाज अविकल ध्वनि के साथ तिरता जा रहा था। सुखानुभूति में निमग्न सुदूर आहुस के बन्दरगाह को देख रहा था कि डेक पर खड़े सब लोग चीख पड़े और फिर खिल-खिला-कर हँस पड़े। एक रूपसी खिसियानी शकल से ऊपर आसमान की ओर देख रही थी। बेचारी रोटी का टुकड़ा ऊपर फेंक भी नहीं पायी थी कि कोई शोख पक्षी सुन्दर गोरे हाथों को स्पर्श करने का लोभ संवरण न कर सका और झपट पड़ा—कदाचित् उन कोमल उंगलियों को अपने पंजे से लाल रंग में रंगता

हुआ। मनुष्य की झोली खाली हो चुकी थी और विहंग-समाज अपने डेरे से बहुत दूर चला आया था। धीरे-धीरे हमारा और उनका साथ छूट गया।

जिस समय हम कालुंडबोर्ड के बन्दरगाह पर पहुँचे शाम नहीं हुई थी। फिर भी हल्के कुहरे के कारण धुँधलका-सा छा गया था। सामने ही कोपेनहागेन की गाड़ी खड़ी थी। जीलैंड के दूसरे (पूर्वी) किनारे पर स्थित स्केण्डिनेविया का सबसे बड़ा शहर, उत्तरी योरोप का 'मेट्रोपोलीस' और अपने देश की पूरी आबादी का एक चौथाई भाग हथियाये डेन्मार्क की राजधानी कोपेनहागेन काली रात में अलकापुरी-सा जगमगा रहा था। रात हो आयी थी और मैं भूख से बेचैन था।

मेरी स्मृतियों का कोपेनहागेन

□ □ □

पहली बार जब कोपेनहागेन गया था तो जाड़े के दिन थे। ठण्ड भयंकर थी। स्कैण्डिनेविया की ठण्ड कौन नहीं जानता! एक मित्र के कहने से स्टेशन के पास फौजियों के एक विश्रामगृह 'वारटोव' में ठहर गया था। सामान रखकर कांच की खिड़की से बगीचे में झांका। शायद कीर्केगार्द (विख्यात डेनिश दार्शनिक) की एक काली प्रतिमा थी। देखा उस पर सफेद बर्फ आकर बैठ गयी है। उसके सिर पर तो इतनी सफेदी उतर आयी थी कि लगा कीर्केगार्द अभी जीवित है और बूढ़ा हो गया है। उसका बुढ़ापा ही सफेद बर्फ बनकर सारे परिवेश में व्याप्त गया है। सुनसान आंगन, बीच में छोटा-सा बगीचा, बगीचे के बीचोंबीच कीर्केगार्द की शिथिल मुद्रा में गढ़ी आकृति। पाले की मार से मरे और सूखे पत्ते पेड़ों से झर कर पक्के आंगन में बिखर गये थे। उन पर भी बर्फ का कफन पड़ा था। पेड़ों की डालियाँ निरावृत अबला नारी की तरह चुपचाप सिर झुकाये लटक रही थीं। पाले की झिलमिलाती बूंदें रुक-रुक कर आंसू की तरह उनके किनारों से चू पड़तीं। एक विचित्र मुर्दानगी, कब्रिस्तान की शान्ति भरी हुई थी पूरे आंगन में। किसी कोने से हवा की एक लहर आती तो डर लगता कहीं कोई मुर्दा न जाग उठे! फिर भी कीर्केगार्द की प्रतिमा अपनी सफेद और कोमल चादर ओढ़े चुपचाप बूढ़ी आँखों से सब नजारा देख रही थी। मैंने वितृष्णा से मुँह फेर लिया। कोपेनहागेन का जाड़ा चाहे जैसा हो स्वयं कोपेनहागेन ऐसा नहीं है। जीवन, उष्णता, रंगीनी और यौवन से परिव्याप्त कोपेनहागेन हर मौसम में हर किसी को अपना बना लेता है।

अपनी प्रथम यात्रा में ही मुझे वहाँ न जाने कितने मित्र मिल गये थे। सब एक-से एक बढ़कर, एक-से-एक निराले। निरामिष भोजी योगेन्सेन प्राकृतिक चिकित्सा के बड़े हिमायती, तमाम पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ते। लेकिन जब भोजन पर बैठते तो सुअर की कलेजी की एक प्लेट अवश्य मँगा लेते, क्योंकि डॉक्टर ने कहा था कि डेन्मार्क की ठण्ड में गरमाहट के लिए कुछ 'ठोस' खाना होना चाहिए। फटेहाल, किसी तरह गुजर करते थे। लेकिन अपने होते मुझे

एक पैसा न खर्च करने देते। विश्वविद्यालय की छात्रा बोडिल—छह फुट लम्बी। सुसंस्कृत और सन्तोषी। लेकिन उस दिन जब रात के ग्यारह बजे मैं उसे स्टेशन तक छोड़ने नहीं गया तो पूरा एक महीना रूठी रही। तीन चिट्ठियाँ पचा गयी। नील्स और बियगिट। समाज की निगाह में अविवाहित मगर अपनी समझ में चिरकाल-से-चिरकाल तक विवाहित। बच्चे भी पैदा किये। पर समाज के आगे घुटने नहीं टेके। उल्टे समाज के मुँह पर तमाचा जड़ दिया। अपने को अस्तित्ववादी मानकर चलते हैं। फिर भला समाज का अंकुश क्यों न मानें! अनिश्चयवादी धुन में कबीर का अध्ययन ही नहीं, डेनिश भाषा में अनुवाद भी कर डाला। लेकिन उस दिन दोनों में जब खटपट हो गयी तो सारा अस्तित्ववादी अनिश्चयवाद या अनिश्चयवादी अस्तित्ववाद सब भूल गया। नील्स की आँखें भर आयीं। बियगिट ने झपटकर उसे चूम लिया मानो सदियों बाद मिले हों। उधर क्रिस्टेन भी तो है, जो रूप के अभाव में चिर कौमार्य का अभिशाप ले बैठी है। रक्तचाप के रोगी भाई को जब उसकी मनचली पत्नी ने तलाक दे दिया, तो वह बेचारा आघात से दो हफ्ते में ही मर गया और क्रिस्टेन को बदले में एक छोटा-सा बच्चा मिल गया। बाद में मिली तो एक आँख से रो रही थी और दूसरी आँख से मुस्करा रही थी। भाई की ट्रेजेडी और उसके अन्तहीन कौमार्य की सत्यता में एक अप्रत्याशित व्यवधान आ गया। डेनिश ही क्यों, कुछ भारतीय चरित्रों का भी एक सम्मेलन उत्तर की उस महानगरी में हो पड़ा था। पुराने मित्र अजय महलनबीस, सत्य चोपड़ा, डॉ. मैत्र वगैरह के साथ उन चिरपरिचित सडकों पर मीलों घूमता रहा हूँ। एक-एक करके पुराने चेहरों की पूरी कतार सामने से गुजर जाती। उन सबों के माध्यम से कोपेनहागेन के साथ तादात्म्य हो गया था। यह आधुनिक, औद्योगिक युग का एक शहर होते हुए भी कितना अलग है। परिवारों का निवास-स्थान है, जिनके साथ सहज ही व्यक्ति आ मिलते हैं। अपने हो जाते हैं। तिस पर डेनिश लोगों की सहृदयता और मैत्री भाव। बाहर प्रचण्ड ठण्ड है, पर भीतर समाज में, दिलों के निकट आ जाने से एक गहन उष्णता महसूस होती है, जो बर्फ की जड़ता को भी पिघला दे। कोपेनहेगेन की शीतकालीन जड़ता में भी कहीं प्राण समाया है, जो 'टूरिस्ट' को 'टूरिस्ट' नहीं रहने देती।

लेकिन इस बार तो गर्मियों में यहाँ आया हूँ। ठण्डी सफेद शाल उतारकर इस शहर ने सतरंगी चमकदार चूनरी पहन ली है। चारों ओर हरियाली, पारे-सी चमकीली धूप, नील गगन, फूलों के रंग-बिरंगे गुलदस्तों और गमलों से सजे मकान, सड़कें, पार्क, होटल और रेस्तरां। नयी वस्तुओं और नये ढंग से सजी दूकानें, पोशाक और जूतों के नये फैशन कांच के भीतर लगा दिये गये हैं। नहरों का पानी भी बदल गया-सा लगता है। नावों को फिर से रंग दिया गया है। स्त्रियों ने नाइलोन के पारदर्शी मोजे और कोट उतार कर रंग-बिरंगी फ्रॉकें पहन ली हैं, जिससे उनके गोरे शरीर का स्वाभाविक लावण्य उभर आया है। कभी-कभी हवा के किसी ठण्डे स्पर्श से महीनों से नाइलोन में छिपे उनके सूक्ष्म कोमल रोम खड़े हो जाते, तो उन पर हाथ फेरते स्वयं उन्हीं को रोमांच-कारी लगता, मानो अपने नहीं किसी दूसरे के पैर हों। पुरुषों ने भी कोट-टाई से कुछ समय के लिए मुक्ति ले ली है। चारों ओर नयापन, धुला हुआ-सा, संजोया और सजाया हुआ-सा। कोपेनहागेन का ग्रीष्मकालीन कलेवर सचमुच ही अपूर्व होता है। कुछ लोग इसे उत्तरी यूरोप का पेरिस कहते हैं। दिन तो दिन, रात में इसकी विलक्षणता खास तौर से अभिव्यक्त होती है। कहते हैं बिजली के प्रकाश का इतना सुन्दर प्रबन्ध और प्राचुर्य दुनिया के कुछ ही शहरों में है। इसलिए पिछली बार मैं स्टॉकहोम से कोपेनहागेन विमान से ही आया था। रात्रि में पहुँचा था। स्वीडन की सीमा लांघकर बाल्टिक सागर का संकरा जलमार्ग पार करने के पहले ही एस. ए. एस. एयरलाइन्स की परिचारिका ने उंगली नचाकर यात्रियों से कहा, "दूर सामने देखिए। क्या अद्भुत दृश्य है!" हमने गर्दनें उचका-उचका कर खिड़कियों से नीचे दूर पानी के उस पार देखा, तो देखते ही रह गये। नीले, नारंगी, सफेद, लाल, हरे रंगों का एक विस्तृत प्रकाश-पुंज क्षितिज पर दमक रहा था, मानो पृथ्वी, आकाश और सिन्धु के मिलन स्थान पर सन्ध्या की इस मिलन वेला में डेनमार्क की खुशहाल जनता ने आरती सजायी हो। ज्यों-ज्यों विमान उस ओर बढ़ता जाता प्रकाश का विस्तार चारों ओर रेंगता नजर आता। कहते हैं सिंगापुर और ब्यूनस आयस (अर्जेण्टाइना) ही दो ऐसे शहर हैं, जो एक हद तक प्रकाशमण्डित कोपेनहागेन की बराबरी कर सकते हैं। अलौकिक छटा थी। बारह लाख की आबादी का वह महानगर, स्कैण्डि-

नेविया का एकमात्र मैट्रोपोलीस किसी स्वप्नलोक की राजधानी-सा लग रहा था। मैं उत्तेजित होकर परिचारिका से बोला, "उतरने के पहले क्या हम लोग शहर का एक और चक्कर नहीं लगा सकते ?" परिचारिकाएँ परिहास में किसी से पीछे नहीं रहतीं, "अवश्य। केवल हमारी कम्पनी को एक अर्जी दे दीजिए। आप अगली बार एकाध महीने में जब हमारे साथ फिर उड़ेंगे तो, आशा है, इसका उत्तर हमारे पास आ गया होगा।" इस व्यंग्य का आनन्द न लेते हुए भी मैं मुस्करा कर चुप हो गया। परिचारिकाएँ इतनी प्यारी लगती है कि आम तौर पर उनकी किसी बेतुकी बात का कोई बुरा नहीं मानता।

और अब इस गर्मी में तो प्रकाश और भी खुलकर वायुमण्डल में छिटक रहा है। कुहरा नहीं, बर्फ नहीं। केवल ठण्डी-पतली हवा, समुद्र की लुनाई लिये हुए लहर-लहर करके यदाकदा शहर को एक सिरे से दूसरे सिरे तक पोंछ जाती है। शाम के आठ बज चुके थे। कुछ नये, कुछ पुराने मित्रों के साथ अभी-अभी खाना खाकर निकला था। सबका ख्याल था तिवोली चलेंगे। लगातार तीन दिन से जा रहे थे, पर मन नहीं भरा था। मन भर जाये तो तिवोली ही क्या।

तिवोली कोपेनहागेन का ग्रीष्मकालीन मनोरंजन केन्द्र है। प्रतिवर्ष मई से अगस्त या सितम्बर तक इसमें एक तरह से मेला भरता है। साधारणतया इसे मनोरंजन पार्क कहा जाता है। मगर दरअसल तिवोली कला, संस्कृति, इतिहास, विज्ञान और साहित्य के विभिन्न पहलुओं की एक बेनजीर प्रदर्शनी है। एक बड़े पक्के बाड़े में हरियाली और पुष्प-कुंजों के बीच स्थायी आयोजन के साथ तरह-तरह के सरंजाम हैं। बच्चों के खेल, झूले, कला प्रदर्शनी, विज्ञान के नये आविष्कार, ऑपेरा, थियेटर, बैले, कन्सर्ट, सरकस, चिड़ियाघर, पुस्तक-प्रदर्शनी इत्यादि अगण्य चीजें एक साथ एक स्थान पर मिलती हैं, जिनको बड़ी खूबसूरत और वैशिष्ट्य के साथ सजाया गया रहता है। विदेशी भोजन, वस्त्र, चित्रकला, स्थापत्य कला, संगीत और नृत्य भी अक्सर मिलते हैं। हमने एक भारतीय हाथी पर सवारी की तो महावत ने मजाक किया, "जनाब, आपको दुगुने पैसे देने चाहिए। एक सवारी के लिए और एक अपने देशवासी से मिलने के लिए।" चमकीली लाल मखमली पोशाक में सजे-धजे पुलिस और राजकीय गॉर्ड के दल इधर-उधर घूमते हुए बैण्डवादन का प्रदर्शन कर रहे थे। इतने में

अचानक छोटी-छोटी मोटरकारों की एक फौज-सी निकल पड़ी। हमारे किसी मित्र ने चिल्लाकर कहा, "महेश! देखो, देखो। दो वर्ष पहले जब तुम्हारे नेहरूजी यहाँ आये थे, तो पैदल चलते-चलते एक ऐसी ही कार में जा चढ़े थे। इतनी उम्र में ऐसी स्फूर्ति और जिन्दादिली हम बहुत कम पाते हैं। सचमुच नेहरू में चुम्बकीय आकर्षण था।"

"ऐसा!" मैंने कहा और पास से गुजरती एक कार में उछलकर चढ़ गया। सब चिल्लाये : "नहीं! नहीं! हमारे साथ पैदल चलो। तुम महाराजा होगे अपने देश में।" उतरना पड़ा। लेकिन सड़क पर पैर रखते ही कण्डक्टर ने टिकट बढ़ा दिया। अठन्नी दच्च पड़ गयी।

"वाह भई, मैं तो यह साबित करने गया था कि हमारे प्रधानमन्त्री ही नहीं हम भी फुर्ती और जिन्दादिली में कम नहीं हैं और तुम मुझसे महसूल ले रहे हो।"

"वह इसलिए कि पच्चीस साल का जवान सत्तर साल के वृद्ध की नकल करके उनका मजाक उड़ा रहा था।" हमारी एक मित्र ने मुझे निरुत्तर कर दिया।

और आगे बढ़े तो बिजली से संचालित फर्श पर दौड़ती छोटी खिलौने की कारों को संकेत करके फिर एक मित्र ने बताया कि इस छोटी-सी कार में नेहरू हमारे प्रधानमन्त्री हान्सेन के साथ बैठे थे। हान्सेन कुछ मोटे थे। बेचारे नेहरू सिकुड़े हुए-से बैठे बच्चों की तरह खिलखिला पड़ते। तिवोली में एक रेस्तरां बिल्कुल चीनी शैली पर बना है और उसे कहते भी हैं, 'चीनी पगोडा।' नृत्य-थियेटर की इमारत भी एकदम मुगलकालीन गुम्बददार महल की अनुकृति है। हर तरह से तिवोली को अन्तर्राष्ट्रीय दर्शकों के मनोनुकूल बनाने की कोशिश की जाती है। वहाँ जाने वालों पर प्रतिक्रिया भी वैसी ही होती है। मनचले नौजवान, गम्भीर बुद्धिजीवी, ठसकदार राजपुरुष, गर्वीली सुन्दरियाँ सभी वहाँ प्रफुल्लित होकर किलकने लगते हैं, एकदम साधारण स्वाभाविक मनुष्य की तरह। तिवोली की तुलना जगतप्रसिद्ध डिजनेलैण्ड के साथ कभी-कभी की जाती है, पर मुझे तिवोली अधिक परिष्कृत और सौष्ठवपूर्ण लगा। जबकि डिजनेलैण्ड में विज्ञान पर अधिक महत्व दिये जाने के कारण वह कलात्मक नहीं हो सका। वहाँ ज्ञानवर्द्धन भले हो, भावात्मक तुष्टि नहीं होती।

ही नहीं समस्त डेन्मार्क—शायद स्कैण्डिनेविया—में तिवोली ग्रीष्म-काल का सबसे बड़ा आकर्षण होता है। मनोरंजन ही नहीं, इसमें डेनिश सभ्यता, स्वभाव और समाज की बड़ी ही चक्षुप्रिय, मनोहारी झाँकी मिलती है।

कोपेनहागेन का असली नाम—डेनिश भाषा में—'क्यूबिनहाउन' है, जिसका अर्थ होता है, 'सौदागरों का बन्दरगाह'। इससे यह अनुमान होता है कि समुद्री व्यापार के विकास के बाद ही इस शहर का जन्म हुआ होगा। अधिक-से-अधिक शायद वाइकिंग (उत्तरी स्कैण्डिनेविया के विख्यात प्राचीनयुगीन समुद्री लुटेरे, जो अपनी वीरता और साहस के लिए यूरोपीय इतिहास में अमर हो गये हैं।) काल में इसकी नींव पड़ी हो। किन्तु इतिहासवेत्ताओं ने खुदाई से यह पता लगाया है कि वर्तमान कोपेनहागेन के मध्य भाग में ऐसे अवशेष प्राप्त हुए हैं, जो छह हजार वर्ष पुरानी सभ्यता के परिचायक हैं। निश्चय ही प्रागैतिहासिक युग में उत्तराखण्डीय नामेडों का कोई झुण्ड वहाँ आ बसा था। बाद में मछुओं की बस्ती का विकास हुआ। यह तो केवल एक हजार वर्ष पहले जब उस मछलीमार बस्ती की समुद्री स्थिति का महत्व तत्कालीन उत्तर यूरोपीय नाविकों को मालूम हुआ और इसके उत्तम प्राकृतिक बन्दरगाह को उन्होंने पहचाना, तो धीरे-धीरे इसका व्यापारिक केन्द्र के रूप में विकास हुआ। आज कोपेनहागेन पूरे स्कैण्डिनेविया का सबसे बडा शहर ही नहीं है, अपितु सबसे महत्वपूर्ण बन्दरगाह एवं व्यापार, शिक्षा, कला और विज्ञान का केन्द्र भी है। डेनमार्क के 'नाटो' सैनिक संघ में चले जाने के बाद यह राजनीतिक केन्द्र भी बन गया है। यूरोप के बड़े भू-भाग को स्कैण्डिनेविया के साथ जोड़ने वाले अधिकाँश वायु मार्ग, जल मार्ग और रेल मार्ग भी कोपेनहागेन होकर ही गुजरते हैं। स्कैण्डिनेविया की एकमात्र अन्तर्राष्ट्रीय हवाई कम्पनी एस. ए. एस. (स्कैण्डिनेवियन एयरलाइन्स सिस्टम) का मुख्य कार्यालय भी कोपेनहागेन में ही है। शेष संसार से जलमार्गीय सम्बन्ध जोड़ने वाली सबसे बड़ी स्कैण्डि-नेवियाई जहाज कम्पनी 'ईस्ट एशियाटिक शिपिंग कम्पनी' भी कोपेनहागेन की है। असल में कोपेनहागेन डेनमार्क की नहीं पूरे स्कैण्डिनेविया की राजधानी है। स्कैण्डिनेवियन परिवार के सबसे छोटे सदस्य के लिए यह गर्व की बात है। स्वयं डेनमार्क के लिए कोपेनहागेन का महत्त्व मात्र राजधानी से अधिक है। पूरे देश की एक चौथाई और शहरी आबादी की दो तिहाई जनसंख्या केवल

इस शहर में रहती है। शिक्षा, कला, संगीत, साहित्य, व्यापार, उद्योग, प्रशासन, राजनीति, यातायात, प्रायः हर चीज का केन्द्र भी यह शहर और इसके आस-पास के उपनगर हैं। कुछ वर्षों पहले तक डेनमार्क का एकमात्र विश्वविद्यालय कोपेनहागेन में ही था। देश के किसी कोने में कोई कलाकार या लेखक, वैज्ञानिक या राजनीतिज्ञ, डॉक्टर या उद्योगपति तैयार होगा, तो आगे प्रगति के लिए वह कोपेनहागेन की ओर ही दौड़ेगा। स्वयं शहर में कीर्केगार्द जैसा दार्शनिक, नील्स बोर जैसा वैज्ञानिक, ग्रुन्द्विग जैसा शिक्षा-शास्त्री, जिसने स्कैण्डिनेविया और हालैण्ड में 'फॉक हाई स्कूल' संस्थान की स्थापना की, इत्यादि प्रतिभाएँ जन्मीं और सफल हुईं। आज भी डेनिश लोग कहते हैं कि उनके देश में एक ही शहर है कोपेनहागेन। बाकी तो सब कस्बे और गाँव हैं। दरअसल कोपेनहागेन के बाद दूसरा बड़ा शहर आहुस है जिसकी आबादी केवल १,९०,००० है। राजधानी में कहीं कोई तार बिगड़ गया—हड़ताल, विद्रोह, दुर्घटना या आक्रमण—तो देखते-ही-देखते सारे देश का काम ठप्प हो जायेगा। कलकत्ता, न्यूयार्क, रोम या यकार्ता में हो रही किसी हड़ताल से उसके सारे देश के काम ठप्प नहीं हो सकते। पर कोपेनहागेन की बात ही न्यारी है। केन्द्रीयकरण की इससे बड़ी मिसाल दुनिया के किसी देश में नहीं मिलेगी। गनीमत है कि डेन्मार्क का जनतान्त्रिक समाजवाद इतना पुराना और दृढ़ स्थापित हो चुका है और वहाँ की जनता इतनी सन्तुष्ट है कि हड़ताल जैसी स्थिति शायद ही कभी आती हो। दूसरी ओर इस तथ्य को भी नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता कि ऐसी शासन प्रणाली आज के युग में बहुत नाजुक हो सकती है। सरकार का तख्ता पलटने, प्रशासन को अपंग बनाने और राजधानी को देश के शेष भाग से छिन्न करने का षडयन्त्र डेन्मार्क जैसे देश में आसानी से सफल हो सकता है।

कुछ दिनों पहले अखबार में पढ़ा था कि कोपेनहागेन के समुद्र तट पर प्रस्थापित जलकन्या की प्रतिमा की किसी ने नाक काट ली। ऐसा लगा किसी ने कोपेनहागेन को एक भद्दी गाली दे दी हो। बन्दरगाह के पास सड़क के किनारे, झुरमुटों को पार करते ही सदियों से लहरों को झेलती हुई एक चट्टान पड़ी है। उस पर एक डेनिश मूर्तिकार ने जलकन्या की एक सुन्दर प्रतिमा बैठा दी है। इस छोटी जलकन्या का प्रसंग विख्यात डेनिश कथाकार हांस
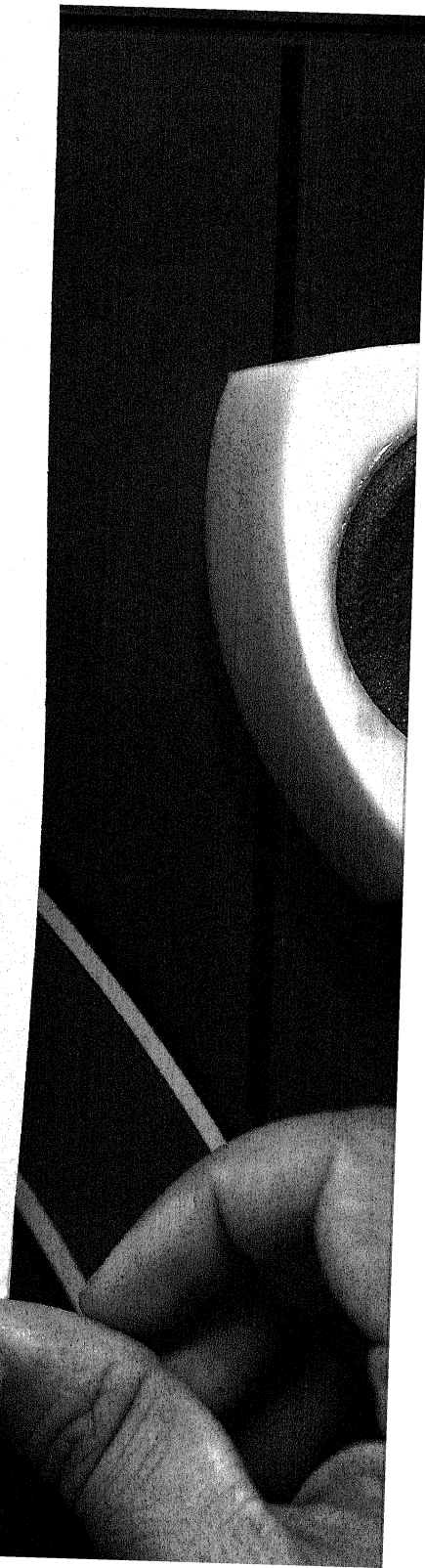
क्रिश्चियन एण्डरसन की एक कहानी 'लिल हाउफ़्रू' (नन्ही जलकन्या) से लिया गया है, जो अपने अजनबी राजकुमार की प्रतीक्षा में समुद्र के किनारे चिरकाल से उदास बैठी है। उसे विश्वास है, एक दिन उसका प्रेमी झुरमुटों को अपने सबल हाथों से हटाता हुआ आ निकलेगा और कहेगा, "प्रिये, मैं आ गया। उस पार्थिव संसार से विदा लेकर हमेशा के लिए जल देश में रहने आ गया हूँ, केवल तुम्हारे लिए !" तब से यह जलकन्या कोपेनहागेन की अनेकानेक भावनाओं की प्रतीक बन गयी है। देश-विदेश में उसका ट्रेडमार्क बन गया है। प्रतिमा में ऐसी कोई विशेषता नहीं है। किन्तु सर्वश्रेष्ठ डेनिश लेखक की अमर कृति से सम्बन्धित होने के कारण उसे—शायद अनावश्यक ही गौरवान्वित कर दिया गया है। जैसा भी हो, आज के कोपेनहागेनवासी उसे अपना नागरिक चिह्न मानने के आदी हो गये हैं। मैं पहली बार जब उसे देखने गया, तो उसकी साधारणता को देखकर अपने मित्र से पूछा कि इसका तूल इतना क्यों बाँधा जाता है। तब उन्होंने बड़ा सुन्दर उत्तर दिया था—"यह मूर्ति दरअसल कोपेन-हागेन के निवासियों के स्वभाव और प्रकृति का प्रतिनिधित्व करती है।" इस टिप्पणी पर काफी विचार करने पर मुझे मानना पड़ा। कोपेनहागेन के निवासी अपने आप में अपेक्षाकृत काफी सरल, भावुक, समुद्रप्रेमी, बन्दरगाह और जहाज के साहचर्य के इच्छुक, 'लिल हाउफ़्रू' जैसी परियों की कहानी में बच्चों का-सा विश्वास रखने वाले, अनावश्यक कामों में व्यस्त रहकर भी परिश्रमी और कुशल होते हैं। पूरे पाश्चात्य जगत में स्कैण्डिनेविया ही मुझे एक ऐसा प्रदेश लगा, जहाँ के निवासी इतने समृद्ध, परिश्रमी और व्यवहारकुशल होते हुए भी व्यवसायी प्रवृत्ति के नहीं होते। केवल पैसा कमाकर अपने लिए जीते रहना ही उनके जीवन का प्रयोजन नहीं है। बात-बात पर लाभ-हानि का हिसाब जोड़ने वाली बनिया वृत्ति उनके स्वभाव के सर्वथा प्रतिकूल है। अतएव जीवन में कई ऐसे काम भी वे करते रहना पसन्द करते हैं, जिनसे कोई लाभ नहीं, उल्टे घाटा—आर्थिक घाटा—ही होता है, क्योंकि उससे उन्हें सुख मिलता है। बच्चों की तरह तोड़-जोड़ करने वाले कितने ही वयस्क और प्रौढ़ डेनिश मित्रों का मैंने मजाक उड़ाया है। पर आज जब सोचता हूँ तो लगता है कि जीवन केवल आवश्यक, फायदेमन्द काम करने की ठेकेदारी या मुनाफाखोरी नहीं है। आध्यात्मिक या भावात्मक तुष्टि के लिए निरर्थक काम करना भी

जीवन को सार्थक बना सकता है। इस युग में हर चीज का व्यावहारिक महत्व, उपयोगिता, मूल्य वगैरह हम पर इतने हावी हो गये हैं कि मानव जीवन कट्टर उपयोगितावाद की एक निर्जीव उपमा बन गया है। डेनिश लोगों ने—इस दृष्टि से जिसका प्रतिनिधित्व विशाल नगरी होने पर भी कोपेनहागेन करता है—अपने जीवन को किसी 'वाद' की उपमा या परिभाषा नहीं होने दिया है। शायद इसीलिए अध्यात्मवादी, अपरिग्रही, विरागी, निष्काम कर्मवादी इत्यादि-इत्यादि न होते हुए भी वे अपने सामान्य भौतिक जीवन में स्वार्थी और कपटी नहीं हैं। पाखण्ड तो उनमें माइक्रोस्कोप से देखने लायक मात्रा में भी नहीं है। सहज मानवीय स्तर पर रहने और जीने के कारण उन्हें इसकी आवश्यकता नहीं है। मेरे कबीरपन्थी दोस्त नीलस दाढ़ी रखे थे। एक दिन खूब खुजाते हुए बोले "भई, इस मुसीबत पर बड़ा खर्च आता है।"

"तो मुड़ा क्यों नहीं देते ?" मैंने साफ कह दिया। पर नीलस मुँह पर हाथ रखते हुए बोले, "चुप ! चुप !! कहीं श्रीमतीजी (किन्तु अविवाहित) न सुन लें ! इनका ऐलान है कि जिस दिन मैंने दाढ़ी छोड़ी उस दिन वे मुझे छोड़ देंगी।"

एक दिन वे दोनों और मैं शहर से पन्द्रह मील दूर एक निर्जन स्थान में पहुँचे। पेड़ों के बीच एक जगह नीलस महोदय एक बाड़े में लकड़ी का एक घर बनवा नहीं, खुद बना रहे थे। पैसे की कमी के बावजूद शहर से इतनी दूर अक्सर आकर दिन-दिन भर अकेले बसुला, आरी लिये मकान बनाते हैं। नींव खोदना, दीवार खड़ी करना, छत डालना, खिड़कियाँ लगाना, चूल्हा बनाना—सब अपने हाथ से ही किया था और अब बाथरूम बना रहे थे। मजे की बात यह कि इन सारे कामों की ट्रेनिंग तक उन्हें कहीं नहीं मिली थी। मैंने कहा, "शहर छोड़ यहाँ रहकर क्या करोगे ?"

"अभी रहने का सोचा ही कहाँ है ?"

"तो इसका क्या अचार डालोगे ? इस जंगल में जहाँ कोई एक पैसे में भी न खरीदेगा ? न बिजली, न नल, न ईंधन, न भोजन....!"

"पहले बन तो जाये। बाद में देखा जायेगा।"

इसी प्रकार एक दिन वे अपनी एक छोटी-सी नाव दिखाने ले गये, जो उन्होंने खुद बनायी थी। उसमें मोटर लगाकर एक दिन सपत्नीक पूरे विश्व

की परिक्रमा करेंगे । क्यों ? कब ? कैसे ? यह सब बाद में देखेंगे । लेकिन अभी से नाव बनाकर उसे रखने के लिए किराये के तीस रुपये मासिक देते जा रहे थे । ये दोनों सनकें पति देव की थीं, जो उन्होंने पत्नी की सनक बनाम दाढ़ी के मुआवजे के बतौर डंके की चोट पर पाल रखी थीं । उनकी पत्नी बियगिट शिकायत करती कि अब बच्चे हो रहे हैं, उनके लिए पैसा बचाओ तो उसके नर-पुंगव का एक ही जवाब होता, "इस दाढ़ी से यह मकान और नाव बनाने का शौक कम कष्टदायक है ।" पर बियगिट समझौते पर राजी न होती । दोनों इस नोंक-झोंक और अपने तीन 'नाजायज' बच्चों के साथ हँसी-खुशी से रहते और प्यार करते चले जा रहे थे ।

इधर पिछले कुछ वर्षों से कोपेनहागेन के नौजवानों में दाढ़ी मूछें रखने का बड़ा फैशन हो गया है । सुन्दर, भोले चेहरे भी भूरी, शहदी रंग की दाढ़ी से कठोर दिखते हैं । लगता है स्कैण्डिनेवियाइयों के रंगों में अपने पूर्वज 'वाइकिंगों' का खून फिर से जोर मारने लगा है । कई लोगों से बातचीत की । नीलस अपने एक गुरु के पास ले गये, जिसकी दाढ़ी की प्रतिष्ठा उनसे कम नहीं थी । दाढ़ी, शौक, समाज सेवा, जीवनलक्ष्य, आदर्श और अधिकार इत्यादि पर चर्चा करते-करते हम कुछ ऐसी बातों की ओर भटक गये कि जब मैंने विदाई का हाथ बढ़ाते हुए यह कहा कि "मित्रवर, कीर्केगार्द का कोपेनहागेन अभी जिन्दा है" तो वे मुस्करा नहीं सके । खिंचे हुए चेहरे से ही विदा किया । एक ओर जहाँ कोपेनहागेन के नये लोगों में अपनी परम्परागत स्कैण्डिनेवियाई विशेषताएँ हैं, दूसरी ओर वहाँ उनमें जीवन की अनिवार्य सामाजिकता के प्रति गम्भीर अनास्था घर करती जा रही है, भौतिक सत्यों की सापेक्षता और आन्तरिक स्वरूपों की अस्थिरता ने उनके साहसिकता-प्रिय व्यक्तित्व को आत्मपरक और अन्तर्मुखी बना दिया है । जीवन में प्रयोग करना शायद उनके लिए सृष्टि करने से अधिक सन्तोषदायक बनता जा रहा है । तथापि उनके पुराने संस्कार इतने दृढ़ हैं कि अन्य विरोधी तत्वों ने उनकी उदारता, सहृदयता, सरलता, मैत्रीभाव, मेहमाननवाजी और दूसरों की बातों के प्रति रुचि और जिज्ञासा को बनाये रखा है । इन गुणों के ही कारण प्रत्येक अतिथि या मित्र—देश का या विदेश का—डेनिश लोगों के सौष्ठवपूर्ण व्यवहार की सराहना किये बिना नहीं रहता । डेन्मार्क जाने के पहले मेरे एक बंगाली मित्र ने कहा था, "यूरोप जा

रहे हो, यह खुशी की बात है। दुनियाँ के सबसे अच्छे लोग उसी देश में रहते हैं।" मैं इस बात की सत्यता को जितना ही कोपेनहागेन में खोजता उतना ही पाता जाता।

अपने ढंग के औलिया होते हुए भी डेनिस युवावर्ग में भारत के प्रति जितनी रुचि मैंने देखी, उतनी अन्य किसी देश के युवावर्ग में नहीं पायी। पहुँचते ही इतने बड़े शहर में, जहाँ प्रायः सबको अपनी-अपनी पड़ी रहती है, मेरे इतने सारे दोस्त जो बन गये थे, उसका यही कारण था कि मैं भारतीय था। पहली बार गया था, तो भारतीयों द्वारा एक होटल में २६ जनवरी का उत्सव मनाया जा रहा था। 'जागृति' फिल्म दिखायी गयी। चित्र दिखाये गये। भाषण हुए। भारतीय भोजन परसा गया। बारह बजे रात तक स्थानीय और भारतीय लोगों में बातचीत चलती रही। डेनिस लोग स्वयं खूब बोलने के आदी होते हुए भी एक प्रश्न पूछकर, हाथ पर ठुड्डी टिकाये, आपको निहारते हुए बैठ जायेंगे। आप कहते जायें, वे चुपचाप सुनेंगे। आप कह चुकेंगे तो वे 'अच्छा ऐसा है' कहकर ऐसे देखने लगेंगे कि 'हाँ, तो आगे बढ़िए न!' मुझे याद आता है एक बार मेरे एक मित्र ने मेरी आखिरी 'लोकल' छुड़वा दी। अब छह-सात मील टैक्सी से कौन जाता। पन्द्रह रुपये से क्या कम लगते? सो प्रस्ताव हुआ, वहीं सो जाऊँ। सबेरे की प्रथम लोकल से चला जाऊँगा। किन्तु मित्र क्या थे, न खुद सोये और न मुझे सोने दिया। सबेरे पांच बजने को आये तो बोले, "माफ करना यार, तुम्हें सोने नहीं दिया।"

मैंने उनके ही शब्दों में कहा, "माफ करना यार, अब मैं आखिरी लोकल से (अर्थात ११ बजे रात) ही घर जाऊँगा। तब तक के लिए मैं तुम्हारा मेहमान हूँ जरा लंच और डिनर की व्यवस्था अच्छी रहे।" और बत्ती बुझाकर सो गया। मैं कभी-कभी तंग आकर उन लोगों से कहता, "भलेमानस, पुस्तकें क्यों नहीं पढ़ते? जितना तुम मुझसे बकवाते हो, इसका कम से कम आधा, तुम स्वयं पढ़ सकते हो।"

"लेकिन तुम लोगों के मुँह से सुनकर भारत का सजीव चित्र सामने आ जाता है।" उनका जवाब होता।

यह था मेरी स्मृतियों का कोपेनहागेन। बहुदेशीय शहर होते हुए भी कितना मानवीय, कितना निजी, कितना आत्मीय! अक्सर किसी देश की

राजधानी इतने देशी-विदेशी तत्वों से भर जाती है कि वह अपने स्वदेशी एवं जातीय गुणों को कहीं भीतर छिपाये भले रहे उनका उन्मुक्त प्रसार नहीं कर पाती, न ही उनका पूर्णरूपेण प्रतिनिधित्व ही कर पाती है। पर डेन्मार्क की राजधानी कोपेनहागेन की बात सबसे न्यारी है।

गजब का कुहरा था। रजाई से लेटे-लेटे ही हाथ बढ़ाकर खिड़की का पर्दा हटाया तो "अरे, बाप रे!" कहकर फिर उसी में दुबक गया। लेकिन आधे घण्टे में ही टेलीफोन बज उठा, "हलो, तैयार हो? मैं आ रही हूँ। ११ बजे तक संग्रहालय पहुँचना है।" बोडिल बोल रही थी।

"इस भयंकर कुहरे में? ऐसी ठण्ड में? क्या आफत करती हो!"

'नहीं, नहीं। वह सब कुछ नहीं। तुम इस बार हमारा संग्रहालय देखकर ही जाओ। बार-बार ब्रिटिश म्यूजियम की तारीफ करने की तुम्हारी आदत मुझे कतई पसन्द नहीं।" नहीं मानी सो नहीं मानी। इतना कुहरा था कि सवेरे के ११ बजे रात के ११ बजे से लग रहे थे। मगर वह छह फुटी डेनिश लड़की बड़ा भारी, बोरे के कंथा जैसा भारी, कोट पहने लम्बे डग भरती हुई मुझे संग्रहालय दिखाने प्रायः जबर्दस्ती लिए जा रही थी। और विन्ध्याचल की धूप और धूल में पला-पुसा यह छोटा-सा हिन्दुस्तानी शरीर दौड़कर भी उससे कदम नहीं मिला पा रहा था।

कोपेनहागेन का राष्ट्रीय संग्रहालय सचमुच दुनिया के सबसे बड़े ही नहीं, सबसे श्रेष्ठ संग्रहालयों में से एक है। अभी तक अपने जीवन में सबसे बड़ा संग्रहालय लन्दन का प्रख्यात ब्रिटिश म्यूजियम ही मैंने देखा था। अब डेन्मार्क के राष्ट्रीय संग्रहालय को देखा, तो लगा सेर का सवा सेर भी कहीं है। ब्रिटिश म्यूजियम का महत्व पुस्तकालय और पाण्डुलिपियों के संग्रह से अवश्य बहुत बढ़ गया है, पर वास्तविक संग्रहालय की दृष्टि से कोपेनहागेन का राष्ट्रीय संग्रहालय बेजोड़ है। यह शायद दुनिया के सबसे पुराने संग्रहालयों में से भी एक है। सन् १६५० से ही इसकी कहानी शुरू हो जाती है। सन् १८०७ में तो यह बाकायदे संग्रहालय का रूप ले चुका था। इसका संग्रह विशेष रूप से सभ्यता के इतिहास को दृष्टि में रखकर किया गया है—केवल डेनिश या यूरोपीय या पाश्चात्य सभ्यता नहीं, बल्कि पूरे विश्व की सभ्यता। उत्तराखण्ड के हिम-युग (ग्लैशियल-एज) से लेकर आज तक मनुष्य किन-किन

सोपानों से गुजरा है, इसका इतना सुव्यवस्थित प्रदर्शन विरले संग्रहालयों में ही मिलेगा। खास तौर से मानव जाति शास्त्रीय संग्रह तो इतना विशाल और विस्तृत है कि उसे देखने में ही हम लोगों ने दो घण्टे लगा दिये। पूरे संग्रहालय में यह सबसे बड़ा संग्रह है, जो १०५ कमरों में सज्जित है। इनमें से ११ कमरों में केवल भारतीय सभ्यता विषयक सामग्री ही जमा है। इसी प्रकार, चीन, जापान, मिस्र और ईरान की सभ्यताओं के भी अलग-अलग संग्रह हैं, जिनको हम शाम के तीन बजे तक भी पूरी तरह न देख सके।

बाहर आये तो कुहरा बहुत कुछ फट चुका था, तथापि स्कैण्डिनेविया का शीतकालीन तीन बजे सन्ध्या का समय हमारे यहाँ सात बजे शाम की तरह होता है। चारों ओर बत्तियाँ जल गयीं थीं। मैं संग्रहालय देखकर सन्तुष्ट था और प्रभावित भी। बात-बात पर ब्रिटिश म्यूजियम की दुहाई देने की आदत का आज से परित्याग कर दिया, यह घोषणा मैंने बोडिल को सुनायी तो वह भी प्रसन्न हो गयी। चलते-चलते हम दोनों शहर के कार्यकेन्द्र रादहूसप्लाटसेन (नगर भवन चौक) में पहुँच गये थे। यह चौक शहर का कदाचित सबसे अधिक गुलजार, प्रकाशित, व्यस्त और आकर्षक केन्द्र है। लन्दन के पिकेडिली, आम्स्टर्डम के लैड्सप्लैन, या पेरिस के पिगाल चौक की तरह इसका महत्व है। कोपेन-हेगेन का नगर-भवन भी अपने आप में एक विशाल इमारत है, जो आम तौर पर अन्य यूरोपीय शहरों में नहीं मिलती। चौक में पहुँचते ही आसपास की इमारतों पर उसकी गरिमा के पड़ते हुए प्रभाव का आभास होने लगता है किन्तु तीसरी बार जब वहाँ गया, तो देखा उस शानदार भीष्म पितामह के समकक्ष एस. ए. एस. ने अपने कार्यालय के लिए एक विशाल स्काईस्क्रैपर खड़ा कर दिया है।

शहर के व्यस्त मध्य भाग में ही क्रिश्चियन्स बोर्ग महल बना है, जो सदियों से किसी-न-किसी रूप में राजमहल रहा है। प्रत्येक राजा ने उसे अपने ढंग से बनाया-बिगाड़ा पर बदला नहीं। आज आधुनिक युग में भी वह राज-परिवार और प्रशासन की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहा है। राज-परिवार के निवास स्थान के अतिरिक्त संसद, मुख्य न्यायालय, विदेश मन्त्रा-लय इत्यादि इसी इमारत में हैं। हवाई जहाज से एक दिन देखा कि क्रिश्चियन्स बोर्ग महल की स्थिति राजधानी में वैसी ही है, जैसी कि राजधानी की देश में

होती है । कोपेनहेगेन यूरोप की एकमात्र राजधानी है, जो एक द्वीप में स्थित है । क्रिश्चियन्स बौर्ग महल भी एक द्वीप समूह है, जिसके चारों ओर बड़ी और गहरी नहरें हैं । इन नहरों का सम्बन्ध सीधे समुद्र से होने के नाते छोटे स्टीमर इनमें आ जाते हैं, जिन्हें आकाश से देखने पर ऐसा लगता था, मानो राजा और सरकार पर किसी दूसरी शक्ति ने जहाजी बेड़े का घेरा डाल दिया हो । इन जाने-पहचाने स्थानों को फिर से पहचानते हुए हम लोग फिर नगर-भवन चौक में लौट आये । इस बार वहाँ दूसरा ही नजारा था । कारखानों और दफ्तरों की अभी-अभी छुट्टी हुई थी । इनमें काम करने वालों की एक बाढ़ सी उस चौक में आ गयी—और सबके सब साईकिलों पर सवार । एक साथ इतनी साइकिलों की बाढ़ को संभालने का काम कई ट्रैफिक पुलिस वाले कर रहे थे । कई चौराहों पर प्राईवेट कारों को रोक दिया गया ताकि यह टिड्डी दल निरापद गुजर जाये । लेकिन मजाल क्या कि उस आधे घण्टे की रेलपेल में दो-चार टक्करें न हों । और भी मन की बात तो यह थी कि इन टक्करों को अब इतना अवश्यम्भावी समझा जाने लगा है कि दो-चार कैमरामैन और प्रेस संवाददाता पहले से ही वह पहुँच जाते हैं । निश्चय मानें, उनका वहाँ जाना व्यर्थ नहीं जाता । कुछ-न-कुछ मसाला मिल ही जाता है । अक्सर मैं अपने डेनिश मित्रों को झिड़कता, "तुम लोग भी क्या हो ! देश का चौथाई भाग केवल राजधानी में रहता है । आधे उत्पादक कल-कारखाने केवल इस शहर में हैं । केवल एक शहर में इतना कारोबार ! तब ऐसी भीड़ और धक्कमधक्का नहीं होगा, तो क्या होगा ? वस्तुतः कोपेनहेगेन शहर डेन्मार्क के लिए बहुत बड़ा है ।" और फिर थोड़ा रुककर अपनी एक मीनमेखी दोस्त इंगा की ओर देखकर कहता, "लेकिन शायद इंगा कहेगी कि दरअसल बात यह है कि डेन्मार्क ही कोपेनहेगेन के लिये बहुत छोटा है ।"

उस दिन जून की चमकती धूप में जब कोपेनहेगेन से हैम्बर्ग (पश्चिमी जर्मनी) के लिए उड़ा, तो भीतर ही भीतर कोई पूछ रहा था, यह अन्तिम मुलाकात तो नहीं है । मैं अलविदा कहना चाहता, पर मुँह से आवाज न निकलती । विमान अब शहर पर था । कुछ सेकण्ड में यह ओझल हो जायेगा । मानो मुझे कुछ याद आ गया हो । शायद कुछ भूल आया हूँ । बगल में खिड़की के साथ एक बुजुर्ग बैठे थे । मैंने जल्दी-जल्दी उनसे एक मिनट के लिए अपनी

सीट देने को कहा। वे मेरी बात समझ पाते कि मैंने आकुल होकर उनके शरीर को नापता हुआ सा खिड़की पर अपना मुँह लगा दिया। माथा और नाक सिलोलाइड से जा टकराये। दूर कहीं नगर-भवन की चोटी और एस. ए. एस. के कांच चमक उठे। वहीं कहीं बोडिल, नील्स, योगेन्सेन और अस्तित्ववादी पीडरसेन खड़े होंगे। और पास ही कहीं कीर्केगार्द की काली प्रतिमा सफेद धूप में नहा रही होगी, शायद रंग बदलने के लिए। युग, देश और व्यक्ति ने रंग बदला है कीर्केगार्द की प्रतिमा पर कम से कम मौसम का प्रभाव तो पड़ना ही चाहिए। कोपेनहेगेन के आजाद परिवेश ने, उसके मुक्त व्यक्तित्व वाले नील्सों और बोडिलों ने मुझे अपने हृदय की उष्णता से बाँध लिया था। आजादी और बन्धन का यह कैसा मधुर विनिमय? यह कैसा घात-प्रतिघात था?

●

ओस्लो : आत्मीयता और आतिथ्य का नगर

□ □ □

एक के बाद एक मेरे तीन सिक्के टेलीफोन की छेद ने निगल लिए। किन्तु जिसकी तलाश थी वह न मिला। मैं हर बार बोलता—मैं बर्ट सीमायोगेन को चाहता हूँ। 'बर्ट' है ? ये क्या मिस्टर सीमायोगेन बोल रहे हैं ?—प्रत्येक बार कोई नई आवाज सुनाई देती। बड़ी विनम्र, सत्कारपूर्ण। एक बार तो अदा भरी आवाज भी सुनाई दी। कोई लड़की थी। अंत में मैंने झुँझलाकर पूछा—अपने यहाँ क्या कोई थोड़ी भी अंग्रेजी नहीं जानता ? वह अदाभरी आवाज 'वन मोमेंट' (एक मिनट रुकिए) कहकर कहीं चली गई। कई मिनट निकल गए। रिसीवर पकड़े-पकड़े हाथ दर्द करने लगा। कई बार कहा—मैं बर्ट सीमायोगेन को चाहता हूँ ! शायद मेरे पास उनका गलत नम्बर है। कृपया मेरी मदद कीजिए।

—मैं कोशिश करती हूँ— माधुर्य में पिछली सब आवाजों से होड़-सी करती हुई कोई आवाज बोली। कुछ समय तक रिसीवर में शान्ति रहती। फिर जवाब मिलता "अभी कोई पता नहीं मिला।" ऐसे ही पाँच-छै बार रिसीवर बोला और चुप हुआ। अन्त में सुभाषिणी फिर बोली—"आप जहाँ से बोल रहे हैं उस पब्लिक फोन का नम्बर बता दीजिए और रिसीवर रख दीजिए। मैं एक बार और अच्छी तरह खोज कर आपको फोन कर दूँगी।"

पन्द्रह मिनट बाद फोन की घंटी बजी—हलो, आप ही हैं न मिस्टर इंगलिशमैन ? आप मिस्टर सीमायोगेन को चाहते हैं ?

—जी हाँ, पर मैं इंगलिशमैन नहीं, भारतीय हूँ।

—अच्छा ! मुझे तो भारतीयों में बड़ी रुचि है। क्या आप........

—जी ! पर पहले मैं मिस्टर सीमायोगेन को चाहता हूँ.... ।—मैंने टोका।

—ओह ! माफ करें। लीजिए मैं कनेक्ट करती हूँ। बर्ट सीमायोगेन से बातें हुईं तो मालूम हुआ फोन उनके चाचा के नाम से था। आश्चर्य है एक्सचेंज की लड़की ने कितने परिश्रम से यह मालूम किया होगा, क्योंकि बर्ट

के चाचा का नाम सीमायोगेन नहीं कुछ और था। फोन आपरेटर कभी किसी की भी इतनी मदद नहीं करते—यूरोप में भी नहीं। मैं उस अनजान सुकंठी के प्रति कृतज्ञता से भर उठा। फिर याद आया उसने कितनी आत्मीयता से—मुझे भारतीयों में बड़ी रुचि है कहा था और मैंने बेसब्री में उसे टोक कर चुप कर दिया था। बर्ट से बातें समाप्त कर मैंने फिर एक्सचेंज को पुकारा—आप वही हैं, जिसने अभी-अभी एक भारतीय की बड़ी मदद की थी?

—जी नहीं। मैं तो अभी पहुँची हूँ। शायद मिस लीन होंगी। बुलाती हूँ—

मिस लीन—बर्था लीन—आई। बातें हुईं। मैंने अपनी अविनम्रता के लिए क्षमा माँगी। उनको कष्ट के लिए धन्यवाद दिया और हम फोन पर ही दोस्त बन गए। मैं ओस्लो में छै दिन रहा। छहों दिन मिस लीन ने घंटों समय देकर मुझे घुमाया। अपना घर दिखाया। खाना खिलाया। ओस्लो छोड़ने लगा तो स्टेशन तक छोड़ने आई। ट्रेन चली तो उनकी आंखें धुँधला उठीं। पलकें उठाए बिना मुस्कराकर 'गुडबाई' बोलीं और तेजी से मुड़कर चली गईं।

इस ढंग से मित्रता, ऐसी मित्रता और ऐसे मित्र पाना ओस्लो और उसके देश नार्वे में ही संभव है, जहाँ एक नहीं अनेक मिस लीन हैं। सहृदयता, मित्रता, आत्मीयता और आतिथ्य भाव का मुझे एक प्रतिनिधि मात्र मिला था। नार्वे के वास्तविक स्वभाव का प्रतिनिधि। आज सोचता हूँ तो विश्वास नहीं होता कि दुनिया में ऐसा भी देश है, ऐसे भी लोग हैं, जो किसी भी अजनबी को बिना देखे ही अपना लेते हैं। नार्वे ही नहीं समस्त स्कैंडिनेविया की यह निराली विशेषता है कि वहाँ राह चलते दोस्त मिल जाते हैं। दोस्त भी ऐसे कि आपको नाश्ते-भोजन पर लाएंगे, सिनेमा-थियेटर भी ले जाएंगे और अपने शहर की सैर करा देंगे। कुछ ऐसे भी मिल जाते हैं, जो आपको होटल से सीधे अपने घर ले जाएंगे। स्टाकहोल्ड (स्वीडन) में रात को काफी पीते समय एक दिन अपने स्वीडिश मित्रों के मुँह पर ही मैं स्वीडिश जीवन की—जैसे विलासिता, मद्यपान, अत्यधिक आत्मतुष्टि, सुकुमारता की आलोचना कर रहा था। वे मुस्कराते हुए चुपचाप सुनते, बीच-बीच में स्वीकार या प्रतिवाद में दो-चार शब्द कहते और अन्त में पूछते—-लेकिन हमारे देश में आप बड़े खुश नजर आते हैं। इसका रहस्य क्या है?—मेरा जवाब होता—मैंने जितनी दुनियाँ देखी है उसमें केवल

ओस्लो : आत्मीयता और आतिथ्य का नगर

□ □ □

एक के बाद एक मेरे तीन सिक्के टेलीफोन की छेद ने निगल लिए। किन्तु जिसकी तलाश थी वह न मिला। मैं हर बार बोलता—मैं बर्ट सीमायोगेन को चाहता हूँ। 'बर्ट' है ? ये क्या मिस्टर सीमायोगेन बोल रहे हैं ?—प्रत्येक बार कोई नई आवाज सुनाई देती। बड़ी विनम्र, सत्कारपूर्ण। एक बार तो अदा भरी आवाज भी सुनाई दी। कोई लड़की थी। अंत में मैंने झुँझलाकर पूछा—अपने यहाँ क्या कोई थोड़ी भी अंग्रेजी नहीं जानता ? वह अदाभरी आवाज 'वन मोमेंट' (एक मिनट रुकिए) कहकर कहीं चली गई। कई मिनट निकल गए। रिसीवर पकड़े-पकड़े हाथ दर्द करने लगा। कई बार कहा—मैं बर्ट सीमायोगेन को चाहता हूँ ! शायद मेरे पास उनका गलत नम्बर है। कृपया मेरी मदद कीजिए।

—मैं कोशिश करती हूँ— माधुर्य में पिछली सब आवाजों से होड-सी करती हुई कोई आवाज बोली। कुछ समय तक रिसीवर में शान्ति रहती। फिर जवाब मिलता "अभी कोई पता नहीं मिला।" ऐसे ही पाँच-छै बार रिसीवर बोला और चुप हुआ। अन्त में सुभाषिणी फिर बोली—"आप जहाँ से बोल रहे हैं उस पब्लिक फोन का नम्बर बता दीजिए और रिसीवर रख दीजिए। मैं एक बार और अच्छी तरह खोज कर आपको फोन कर दूँगी।"

पन्द्रह मिनट बाद फोन की घंटी बजी—हलो, आप ही हैं न मिस्टर इंगलिशमैन ? आप मिस्टर सीमायोगेन को चाहते हैं ?

—जी हाँ, पर मैं इंगलिशमैन नहीं, भारतीय हूँ।

—अच्छा ! मुझे तो भारतीयों में बड़ी रुचि है। क्या आप........

—जी ! पर पहले मैं मिस्टर सीमायोगेन को चाहता हूँ.... ।—मैंने टोका।

—ओह ! माफ करें। लीजिए मैं कनेक्ट करती हूँ। बर्ट सीमायोगेन से बातें हुई तो मालूम हुआ फोन उनके चाचा के नाम से था। आश्चर्य है एक्सचेंज की लड़की ने कितने परिश्रम से यह मालूम किया होगा, क्योंकि बर्ट

के चाचा का नाम सीमायोगेन नहीं कुछ और था। फोन आपरेटर कभी किसी की भी इतनी मदद नहीं करते—यूरोप में भी नहीं। मैं उस अनजान सुकंठी के प्रति कृतज्ञता से भर उठा। फिर याद आया उसने कितनी आत्मीयता से—मुझे भारतीयों में बड़ी रुचि है कहा था और मैंने बेसब्री में उसे टोक कर चुप कर दिया था। बर्ट से बातें समाप्त कर मैंने फिर एक्सचेंज को पुकारा—आप वही हैं, जिसने अभी-अभी एक भारतीय की बड़ी मदद की थी ?

—जी नहीं। मैं तो अभी पहुँची हूँ। शायद मिस लीन होंगी। बुलाती हूँ—

मिस लीन—बर्था लीन—आई। बातें हुईं। मैंने अपनी अविनम्रता के लिए क्षमा माँगी। उनको कष्ट के लिए धन्यवाद दिया और हम फोन पर ही दोस्त बन गए। मैं ओस्लो में छै दिन रहा। छहों दिन मिस लीन ने घंटों समय देकर मुझे घुमाया। अपना घर दिखाया। खाना खिलाया। ओस्लो छोड़ने लगा तो स्टेशन तक छोड़ने आई। ट्रेन चली तो उनकी आंखें धुँधला उठीं। पलकें उठाए बिना मुस्कराकर 'गुडबाई' बोलीं और तेजी से मुड़कर चली गईं।

इस ढंग से मित्रता, ऐसी मित्रता और ऐसे मित्र पाना ओस्लो और उसके देश नार्वे में ही संभव है, जहाँ एक नहीं अनेक मिस लीन हैं। सहृदयता, मित्रता, आत्मीयता और आतिथ्य भाव का मुझे एक प्रतिनिधि मात्र मिला था। नार्वे के वास्तविक स्वभाव का प्रतिनिधि। आज सोचता हूँ तो विश्वास नहीं होता कि दुनिया में ऐसा भी देश है, ऐसे भी लोग हैं, जो किसी भी अजनबी को बिना देखे ही अपना लेते हैं। नार्वे ही नहीं समस्त स्कैंडिनेविया की यह निराली विशेषता है कि वहाँ राह चलते दोस्त मिल जाते हैं। दोस्त भी ऐसे कि आपको नाश्ते-भोजन पर लाएंगे, सिनेमा-थियेटर भी ले जाएंगे और अपने शहर की सैर करा देंगे। कुछ ऐसे भी मिल जाते हैं, जो आपको होटल से सीधे अपने घर ले जाएंगे। स्टाकहोल्ड (स्वीडन) में रात को काफी पीते समय एक दिन अपने स्वीडिश मित्रों के मुँह पर ही मैं स्वीडिश जीवन की—जैसे विलासिता, मद्यपान, अत्यधिक आत्मतुष्टि, सुकुमारता की आलोचना कर रहा था। वे मुस्कराते हुए चुपचाप सुनते, बीच-बीच में स्वीकार या प्रतिवाद में दो-चार शब्द कहते और अन्त में पूछते—-लेकिन हमारे देश में आप बड़े खुश नजर आते हैं। इसका रहस्य क्या है ?—मेरा जवाब होता—मैंने जितनी दुनियाँ देखी है उसमें केवल

यह देश ही है, जहाँ मुझे प्रत्येक अजनबी मित्र जैसा लगता है। न जाने किस सड़क, पार्क, रेस्तरां या सिनेमा में न जाने कौन अचानक 'हलो' कहकर मुस्करा देगा और बेहद स्नेह और सम्मान से मेरी होटली आजादी छीनकर अपने परिवार के बीच ला पटकेगा। कितना आनंददायक होता है आजादी का यह अपहरण। आप इस आनन्द का अनुमान नहीं लगा सकते। एक बार हमारे देश आइए। लोग आपको घूर-घूर कर देखेंगे। आपकी गोरी चमड़ी देखकर अपनी अंग्रेजी भी बघारने लगेंगे। लेकिन कहाँ है यह आत्मीयता, यह निस्वार्थ, निश्छल आतिथ्य, सम्मान सहित आतिथ्य। मैं गरीबों की नहीं अमीरों की बात कर रहा हूँ, जिनके पास बंगला, कार सब कुछ है। गरीब बेचारे तो अपने गाँव के बाहर के प्रत्येक व्यक्ति से डरते हैं। मैं भावावेश में अपने ही देशवासियों की निन्दा करने लगता। वे उत्सुकता और सहानुभूति से मुझे देखते रहते। लेकिन उस दृष्टि में भर्त्सना न होती कि तुम कैसे आदमी हो जो विदेश में आकर अपने देश को कोस रहे हो। बाद में मैंने उन लोगों की इस एक और विशेषता की खोज की—या कहिए उसे पहचाना—कि उनमें आधुनिक युग के फैशन के अनुरूप अंध देशभक्ति नहीं है। उनका विकास इतना हो चुका है कि वे किसी चीज को सहज मानवता की कसौटी पर कसने के अभ्यस्त हो गए हैं। कोई बात देशभक्ति के प्रसंग में से परे अपने आप में अच्छी और खराब हो सकती है इसका ज्ञान ही नहीं आचरण भी उनके जीवन में है। इसलिए वे बेमौके हर बात के साथ देशभक्ति को नहीं जोड़ते फिरते। निस्संकोच आत्मालोचना और दूसरों की आलोचना मुस्करा कर ग्रहण करने की क्षमता भी इसी का परिणाम है।

दरअसल यह बात न्यूनाधिक रूप में स्कैंडिनेविया के अन्य देशों पर भी लागू होती है। डेन, नार्वेजियन, फिनिश कोई भी हो ऐसे सहज मानवीय विषयों में वे इतने सहिष्णु, शांत और आत्म-निरपेक्ष होते हैं कि हैरन होती है। लगता है कि क्या इनमें अपने देश के प्रति कोई भावनाएं हैं या नहीं? क्या ये वीतराग हो गए हैं। या ये भौतिक सुखों से इतने परिपूर्ण हैं कि अपने आपको छोड़ समष्टिगत भावनाओं से विमुख नहीं होते? स्कैंडिनेवियाइयों पर आत्म-परितुष्टि के लिए प्रायः यह आरोप लगाया जाता है कि वे जीवन संघर्ष से इस सीमा तक निष्कृति पा चुके हैं कि दूसरों के प्रति उनके मन में स्वभावतया

रुचि, सहानुभूति और सहृदयता पैदा हो जाती है। यह उक्ति कुछ व्यक्तियों पर भले ही लागू हो पर पूरे देश पर लागू नहीं हो सकती। मिस लीन को ही देखें। ३८ वर्षीया महिला है। तीन बच्चों की माँ है। साधारण आमदनी है। देखने में भी साधारण तो क्या असुन्दर ही कहलाएँगी। शिक्षा भी कोई विशेष नहीं। 'स्मार्ट' पति इनसे पाँच-छै साल में ऊब गया। १० साल तलाक को हो गए हैं। अब दुबारा विवाह की न आशा है और न गुंजाइश, क्योंकि दुबारा तलाक उनके कोमल शरीर की शहतीरों को उखाड़ फेंकेगा। सब से बड़ा लड़का १५ का हो गया है जल्दी ही हाईस्कूल से निकल कर उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालय में जायगा। बाकी दो लड़कियाँ १३ और १० की है। खा-पीकर समय से पहले ही युवती बन रही हैं। इन तीनों के पालन, शिक्षा और भविष्य की चिन्ता ही क्या कम है। टेलीफोन आपरेटर को मिलता ही कितना है। पर नार्वे की समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत व्यापक सामाजिक सुरक्षाओं (सोशल सिक्युरिटीज) को धन्यवाद है। कम-से-कम आर्थिक चिन्ता तो नहीं है। फिर भी अन्य बातें तो हैं ही। मानसिक संघर्ष, पारिवारिक जीवन और सामाजिक प्रतिष्ठा ये भी तो शाश्वत प्रश्न हैं। लेकिन वहीं मिस लीन को इसके कारण दूसरों के प्रति दुर्भाव नहीं है। छै दिनों में न जाने कितनी बार और कितना सारा भारत के विषय में पूछा। गाँधी, रवीन्द्र, नेहरू और साधुओं (जी हां !) के देश के रूप में उसकी सराहना की। "कितना अद्भुत होगा आपका देश।" 'आप बड़े भाग्यवान हैं, जो वहाँ जन्मे हैं।" "आप लोग बहुत अच्छे होते हैं।" इत्यदि, इत्यादि। वे जितना ही सराहतीं मैं संकोच और आत्मग्लानि से दबता जाता। अपने देश की पुरोहिती करने का संकल्प ढीला पड़ जाता। उनके सामने हीनता का अनुभव करता। जो बात मुझे उनके लिए कहनी चाहिए वे उल्टे बिना समुचित ज्ञान के मेरे बारे में—हम भारतीयों के बारे में—कहे जा रही थीं। नार्वे में कोई गांधी या रवीन्द्र न जन्मा हो पर नार्वे के समाज में, व्यक्तियों में उनके आदर्शों का प्रतिबिंब साफ दिखाई देता है। हम गांधी के बीच रहकर, गांधी के विचार प्राप्त करके भी जो न कर पाए उन्होंने बिना इस नाम के और इस नाम से दिए गए उपदेशों के कर डाला है, मानो गांधी और रवीन्द्र वहीं जन्मे हों। वहीं के हों।

मैं जब-जब नार्वे गया ओस्लो तक ही जा पाया। ओस्लो में ही नार्वे यात्रा

की परिपूर्णता का ऐसा अनुभव होता कि अन्यत्र गांवों, कस्बों में न जा सकने का मलाल न रह जाता। बहुत कम ऐसे देश हैं, जिनका सब से बड़ा शहर और राजधानी शेष समाज से एकात्म हो गया हो। नार्वे की अर्थ-व्यवस्था और सामाजिक संस्कृति की यह भी एक जबर्दस्त विशेषता है। नार्वे करीब ३५ लाख आबादी का एक छोटा-सा देश है। पर आबादी के हिसाब से आकार प्रकार राक्षसी है। क्षेत्रफल १५,००० वर्गमील, लम्बाई लगभग ९,९०० मील लेकिन चौड़ाई केवल ५ मील से अधिकतम २६७ मील तक है। भौगोलिक बनावट कम विलक्षण नहीं है। तीन ओर से यह समुद्र से घिरा है। समुद्रतटीय सीमा की लम्बाई सामान्य लम्बाई से कई गुना ज्यादा है—लगभग १,२०९ मील। पूरे देश को घेरे हुए—कुछ भीतर भी हैं—करीब डेढ़ लाख द्वीप। दुनियाँ में शायद ही कोई इतना विचित्र देश हो। पूरी आबादी देश के बहुत ही छोटे-से हिस्से—दक्षिणी हिस्से में बसी है। बाकी उत्तरी नार्वे में लाप जाति के लोग रहते हैं। लाप लोग वस्तुतः स्कैंडिनेविया के उत्तरी छोर में रहते हैं, जो नार्वे, स्वीडन और फिनलैंड तीनों देश में स्थित हैं। इस पूरे भू-भाग को लापलैंड कहा जाता है। देश की आबादी का सातवाँ भाग केवल ओस्लो शहर में रहता है—आबादी लगभग पांच लाख। उद्योग, परिवहन, शिक्षा, संस्कृति, प्रशासन सभी का केन्द्र भी ओस्लो है। देश का प्रवेश द्वार भी यही शहर है। शायद इसीलिए बहुत से विदेशी यात्री यहाँ से लौट जाते हैं, जबकि असल में नार्वे की यात्रा शुरू ही होती है ओस्लो से। एकदम दक्षिणी छोर पर स्थित होने के कारण—जैसे हमारा तिरुवांकुर। ओस्लो की दूरी देश के अन्य भागों से बहुत अधिक है। उधर भौगोलिक भिन्नता इतनी अधिक है कि वस्तुतः नार्वे में हजारों ऐसी चीजें हैं, जिनके ओस्लो में दर्शन पाना तो दूर की बात उसका उन चीजों से संपर्क तक नहीं है। उत्तरी भाग में असंख्य द्वीप, पहाड़ घाटियाँ, गुफाएँ, जंगल, ग्लेशियर, दलदल, नदियाँ, खाड़ियाँ और झीलें हैं। वहाँ का जीवन और भौतिक परिस्थितियाँ लगभग उत्तरी ध्रुव क्षेत्र के समान हैं। दस महीने बर्फ, कृषि का अभाव, आधुनिक जगत और सभ्यता से कोसों दूर। और इन सब के ऊपर है मध्यरात्रि का सूर्य, जो प्रतिवर्ष गर्मियों में एक माह तक कभी डूबता ही नहीं। ओस्लो उन सबों से इतनी दूर है जितनी दूर ये सब आधुनिक युग में हैं। द्वितीय महायुद्ध के पहले तक उत्तरी यूरोप की

इस चोटी को अंधा प्रदेश (डार्क रीजन) ही माना जाता था जैसे अफ्रीका को 'डार्क कान्टिनेंट'। पर इधर १५-२० वर्षों से ग्रीनलैंड, साइबेरिया और अलास्का की तरह लापलैंड में भी काफी विकास कार्य होता रहा है। जगह-जगह सड़कें निकाली गई हैं। जहाँ सड़कें नहीं पहुँच सकीं वहाँ विमान या जहाज से सम्पर्क जोड़ा गया। क्रमशः देश के दक्षिणी भाग पर—जहाँ प्रायः सभी आबादी शहरों और औद्योगिक केन्द्रों में है—इसका प्रभाव पड़ने लगा है। ओस्लो में भी उत्तरी नार्वे की प्रकृति-प्रधान सभ्यता के तत्व पैठने लगे हैं, जिसका प्रभाव शहर के जनजीवन पर बहुत सुखद पड़ रहा है। स्वयं प्राकृतिक छटा के बीच बसे होने के बावजूद ओस्लो हमेशा औद्योगिक शहर ही रहा है जिसका मुख्य कारण बंदरगाह, यूरोपीय महाद्वीप के एकदम निकट होना और आस-पास कृषि योग्य भूमि का अभाव थे। किन्तु अब ओस्लोवासियों की रुचि शहर के बाहर पहाड़ियों और गुफाओं में जाने की ओर भी है। समुद्रतट और झीलों के किनारे सर्वत्र स्नान और मनोरंजन के स्थान बन गए हैं। आस-पास के जंगलों में कैम्पिंग बहुत लोकप्रिय हो गया है। शहर में ही रेस्तराओं, होटलों, पार्कों और सड़कों को कुछ दूसरे ढंग से सजाया गया है। अपने घरों की सजावट में भी ओस्लोवासियों की बदलती हुई अभिरुचियों का परिचय मिलता है। सैकड़ों लोग गर्मियों में जहाज, विमान, बस, रेल से उत्तरी इलाकों की यात्रा पर जाते हैं। नौजवान लड़के-लड़कियों के जत्थे 'हिचहाइकिंग' और 'हाइकिंग' करते हुए मीलों भीतर ऐसी-ऐसी जगह पहुँच जाते हैं, जहाँ दस वर्ष पहले सरकारी अफसरों और अन्वेषकों के अलावा कोई पहुँचने की कल्पना भी नहीं कर सकता था। स्कूल, कालेजों के वार्षिक टूर अब केवल लंदन, पेरिस और बर्लिन नहीं जाते बल्कि नारविक, ट्रोम्सो और हामरफेस्ट भी जाते हैं। स्कूल की पाठ्य. पुस्तकों में भी लाप लोगों के जीवन और देश के बारे में काफी कुछ पढ़ाया जाने लगा है। धीरे-धीरे दक्षिणी नार्वे उत्तरी नार्वे के साथ एकात्म भाव अनुभव करने लगा है। नई पीढ़ी यह समझने लगी है कि उसका देश बरगेन और ट्रान्डहेम तक ही नहीं किरकेन्स तक है। देश और ओस्लो की अल्प आबादी के कारण बीसवीं सदी की औद्योगिक सभ्यता इतनी हावी नहीं हो पाई थी कि इन नए तत्वों को जनजीवन में स्थान पाने में कठिनाई होती। ओस्लो की शहरी जिन्दगी में शायद इसीलिए वह यांत्रिक खोखलापन नहीं महसूस होता, जो न्यूयार्क, लंदन,

हाम्बुर्ग या पेरिस की जिन्दगी में महसूस होता है। स्त्री-पुरुष की पूरी सामाजिक आजादी, सेक्स सम्बन्ध पर न्यूनतम नियंत्रण, मद्यपान की छूट और व्यावसायिक प्रवृत्तियाँ होने के बावजूद लोगों का अपना व्यक्तित्व कायम है। उनके भावों, भावनाओं एवं प्रवृत्तियों में एक अपनी विशेषता और गहराई है। इसके फलस्वरूप उनका व्यवहार निष्कपट है, जीवन स्पष्ट है, मन और मस्तिष्क अनेक समकालीन बौद्धिक उलझनों से दूर है। ओस्लो विश्वविद्यालय के एक छात्र ने ठीक ही कहा था कि "हमारे देश में उत्तर और दक्षिण के सम्पर्क से राष्ट्रीय संस्कृति का एक नया चरण शुरू होता है। हमें अब अपने देश की क्षेत्रीय विशालता का अनुभव हो रहा है। जो आबादी की अल्पता की पूर्ति करता है।"

ओस्लो में चौथा दिन था। शायद रविवार था। दोपहर को चमकती धूप में मैं अपनी मेजबान और उनकी सहेली के साथ एक पार्क में टहल रहा था। सामने एक तेरह-चौदह बरस की सुन्दर लड़की गुड़िया की तरह सजी, लैंप शेड की तरह खूब घेरदार और उठा हुआ, कपड़े का फ्राक पहने बिल्कुल 'स्कूल गर्ल' अन्दाज से बेफ्रिक चली आ रही थी। सामने एक वैसे ही सुन्दर शिशु को पैरम्बुलेटर में बैठाए ठेले आ रही थी। दोनों हमारे पास पहुँचे तो अनायास ही मेरे मुँह से निकल गया—कितना प्यारा बच्चा है। मेरी मेजबान की सहेली कुछ शोख थी। मुस्कराकर बोलीं—बच्चे की माँ किससे कम है। आप उसकी तो उपेक्षा कर रहे हैं। कैसे नौजवान हैं।

"बच्चे की माँ ?" मैं अचकचाकर बोला। मैंने सोचा था वह लड़की बच्चे की बहन या कोई "बेबी सिटर" है। 'माँ, सुनकर स्तब्ध रह गया। यह उम्र, यह पहनावा, बिल्कुल स्कूल में पढ़ने वाली गुड़िया और माँ। मेरी उत्सुकता देखकर मेरी दोनों साथियों ने इसी विषय पर चर्चा छेड़ दी। मालूम हुआ कि वह बालिका विवाहित-माँ नहीं क्वारी माँ थी। उसके हाथ में न विवाह की अँगूठी थी और न ही कानूनन विवाह योग्य उम्र ही थी। फिर भी माँ थी। नार्वे में सेक्स विषयक असीम आजादी के परिणाम अब स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे हैं। आये दिन १३-१४ वर्ष की अविवाहित लड़कियों को बच्चे होते हैं। कइयों का तो यौन आचरण इतना उच्छृंखल हो उठता है कि वे अपने कई दोस्तों में से बच्चे के पिता का पता तक नहीं लगा पातीं। देश में ऐसी माताएँ और बच्चे दिनोंदिन बढ़ते जा रहे हैं। इन नाजायज बच्चों की संख्या तो अब इस सीमा पर

पहुँच गई है कि सरकार इसे राष्ट्रीय समस्या समझ कर योजनानुसार उनके पालन-पोषण और शिक्षा का प्रबंध करती है। उनकी माताएँ अभी स्वयं अपने माता-पिता के साथ रहती हैं। उनकी शिक्षा भी चल रही है। कइयों की तो माताएँ भी बच्चे दे रही हैं। तो भला ऐसे घर में इन स्कूली माताओं के बच्चों को कौन सँभाले। आर्थिक कठिनाई है सो है ही। इसलिए सरकार को विवश होकर तमाम शिशुशालाएँ खोलनी पड़ीं, जहाँ बालिकाएँ अपने बच्चों को सवेरे ८ बजे रख कर स्कूल चली जाती है और शाम को ४ बजे स्कूल से लौटते समय अपने साथ घर ले जाती हैं। कई लड़कियाँ तो इनका पालन भी नहीं कर सकतीं। कई डर के मारे बच्चों को अस्पताल या माँ-बाप के घर में छोड़कर भाग जाती हैं। इन सबका प्रबन्ध सरकार के जिम्मे पड़ गया है। इसलिए भी कि १४ वर्ष की उम्र तक प्रत्येक लड़के-लड़की के लिए शिक्षा अनिवार्य है। यदि कोई लड़की माँ बनने के बाद स्कूल छोड़ भी देना चाहे तो इसकी कानून अनुमति नहीं देता। नार्वेजियन संसद में इस पर काफी वाद-विवाद भी हो चुका है। पर शिक्षा सम्बन्धी कानून में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। गर्भपात भी नियम विरुद्ध है, जिससे कई भावुक और मायूस लड़कियों ने अमानुषिक तरीकों से स्वयं गर्भपात किए। कई पकड़ी गईं। सजाएँ हुईं। कुछ हत्याएं और आत्म-हत्याएँ भी हुईं। ४-६ वर्ष तक स्थिति बहुत तनावपूर्ण रही। शिक्षक, अभिभावक, सरकार और नेता सभी चिन्तित थे। किन्तु इसको कोई न रोक सका। समाधान मिला तो केवल पितृहीन बच्चों के पालने के सरकारी प्रबन्ध में। बाकी अब सब स्वाभाविक-सा हो गया है। तनाव और मायूसी समाप्त हो गई है। अविवाहित बाल्य-माताओं का संकोच भी जाता रहा है। समाज में उनका निरादर भी नहीं होता। व्यावहारिक नार्वेवासियों ने यथार्थ को खुले दिल से स्वीकार कर लिया है। अत्यधिक भावुकता, नैतिकता, आत्मसंयम या स्वाभाविक भी उनके स्वभाव में नहीं है।

मैं पार्क की उपर्युक्त घटना के बाद इस विषय में इतना उत्सुक हो उठा कि मिस लीन से आग्रह करके मैंने एक ऐसी ही अविवाहित-माँ को बुलाकर इंटरव्यू सा लिया। समझ लिया जाए वह आठवीं कक्षा की कोई छात्रा बेतीना थी। उम्र १५ वर्ष, शिशु ६ माह का। इंटरव्यू का मुख्य अंश इस प्रकार था—

—बेतीना, क्या तुमने इस बच्चे के पिता को हृदय से चाहा था ?

—हाँ, कुछ सोचकर उसने उत्तर दिया।

—तो उससे विवाह क्यों नहीं कर लेतीं—अभी तीन ही वर्ष बाद जब तुम कानूनन विवाह-योग्य उम्र की हो जाओगी ? अभी सगाई कर लो, तीन वर्ष बाद शादी।

—मैं तो तैयार हूँ। मेरा मित्र भी तैयार है। लेकिन हम दोनों में से यह किसी को निश्चित नहीं मालूम है कि यह बच्चा हम दोनों का है। मैं लड़कों में बहुत 'पापुलर' रही हूँ। हम बच्चे की खातिर शादी करेंगे तो इसका निश्चय हो ही जाना चाहिए कि बच्चे का बाप कौन है।

वेतीना ने निर्विकार सहज भाव से मुझे समझा दिया। मैं मुँह बाये उस स्थितिप्रज्ञ बालिका को देखता रह गया। सोचा उसे डाक्टरी परीक्षा द्वारा इस बात का पता लगाने की सलाह दूँ। पर बात मुँह में ही रह गयी। उसके लिए लड़कों में बहुत 'पापुलर' होने की स्थिति एकदम स्वाभाविक और स्वीकार्य थी।

इस घटना के बाद बार-बार अन्य नार्वेजियन मित्रों से इस पर घंटों बातें हुईं। उनके दृष्टिकोण से यही लगता कि इसमें राष्ट्रीय चरित्र, मानवीय कमजोरी या आदर्श सेक्स-जीवन का प्रश्न अब नहीं रह गया है। प्रश्न है तो केवल व्यक्तिगत जिम्मेवारी की जो आर्थिक सुविधाओं और सामाजिक अवस्थाओं के अनुसार बदलती है। आज का नार्वेवासी अपनी बहुत सारी जिम्मेदारियाँ राज्य को सौंप चुका है। या राज्य ने लोक कल्याण योजनाओं के अन्तर्गत स्वयं ले लिया है। तो भला वह भौतिक सुख को पूर्णतया भोगने से क्यों डरे ? जब १२-१३ वर्षीय बालिका को प्रकृति ने यौन सुख भोगने योग्य बना दिया है और राज्य उसके अन्तिम परिणाम को झेलने को तैयार है तो वह क्यों इससे विमुख हो ? नार्वेवासियों के मानस जगत और स्थूल संसार का यह एक और पक्ष था। भारतीय संस्कारों में पला हमारा मन इस पक्ष की संगति अथवा नैतिकता को कदापि नहीं स्वीकार कर सकता। स्वाभाविक ही हम ऐसे समाज को ह्रासोन्मुख, विघटनोन्मुख, चरित्रहीन, दुर्बल, घिनौना, बीमार, पापी न जाने क्या-क्या समझेंगे। हमारे दृष्टिकोण से उसकी यौन उच्छृंखलता में कहीं औचित्य नहीं दिखेगा। तथापि उन्हीं भारतीय संस्कारों में बढ़े मेरे मन में नार्वेवासियों का—ओस्लो के शहरवालों का भी—अन्तर्जगत कई भिन्न

तत्वों में भी बसा हुआ पाया, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। दरअसल, नार्वे ही क्यों कई दूसरों देशों के भी, जिनकी सभ्यताएँ हजारों साल पुरानी हैं, जनजीवन में कई परस्पर विरोधी पक्ष पाए जाते हैं। और ऐसे विरोधी पक्ष, जिनको वे देश अपने दृष्टिकोण से सामंजस्यपूर्ण नहीं सिद्ध कर सकते।

ओस्लोवासियों को अपने शहर को ऐतिहासिक विशिष्ट या आकर्षक कह कर प्रदर्शित करने की कोई उत्सुकता नहीं रहती। उल्टे वे प्रारम्भ में ही चेतावनी दे देते हैं कि यदि आप पेरिस, रोम, एथेंस, वेनिस, वगैरह देखने के बाद ओस्लो के बारे में कुछ महत्वाकांक्षी हो उठे हों तो आपको निराश होना पड़ेगा। हमारा ओस्लो छोटा, साधारण किन्तु सुन्दर, शान्त और सुरुचिपूर्ण शहर है। आपको वह प्रभावित न कर सके पर आप उसे पसन्द अवश्य करेंगे। मेरे मेजबानों ने भी इसी निरभिमान से मुझे अपना विनयी नगर दिखाया— एक आकर्षक तटस्थता तथापि ममत्व के साथ। नार्वेवासियों के स्वभाव की यह भी अपनी विशेषता है। साधारणता और ममता का ऐसा मोहक समावेश उनके व्यवहार में होता है कि एक ओर तो वे विनयी, तटस्थ और निरभिमान दिखाई देते हैं तो दूसरी ओर आसक्तिपूर्ण और गौरवाभिभूत। जितना मेरे मेजबानों ने कहा था ओस्लो उतना साधारण, अकिंचन नहीं निकला। पेरिस, रोम वगैरह का उससे मुकाबला भले न हो (हो भी क्यों ?), पर पाँच लाख की आबादी के शहर में इतने सारे आकर्षण बहुत कम देखने को मिलते हैं। दिन भर हम लोग घूमते रहे। अनेक संग्रहालय, विश्वविद्यालय, नगर भवन, राष्ट्रीय नाट्यशाला, राष्ट्रीय संसद भवन इत्यादि विशेष रूप से दर्शनीय लगे। आधुनिक कला संग्रहालय में नार्वे के सब से बड़े चित्रकार एडवर्ड मुंक की कृतियों का सुन्दर संकलन है। मुंक ने बीसवीं सदी के उत्तर यूरोपीय कलाकारों को बहुत प्रभावित किया है। अपनी विलक्षण कल्पना और संवेदनशीलता के लिए वह आधुनिक 'इंप्रेशनिस्ट' चित्रकारों में अद्वितीय स्थान रखता है। सांस्कृतिक क्षेत्रों में कदाचित् मुंक और हैनिरिक इप्सेन (विख्यात नाटककार) ये ही दो ऐसे व्यक्ति हैं, जिन पर नार्वे अपना कह कर गर्व करता है। हालांकि इप्सेन अपनी व्यक्तिगतवादी विचारधारा और प्रगतिशीलता के कारण अब प्रचुर आलोचना का विषय बन गया है। विशेष रूप से नार्वेजियन युवावर्ग में। लेकिन मुंक की लोकप्रियता आश्चर्यजनक है। युवावर्ग के लिए वह आदर्श और बाकी नार्वे-

वासियों के लिए राष्ट्रीय कलाकार ही नहीं राष्ट्रीय व्यक्ति बन गया है। इसी प्रकार एक संग्रहालय में स्कैंडिनेवियन वाइकिंग (प्राचीन काल के समुद्री लुटेरे जो कालान्तर में अपने शौर्य और साहसिकता के लिए विख्यात हो गए) सभ्यता के अनेक अवशेष सुरक्षित जमा हैं। कुछ वाइकिंग नार्वे में ज्यों की त्यों समुद्र से निकाल कर रख ली गई हैं। हजारों साल से समुद्र के गर्भ में पड़े उनके हथियार, पोशाक, बर्तन इत्यादि खोज-खोज करके जिस जतन से रखे गये हैं उसमें निहित श्रम और कौशल सचमुच ही सराहनीय है। ओस्लो शहर की स्थापना ग्यारहवीं सदी में हुई थी। बाद में एक क्रिश्चियन ने इसे अपने नाम पर क्रिश्चियानिया नाम दिया। किन्तु बाद में फिर यह ओस्लो कहा जाने लगा। इस प्रकार यथेष्ट पुराना होते हुए भी ओस्लो अपेक्षाकृत पुराने से अधिक नया ही दिखाई देता है। तथापि अपने शहर और देश की प्राचीनता के परिचायक प्रतिनिधि तत्वों को वहाँ के निवासियों ने विशेष महत्त्व से जुटा रखा है।

डॉ० थॉमसन की किंग्स्टन क्लिनिक में एक मास

□ . □ □

मेरे मुँह से 'किंग्स्टन' शब्द पूरा निकलने के पहले ही टैक्सी वाला समझ गया कि मैं कहाँ जाना चाहता हूँ। सूटकेस टैक्सी में रखते हुए वह बोला—"कल ही तो दो रोगियों को वहाँ रखकर आया हूँ।"

एडिनबरा जैसे बड़े और वैचित्र्यपूर्ण शहर में किंग्सटन की इस ख्याति से मैं कुछ सहम-सा गया। सोचा, रोगियों का क्या ऐसा तांता लगा रहता है कि वहाँ जाने वाले हर व्यक्ति को पहले रोगी ही समझा जाता है ? जरूर विराट् चिकित्सालय होगा। पूछा—"किंग्स्टन में रोज रोगी आते जाते हैं ? क्या यह इतना बड़ा है ?"

ड्राइवर शायद विशुद्ध स्कॉट था—"जरूर। बिना दवाइयों के इलाज का ऐसा बड़ा अस्पताल आप इंगलैण्ड में भी न पाइयेगा। सारा कारोबार छह इमारतों में होता है।" लेकिन जब किंग्स्टन पहुँचा तो छह इमारतों का चिकित्सा केन्द्र होते हुए भी वहाँ वह भीड़ और भव्यता न थी। जिसकी मन-ही-मन कल्पना कर मैं कुछ निराश-सा हुआ था। इसके विपरीत ठीक वहाँ सारा परिवेश सरल, शान्तिपूर्ण और पारिवारिक था। चारों ओर हरियाली, रंग-बिरंगे फूलों की क्यारियाँ और सुन्दर करीने से कटे घास के छोटे-छोटे मैदान। थोड़ी ही देर में कई रोगियों और कर्मचारियों से परिचय हो गया। आध घन्टे बाद भोजन के लिए जब हम सब कमरे में इकट्ठा हुए तो नई जगह आने की उद्विग्नता दूर हो गयी थी। प्रायः भूल-सा गया था कि श्री थॉमसन द्वारा स्थापित योरोप के प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सा-केन्द्र में हूँ। जो अपनी भिन्न चिकित्सा-प्रणाली और दृष्टिकोण के लिए योरोप के बाहर भी लब्धप्रतिष्ठ है।

ब्रिटेन में इस समय प्राकृतिक चिकित्सा की दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं। एक पद्धति के अनुसार शरीर के भीतर छिपे चिकित्सक को जगाने के लिए अन्यान्य बाह्य उपचारों की आवश्यकता है। इससे शरीर की सामान्य प्रवृत्तियों में बाधा नहीं पड़ती। अतएव पूर्ण उपवास, एनिमा, मिट्टी, स्नानादि की मदद से शोधन

क्रिया अपेक्षाकृत तेजी से होती है। दूसरा केन्द्र लन्दन के पास ट्रिंग नामक कस्बे में है जिसके संस्थापक हैं स्टैन्ली लीफ। दूसरी पद्धति इन तमाम बाह्य उपचारों को कृत्रिम एवं अनावश्यक हस्तक्षेप समझती है। ऐसे उपचारों से चिकित्सा कम समय में भले हो जायें किन्तु रोगी स्वावलम्बी नहीं हो पाता क्योंकि इन सारे उपचारों को वह घर पर नहीं कर सकता और करेगा भी तो हमेशा किसी सहायक का मुहताज रहेगा। साथ ही बाह्य उपचारों से रोगी वह आत्म-विश्वास नहीं प्राप्त कर सकता जो उसकी मानसिक शक्ति के लिए अनिवार्य है। इस पद्धति का केन्द्र किंग्स्टन है जिसके संस्थापक हैं श्री जेम्स थॉमसन। भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा प्रायः प्रथम पद्धति को अपनाये है। अतएव मैं किंग्सटन के प्रति विशेष जिज्ञासु था।

मुझे बताया गया कि श्री थॉमसन छुट्टी मनाने भ्रमण पर गये हैं। लेकिन कल सवेरे रविवार होते हुए भी उनके जामाता और प्रमुख चिकित्सक श्री अलेक मिलेन मुझसे मिलेंगे। श्री मिलेन से काफी बातें हुईं। भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के बारे में उन्होंने कई प्रश्न किये और अन्त में इन वाक्यों से हमारी वार्ता समाप्त हुई कि आधुनिक मनुष्य की आधी बीमारी मानसिक एवं भावात्मक है और कई रोग तो केवल उसके मनोविकारों के परिणाम होते हैं। अतएव वह अपने मनोविकारों को नियन्त्रित कर ले, खाना-पीना सुधार ले, यथासम्भव खुली हवा और धूप का सेवन करे तो इतने से ही वह रोग से मुक्त हो सकता है। शरीर का स्वस्थ रहना स्वाभाविक बात है, वैसे ही जैसे भूख लगना या नींद आना। उसको पूर्ण और निर्बाध अवसर दो तो वह खुद अपने स्वाभव पर लौट आयेगा। नींद या भूख के लिए हम भला बाहरी प्रसाधनों का क्यों सहारा लें। फलस्वरूप किंग्स्टन की चिकित्सा बड़ी ही सहज और सामान्य है। उपचार के नाम पर रोगी को केवल रीढ़ की मालिश दी जाती है। किसी विशेष रोगी को पेड़ू की भी। बादलों के दिनों में धूप का अभाव पूरा करने के लिए यन्त्र द्वारा—अल्ट्रा-वॉयलेट किरणों से पीठ भी सेंकते हैं। यह प्राकृतिक प्रसाधन न होते हुए भी थॉमसन मन्डली यह कहकर अपना बचाव कर लेती है कि जो भी है न होने से तो अच्छा है। इसके अलावा कुछ बातें विशेष रूप से करने के लिए बतायी जाती हैं—(१) सबेरे उठते ही ठंडे पानी का अल्प स्नान। इस आदेश का पालन कदाचित २० प्रतिशत रोगी ही करते हैं। (२) सवेरे

उठकर मील दो मील-शक्ति अनुसार टहलना। इसका पालन १० प्रतिशत रोगी करते हैं। कुछ वहीं बगीचे में चहलकदमी करके नाश्ते पेर पहुँच जाते हैं। बाकी तो नाश्ते की घन्टी बजने पर ही कमरे के बाहर नजर आते हैं। (३) अधिक-से-अधिक धूप लेना। इसका पालन स्कॉटलैण्ड जैसे ठंडे देश में वे सहर्ष हैं। (४) नियमित व्यायाम करना। इसके कई सुयोग मिलने पर भी अधिकांश इसकी परवाह नहीं करते। (५) हमेशा गहरी सांस लेना। इसका पता अन्तर्यामी बने बिना मिलना असम्भव था।

कुछ बातें ऐसी भी हैं जिन्हें रोगी को न करने की सलाह दी जाती है। (१) चिकित्सालय में जो भोजन मिलता है इसके अलावा कुछ न खाना। इसका पालन अधिकांश लोग करते हैं। (२) भरसक पानी या अन्य पेय न पीना। पानी न पीने की बात योरोपीय सभ्यता के अनुरूप है। अतः कुछ कहना ही नहीं। (३) कभी पैर के ऊपर पैर चढ़ाकर न बैठना। इसकी चेष्टा हर रोगी तत्परता से करता है। (४) रात १० बजने के पहले सो जाना। इसका पालन करने वाले रोगी प्रायः वे होते हैं जिनके पास अपनी कार नहीं होती। अन्यथा कार वाले महाशय शाम को तफरी पर निकलने के बाद समय की पुकार अनसुनी कर जाते हैं। (५) हफ्ते में एक बार से अधिक गरम पानी का स्नान न करना। किन्तु ऐसे कई ठंडे खून वाले युवक देखने को मिले जो इस वर्ष की विशेष गरमी में भी गरम पानी का ऐश प्रायः हर रोज करते।

किंग्स्टन में पहली बार आये हर नये व्यक्ति को पहले दो-तीन दिन केवल लेट्युस के पत्तों और खट्टे दूध (मठा) पर रखा जाता है। उसके बाद दिन में दो बार सलाद-प्रधान भोजन भी दिया जाने लगता है। यह सलाद किंग्स्टन की विशिष्ट चीज है। एक बड़ी प्लेट में लेट्युस के पत्तों पर सजे कटे सेब, नाशपाती, गाजर, गोभी, टमाटर, काजू, किशमिश, पनीर इत्यादि, इसके साथ एक वक्त रोटी का एक टुकड़ा, दो बिस्कुट, मक्खन, शहद और पिसी मूंगफली। दूसरे वक्त फल का थोड़ा सा रस, दो छिलके सहित उबले आलू, थोड़ी सी उबली सब्जी, अंडा, पनीर जैसी किसी चीज का टुकड़ा, मिठाई या फल और एक विशेष प्रकार की गरम कॉफी का एक प्याला। अनुभवी रोगी के लिए एक ही वक्त सलाद। नाश्ते में अधिकांश रोगियों को लेट्युस और खट्टा दूध, अनुभवियों को भिगोयी किशमिश, अंजीर आदि। विदाई के दिन इसके साथ दो टोस्ट, मक्खन

और जैली। चार बजे कुछ स्वस्थ रोगियों का मन बहलाने के लिए फल का थोड़ा-सा रस। इस चिकित्सालय में उपवास आदि की प्रथा नहीं है अतएव भोजन की मात्रा की कोई चिन्ता नहीं करता। हर मर्ज के रोगी के लिए मेज पर रखा भोजन ही यथेष्ट है।

पहले ही दिन मुझे इसका पूरा आभास हो गया कि किंग्स्टन में रोगी को असीम स्वतन्त्रता प्राप्त है। हर निर्देश उसे सलाह के रूप में दिया जाता है। मानना न मानना उस पर निर्भर करता है। वह स्वयं अपने शरीर, स्वभाव और जीवन के दोषों को समझे और सुधारे। सोचने और करने की यह अनन्त आजादी ही श्री थॉमसन की चिकित्सा-पद्धति की पीठिका है।

एक दिन सूचना मिली कि श्री थॉमसन आ गये हैं और सवेरे एक भाषण देंगे। मैं भी पहुँचा, बिल्कुल ठीक समय पर बड़े हाल का द्वार खुला और श्री थॉमसन दाखिल हुए। सफेद बालों से ढका सिर, काले फ्रेम के चश्मे से ताकती हुई पैनी आँखें, ७५ की उम्र में भी कसा हुआ फुर्तीला शरीर। रोगियों के लिए डॉक्टर का उदाहरणीय शरीर, अन्यथा शफाखाने के मुल्लाओं को तो मैंने प्रायः अपनी उम्र से दढ़ा हुआ पाया है। कई तो अपने मरीज के शागिर्द दिखाई देते हैं। ७५ तक पहुँचते-पहुँचते वे शफाखाने से ही नहीं इस दुनिया से भी इस्तीफा दे चुके होते हैं। मैंने भाषण तो कम सुना, रह-रह कर उनका और उनके व्यक्तित्व का निरीक्षण करता रहा। भोजन के पूर्व लगभग ११ बजे उन्होंने मुझे अपने दफ्तर में बुलाया। मुझे भरपूर देखते हुए सहज भाव से हाथ मिलाया और बैठने का संकेत किया। थोड़ी देर मेरा रेकार्ड देखकर बोले—
"तो इस समय आपको कोई कष्ट नहीं है ?"

"नहीं।"

"आपने इसका कारण समझने का प्रयत्न किया ?"

"शायद इसलिए कि मैं यहाँ अपने को मौत से सुरक्षित अनुभव करता हूँ।" हँस पड़े। लेकिन तुरन्त गम्भीर होकर बोले—

"सचमुच यही बात है। अधिकांश रोगी इस मानसिक सुख से ही चंगे हो जाते हैं और डॉक्टर समझते हैं कि वे उन्हें अपनी दवाइयों से अच्छा करते हैं। आप समझ सकते हैं कि मनुष्य की शारीरिक व्याधि के पीछे मानसिक और भावात्मक व्याधि का कितना जबरदस्त हाथ है। यदि हम इस दूसरी व्याधि को

ठीक से समझ लें और फिर उस पर नियन्त्रण पाने की चेष्टा करें तो संसार के सैकड़ों अस्पताल और मेडिकल कालेज दूसरे ही दिन बन्द हो जायें।........"

इस प्रकार संक्षेप में उन्होंने अपनी चिकित्सा के सिद्धान्तों का परिचय दिया। यह जानते हुए भी कि यह आदमी बात से अधिक काम करने वाला है मैंने बाधा दी—"लेकिन आज के जटिल और व्यस्त जीवन ने इस समस्या को जितनी व्यापक बनाया है उतना ही कठिन। ऐसी स्थिति में क्या आपकी चिकित्सा सहज, ग्राह्य और उपयोगी है ?"

"क्यों नहीं ? नाना प्रकार के बाह्य उपचारों, बार-बार चिकित्सक के यहाँ दौड़ने और पग-पग पर गलत भोजन और रहन-सहन के भय से कौन नहीं मुक्ति चाहता। थोड़ी-सी चेष्टा से मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त कर कम-से-कम रोजमर्रा की साधारण बीमारियों से तो बचा ही जा सकता है। आगे चलकर ये ही साधारण बीमारियाँ पूर्ण रोग का रूप धारण कर लेती हैं। अतएव यदि तत्काल नहीं तो कालान्तर में आत्म-संयम और मानसिक सन्तुलन से आरोग्य मिलेगा ही।" मैं उनकी "थोड़ी-सी चेष्टा" से सहमत नहीं हो सका। यह हर व्यक्ति का अनुभव है कि शरीर की अपेक्षा मन को सिखाना कहीं अधिक मुश्किल है। योगविद्या इतनी वैज्ञानिक और लाभकर होते हुए भी एक छोटे वर्ग तक ही सीमित रही इसका क्या कम प्रमाण है ? लेकिन यह सोचकर कि जीवन और मृत्यु का संघर्ष अनादि काल से चला आ रहा है और जीवनधारी होने के नाते हम भरसक जीवन को मूर्ख और कमजोर न साबित होने दें, मैं चुप रहा।

किंग्स्टन जाकर रोगी को सबसे बड़ी सेवा कहिये या संपदा मिलती है आत्म-शक्ति की। वह जान जाता है कि रोग नाम की कोई चीज नहीं है जो जीवन को नष्ट कर सके और यदि है तो उसका जीवन तुम्हारे हाथ में है। कई रोगी अपने जीवन-काल में पहले कभी रोग की व्याख्या अथवा उसके कारण-निवारण की चिंता में नहीं पड़े। इसको उन्होंने केवल डाक्टर का धर्मक्षेत्र समझा। लेकिन किंग्स्टन में ही अब घंटों श्री थॉमसन, उनके पुत्र श्री लेजली थॉमसन, श्री मिलेन वगैरह से तर्क-वितर्क करते। हर रोज एक बैठक होती है। एक दिन श्री मिलेन लोगों के प्रश्नों का जवाब देते, एक दिन श्री थॉमसन और उनके पुत्र लिखित प्रश्नों का जवाब देते और एक दिन कोई रोगी स्वयं किसी विषय पर एक भाषण देता और दूसरों रोगी उस पर वाद-विवाद करते। बहर-

हाल प्रतिदिन ऐसे अवसर आते जब कि रोगी अपनी शंका, भय और कमजोरियों का उद्घाटन और निवारण कर सकता। दो-तीन चिकित्सार्थी हृदय रोग से ग्रस्त थे। उन्हें भोजन के साथ सुअर का जिगर दिया जाता था। इस पर मैं पहले दिन से ही श्री मिलेन और श्री लेजली थॉमसन से उपचार के वक्त झगड़ता। सो एक दिन मुझे भी चुनौती मिली। "प्राकृतिक चिकित्सा और शाकाहार" पर एक भाषण देना होगा। सभापति हमेशा की तरह श्री थॉमसन ही थे। मेरे कह चुकने के बाद लम्बी बहस हुई। वस्तुतः यह मतभेद भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोणों का था। भारत में प्राकृतिक चिकित्सा की वर्तमान विधि और उसके सिद्धान्त योरोप से ही आये हैं। तथापि निरामिष आहार का जो नैतिक एवं सात्त्विक महत्त्व भारत में रहा आया है वह इस चिकित्सा-सिद्धांत से निस्पृह नहीं रह सका। पश्चिम में प्राकृतिक चिकित्सा और शाकाहार दो भिन्न वस्तुएँ हैं जबकि भारत में ये अभिन्न हैं। बहस के दौरान में मैंने इस पर जोर दिया कि भोजन से शरीर ही नहीं मन भी निर्मित और प्रभावित होता है। स्वस्थ मन और शुद्ध एवं संयत विचारों के लिए शुद्ध और जीवनी शक्ति सम्पन्न भोजन निस्संदेह अनिवार्य है। अतएव मांसाहार केवल नैतिक दृष्टि से ही नहीं वैज्ञानिक दृष्टि से भी त्याज्य है।

भाषण के बाद श्री मिलेन ने चुटकी ली—"आप श्री थॉमसन से सहमत हुए या नहीं ?"

"बिलकुल नहीं।" मैंने साफ कह दिया।

पहले ही दिन किंग्स्टन में एक महिला से परिचय हुआ जिन्होंने छूटते ही पूछा—

"आप योगासन जानते हैं ?"

ये महिला थीं तो रूसी किन्तु एक डच महाशय से विवाह कर अब हॉलैंड में रहने लगीं। योग इत्यादि प्राचीन भारतीय विद्याओं में इतनी रुचि है कि स्वयं ही नहीं अपने पति और बेटे तक को योगी बना दिया। किंग्स्टन में भी जितने दिन वे रहीं प्रायः रोगियों को कुछ व्यायाम सिखाती रहीं। अन्यथा श्रीमती मिलेन तो रोज १०—११ बजे कई प्रकार के सामान्य प्रचलित व्यायाम करातीं। खुले मैदान में घास पर ग्रामोफोन रखा जाता और संगीत की लय पर बूढ़े-बच्चे स्त्री-पुरुष, निर्बल-सबल सब चड्डी चढ़ाये एक साथ व्यायाम

करते । आकर्षक दृश्य होता । इसके अतिरिक्त एक व्यायामशाला भी है जहाँ हर प्रकार के आधुनिक यन्त्र रखे हैं। घोड़े पर सवार हो जाइये। बटन दबाते ही अपने आप आपकी कमर की कसरत हो जायगी । मशीन पर खड़े हो जाइये । अपने आप शरीर की मालिश हो जायेगी । हर अंग के व्यायाम के लिए भिन्न-भिन्न यन्त्र हैं । शरीर को हिलाये-डुलाये बिना आलसी बने रहकर भी, आप हर अंग का व्यायाम कर सकते हैं । अजीब है यह विज्ञान और वैज्ञानिक बुद्धि ! मैंने श्री मिलेन का ध्यान इसकी ओर भी खींचा तो बोले—

"भई जायसवाल, हम लोग व्यक्तिगत तौर पर इन सब कृत्रिम चीजों के खिलाफ हैं । किन्तु क्या करें ? जनसाधारण की खुशी का भी ध्यान रखना पड़ता है । आखिर चिकित्सालय खोला है चलाने के लिए, बन्द करने के लिए नहीं ।"

अंततोगत्वा मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि किंग्स्टन के लोग सिद्धान्त या कई बातों के विरुद्ध होते हुए भी रोगियों को भड़काना नहीं चाहते । कभी-कभी सफेद चीनी के सीरे में सुरक्षित अनानास, आड़ू आदि फल खाने को दिये जाते। अंडा भी यदा-कदा भोजन में होता । सुअर के जिगर की बात लिख ही चुका हूँ ।

सैद्धांतिक मतभेद होने के बावजूद भी किंग्स्टन में रोगी को आत्म-चिकित्सा और जीवन-सुधार का जो आजाद वातावरण और सुयोग मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है ।

एक दिन अचानक श्री थॉमसन पूछ बैठे—"आप तो प्राकृतिक चिकित्सा के जानकार मालूम होते हैं । कहीं……?"

"जी हाँ । मैं पुराना शिकार हूँ । प्रेरणा गांधी जी से मिली । जानकारी और अनुभव मोदीजी के 'आरोग्य-मन्दिर' में ।……आप तो मोदीजी को जानते होंगे ? वे आपसे यहाँ मिल चुके हैं ।"

"आपका मतलब है डा० व्ही० डी० मोदी से । उनके पत्र बराबर आते रहते हैं । उन जैसा कुशाग्रबुद्धि, युक्तियुक्त बात करने वाले और प्राकृतिक चिकित्सा को गहराई से समझने वाले अन्य किसी विदेशी प्राकृतिक चिकित्सक से मैं नहीं मिला । उसका मधुमय मुस्कराना तो मैं कभी भूल ही नहीं सकता । हिन्दुस्तान आने का उनका निमंत्रण अब भी मेरे पास सुरक्षित है ।"

उन्होंने मुझसे आरोग्य-मन्दिर का अर्थ पूछा और मन्दिर शब्द के अर्थ

का रस लेते हुए बोले "लगता है आप लोगों के हर कार्य और जीवन में दर्शन और कविता घुली-मिली रहती है।"

एक माह का समय कम नहीं होता। न जाने कब बीत गया। किंग्स्टन छोड़ने के पहले श्री थॉमसन विशेष रूप से द्वार तक साथ आये। बड़े स्नेह और पितृ तुल्य स्पर्श से मेरे कंधे पर हाथ रखकर बोले—

"अभी तो योरोप में रहोगे ? कभी कोई जरूरत पड़े तो चले आना। सलाह चाहो तो पत्र लिखोगे ही।"

पानी बरस रहा था। टैक्सी से बाहर झाँका तो किंग्स्टन की सुपरिचित इमारत आँख से ओझल हो चुकी थी। सोचा आखिर चलते-चलते यहाँ भी कष्ट हुआ। श्री थॉमसन से कहता कि आया था स्वस्थ होकर और जा रहा हूँ कष्ट लेकर तो वे जरूर हँसते। सचमुच मन उदास था। ●

सावना—फिनलैंड का विशिष्ट स्नान (१)

□ □ □

आप यदि कभी फिनलैंड जायें तो देखेंगे कि बहुत से घरों के साथ पिछवाड़े खुले स्थान में लकड़ी की एक छोटी कुटिया बनी है। अजनबी को यह कुटिया पशुओं के रहने का स्थान या बागवानी का सामान रखने का कोठा प्रतीत होगी। किन्तु उसके ऊपर लगी धुआँ की चिमनी पर निगाह जाने पर यह स्पष्ट हो जाएगा कि इस कोठरी में आग जलायी जाती है और खूब जलायी जाती है। अन्यथा इतनी बड़ी और ऊँची चिमनी क्यों होती? यही बात ठीक है। यह कुटिया जैसा घर एक प्रकार का नहानघर है जिसमें फिनलैंड का जगत्प्रसिद्ध सावना स्नान का प्रबन्ध रहता है। बात कुछ विचित्र-सी लग सकती है कि फिनलैंड-जैसे देश में स्नानागार मकान के भीतर न होकर बाहर बना होता है। पर बात यह है कि प्रत्येक निवास स्थान में सावना घर के अलावा दैनिक उपयोग के लिए एक स्नानागार भी होता है जो घर के भीतर बना होता है। सावना तो एक विशेष स्नान है जो सप्ताह में एक या दो बार परिवार के लोग अपनी परम्परा के अनुसार सामूहिक रूप से लेते हैं। हैलसिंकी-जैसे बड़े शहरों में, जहाँ तमाम आधुनिक इमारतें बन गयी हैं, सावनाघर शहर के बाहर बगीचों में, झीलों के किनारे, जंगलों में भी बने होते हैं। शनिवार की शाम को सप्ताहान्त के अवकाश का सुखद समारंभ करने ये लोग अपने घर से तीन-चार मील दूर सावना नहाने आते हैं। बहुत से धनी लोग, जो गर्मी के लिए विशेष रूप से शहर के बाहर बंगला बनवाते हैं, साथ में अलग से सावनाघर बनवाना नहीं भूलते।

सावना का सम्बन्ध फिनलैंड की राष्ट्रीय परम्परा, संस्कृति और जीवन-शैली के साथ इतना अभिन्न और प्राचीन है कि अब यह मात्र स्नान न रहकर एक संस्था अथवा राष्ट्रीय जीवन का महत्वपूर्ण अंग बन गया है। जो फिनलैंड से परिचित हैं वह सावना से अपरिचित कदापि नहीं रह सकता। भारत में ताजमहल है। न जाने और कितनी चीजें हैं जिनसे हम विदेशी यात्रियों को

लुभाते हैं। उसी प्रकार हालैंड के पास ट्यूलिप के फूल हैं। अमरीका के पास ग्रैंड-कैनियन है। स्पेन के पास सांड-युद्ध है। पर सीधे-सादे छोटी-सी आबादी के देश फिनलैंड के पास ऐसा कोई ऐतिहासिक चमत्कार या स्मारक नहीं है जिससे वह ताजमहल का काम ले सके। सावना के ही राष्ट्रीय और सार्वजनिक महत्त्व की कद्र करते हुए वहाँ की सरकार और जनता ने कदाचित् इसके द्वारा ऐतिहासिकता के अभिमान के अभाव की पूर्ति करने की कोशिश की है। यद्यपि इससे यह मान बैठना अशोभनीय होगा कि सावना कोई आधुनिक वस्तु है जिसको टूरिस्ट आकर्षण की खातिर जबरदस्ती देश के साथ बाँध दिया गया है। वस्तुतः सावना फिनलैंड की सैकड़ों वर्ष पुरानी परम्परा से सम्बन्धित है जिसका प्रचार योरोप के अन्य देशों में भी हो चुका है। किन्तु हम सावना के इतिहास को जानें इसके पहले यह तो समझ लें कि यह सचमुच है किस प्रकार का स्नान।

सावना एक प्रकार का भाप-नहान है जिसमें शरीर को भाप से खूब गरम करके पसीना निकाला जाता है। पसीना-पसीना हो जाने पर तुरन्त ठंडे जल से नहाया या बर्फ में लोटा जाता है। फिनलैंड में सावनाघर साधारणतया लकड़ी के बने होते हैं। कोने में बड़ी भारी भट्टी में आग धधकती रहती है। आग के ऊपर सख्त पत्थर के तमाम टुकड़े रखे होते हैं जो लाल गरम कर दिये जाते हैं। भट्टी से कुछ हटकर कोने में बैठने के लिए एक ऊँची मचान होती है जिस पर चढ़ने के लिए तीन-चार सीढ़ियाँ बनी होती हैं। नहाने वाले सब कपड़े उतार कर मचान या सीढ़ियों पर बैठ जाते हैं। मचान और सीढ़ियाँ लकड़ी की पटरियों से इस प्रकार बनाये जाते हैं कि उन पर बैठ जाने पर भी नीचे से भाप शरीर में लगती है। पास ही रखे टब से कुनकुना पानी गरम पत्थरों पर डाला जाता है। जिसके फलस्वरूप तेजी से गरम भाप उठ-उठकर कमरे में फैलती है। जब पसीना निकलने लगता है तो शरीर को बर्च की पत्तियों से हल्के-हल्के पीटा जाता है। इससे बढ़ती हुई गरमी से कष्ट नहीं होता, पसीना आसानी से निकलता है, सिर में चक्कर नहीं आता और रक्त संचार भी दुरुस्त रहता है। कमरे का तापक्रम प्रायः १८०° से २००° फारेनहाइट होता है। पर शीतकाल में या अधिक सहनशील व्यक्ति की इच्छानुसार यह २५०° तक पहुँचाया जा सकता है। कहने को पत्थरों से उठी हुई गरम हवा को भाप

कहा जाता है क्योंकि वह ताप और हवा के संयोग से उत्पन्न होती है। पर वस्तुतः यह भाप कमरे में फैलते-फैलते शुष्क हो जाती है क्योंकि कोठरी की लकड़ी की दीवारें भाप की नमी को सोख लेती हैं। इसी कारण से कोठरी में रखी हर चीज भरसक लकड़ी की हो तो अच्छा है। नमी सोखने के अलावा लकड़ी गरमी का परित्याग करती है। अतएव ताप का अपव्यय नहीं होता। इस दृष्टि से टर्किश-नहान और सावना में मुख्य भेद यह है कि टर्किश-नहान में हवा नमी से भारी होने के कारण शुष्क हवा की अपेक्षा फेफड़ों को बोझिल मालूम होती है और उसमें हल्कापन और स्वच्छता नहीं मालूम होती। जब कि सावना में दोनों प्रकार की हवा मिलती है। नमी लिए हुए भाप शीघ्र ही शुष्क हो जाती है जिससे सांस लेने में कठिनाई नहीं होती। इस प्रकार श्वास के रोगी तक को सावना में बीस-पचीस मिनट बैठने में कोई कठिनाई नहीं होती। जब कि टर्किश-स्नान केवल स्वस्थ व्यक्ति को ही लेना चाहिए। खूब पसीना निकल जाने पर, जिसमें ३० से ४० मिनट तक लग जाते हैं, नहाने वाले तत्काल खूब ठंडे पानी से नहा डालते हैं। वैसे आज भी ऐसे साहसी लोगों की कमी नहीं है जो २००° गरम सावनाघर से निकलकर दौड़ते हुए पासवाली बरफ से जमी झील में उतर जाते हैं। शरीर ठंडा करके सूखे तौलिए से रगड़ कर सुखा लिया जाता है। उसके बाद चुपचाप कमरे में शिथिलीकरण की अवस्था में आराम करना चाहिए। यह चरम सुख का क्षण होता है। सारा शरीर और मन सजीव, निर्मल और हल्का प्रतीत होता है। उड़ने को जी करता है। साठ साल का बूढ़ा अपने को बीस साल का जवान महसूस करता है। और महीनों से न नहाए अहदी को लगता है दुनिया में उससे साफ शरीर और किसी का नहीं है।

हैलसिंकी के बाहर झील के किनारे एक जंगल में हमारे मेजबान का एक ग्रीष्मकालीन बंगला बना था और उसके पीछे था सावनाघर। शनिवार की शाम को उन्होंने मुझे सावना का निमन्त्रण दिया। कपड़े उतारकर जब हम कोठरी में दाखिल हुए तो मैंने याद करके कहा—"अरे, हमने पानी तो पिया ही नहीं।" इस पर उन्होंने कहा—"इसकी जरूरत नहीं है। हमारे ठंडे देश में लोगों को पसीना बहुत कम होता है और हम तरल चीजें हमेशा पीते रहते हैं। इसलिए थोड़ी-सी गरमी से ही शरीर से पसीना फूट पड़ता है। वह तो

आपके देश में जहाँ बैठे-बैठे पसीना बहता है कृत्रिम उपाय से पसीना निकालने के लिए पानी पीना पड़ता है।" अब मुझे ख्याल आया कि कार में आते समय रास्ते भर हम प्राकृतिक चिकित्सा, भापनहान और दुनिया भर में प्रचलित नाना प्रकार के स्नानों की चर्चा करते आये थे। बात ठीक भी है। योरोपीय लोगों के शरीर में अनुपाततः पानी की मात्रा कदाचित् अधिक होती है। यहीं देखिये। दिल्ली की सड़कों पर घूमते हुए गोरे लोग जाड़े की दुपहरिया में भी पसीना बहाते देखे जाते हैं। प्रसिद्ध अंग्रेज प्राकृतिक चिकित्सक स्वर्गीय जेम्स टामसन अपने रोगियों को कम-से-कम पेय लेने की सलाह देते थे। वे बार-बार यह शिकायत करते थे कि ठंडे देश के लोग गरम देश के लोगों की नकल करके बात-बात पर पेय लेने लगे हैं। जबकि जलवायु के कारण पसीना निकालने की उनके शरीर की क्षमता अत्यन्त सीमित है। इसलिए अतिरिक्त जल को बाहर निकालने के लिए गुर्दों को बहुत काम करना पड़ता है। फलस्वरूप ४५-५० की उम्र के बाद बहुधा लोगों को गुर्दे की बीमारी हो जाती है। उनके शरीर के सैल्स भी द्रव की अतिरिक्त मात्रा से बोझिल हो जाते हैं और फूले रहते हैं। श्री टामसन ने इसी आधार पर रक्तचाप, स्नायुविकार और मोटापा की चिकित्सा में इसे बाधक माना है।

सामान्यतया फिनलैंड के सावनाघर परम्परागत ढंग के होते हैं जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। पर आधुनिकता के प्रभाव से लोगों ने व्यक्तिगत तौर पर कुछ सहज परिवर्तन किये हैं। जैसे, ठंडे पानी से नहाने और कपड़ा बदलने का अलग एक फैशनेबुल कमरा भी अब बनने लगा है। पानी ढालने के बर्तन और टब के आकार-प्रकार में परिवर्तन आ गया है। मचान भी कई प्रकार की बनने लगी है। सरकारी स्तर पर भी सावना का विकास किया जा रहा है। शरीर और स्वास्थ्य-विज्ञान के विशेषज्ञों की सलाह से कई संस्थाएँ बना दी गयी हैं जो सावना पर वैज्ञानिक दृष्टि से अनुसंधान करवाती हैं। मानव-शरीर पर इसके विभिन्न प्रभावों की जाँच निरन्तर होती रहती है। इसके अलावा ये संस्थाएँ तमाम छोटे-बड़े शहरों और विदेशों में सार्वजनिक सावनाघर बनवाती हैं और चलाती हैं। विदेशों में यदि किसी को सावनाघर बनवाना हो तो फिनिश दूतावास के द्वारा इन संस्थाओं की सेवाएँ हमेशा प्राप्त होती हैं। फिनिश जनता का भी सावना के प्रचार में कम योगदान नहीं

है। फिनलैंड के लोग जहाँ भी रहने जाते हैं वहाँ वे स्वयं अपना सावना बनाते हैं। दुनिया के हर देश में जहाँ फिनिश दूतावास हैं आप जैसो भी हो सावना-घर पायेंगे। हैलसिंकी में ओलिंपिक खेलों के समय ओलिंपिक नगर में फिनिश खिलाड़ियों ने स्वयं अपने हाथों कई सावनाघर बनाये थे जिनमें उन्होंने दुनिया के हर देश के खिलाड़ियों को निमन्त्रित किया। खेल-कूद के बाद फिनिश खिलाड़ी सीधे सावनाघर में पहुँचते थे जबकि अन्य देशों के खिलाड़ी कोकाकोला पीने बार की ओर दौड़ते थे। इसको लेकर अखबारों में भी दिल-चस्प टिप्पणियाँ निकलती रहती थीं। सचमुच, सावना के साथ फिनलैंड निवासी का एक रागात्मक भाव स्थापित हो गया है। शरीर और मन दोनों के विश्राम के लिए, दुनिया के कोलाहल से क्षण भर के लिए निष्कृति पाने के लिए, आश्रयहीन की तरह आश्रय पाने के लिए वह सावना की ओर अभिमुख होता है। जो भी हो, वैज्ञानिक पक्ष को प्रबल बनाने की चेष्टा करते हुए भी फिनिश लोग आधुनिकता से ऊबकर प्राचीनता के आकर्षक रूपों को बनाए रखने के प्रेमी योरोपवासियों के अनुरूप ही, सावनाघर को भरसक आज भी एक हजार वर्ष पुरानी शैली पर बनाते हैं। वही पटरियों का मंच, वही भड़भूंजों-जैसी भट्टी, वही भोंड़ा-सा लकड़ी का कठौता।

आधुनिक युग में ज्ञान-विज्ञान के अपरिसीम विकास के बावजूद हमारे समाज में आज भी ऐसी अनेक परम्पराएँ हैं जिनकी ओर या तो हमारा यथेष्ट ध्यान नहीं गया या हम उनका अध्ययन करने में असमर्थ रहे हैं। स्नान मनुष्य के दैनंदिन जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग होते हुए भी इतना सामान्य विषय है कि वह अभी तक व्यापक जिज्ञासा का विषय नहीं बन सका है। तथापि सामान्य स्नानकला और विभिन्न देशों की स्नान पद्धतियों पर जिज्ञासु विद्वानों ने कुछ खोज की है। यह काम विशेष तौर से प्राकृतिक चिकित्सा के प्रेमियों ने किया है, इसलिए कि स्नान प्राकृतिक चिकित्सा के अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण उपचारों में से एक है।

हम यदि प्राचीन सभ्यताओं का—जैसे चीनी, भारतीय, बैबीलोनियन और मिस्री—अध्ययन करें तो मालूम होगा कि हर देश में जलवायु और वैयक्तिक रुचि के अनुसार अपने-अपने ढंग का स्नान, स्नानघर और स्नानकला रही है। यहाँ तक कि स्नान के प्रयोजनों पर भी भिन्न-भिन्न मत मिलेंगे।

भारत-जैसे धार्मिक देश में स्नान भी धार्मिक क्रियाओं का भाग बन गया है। लोगों की धारणा है कि स्नान से सफाई के अलावा देह को पवित्र भी किया जा सकता है। अग्नि की तरह जल को भी पंचतत्त्वों में से एक ऐसा तत्व माना गया है जिसके स्पर्शमात्र से अशुद्ध, अपवित्र या पापी शरीर पूजा के योग्य हो जाता है। तमाम पंडे-पुजारी एक लोटा पानी से शरीर भिगोकर शुद्ध हो जाते हैं, और हाथ, पैर, बालों और गुप्तांगों में तमाम गंदगी लिए पूजा हेतु मन्दिर में पहुँच जाते हैं। गाँवों में, जहाँ आसपास कोई नदी-तलाब नहीं है, बहुत से लोग तो पूरा शरीर भिगोये बिना ही अपने को नहाया समझ लेते हैं। नहाकर शरीर की सफाई करना या रक्तसंचालन को बल देना या त्वचा को सजीव बनाना हमारे देश में बहुत गौण बन गया है। शायद कुछ इसी कारणवश हम लोग कहीं भी—सड़क पर, छत पर, बगीचे में, कुएँ पर, मोटर स्टैंड पर—निस्संकोच नहा लेते हैं। हमें किसी आड़ की जरूरत नहीं महसूस होती। जब गुप्तांगों को धोना ही नहीं तो पर्दे की क्या जरूरत। जब कि पाश्चात्य देशों में स्नान के प्रयोजनों में आधारभूत समानता होते हुए भी उसके स्वरूपों और शैलियों में यथेष्ट अन्तर है। पहला तो यह कि योरोप में स्नान को धार्मिक वृत्तियों में कभी नहीं शामिल किया गया। इसका मुख्य प्रयोजन देहकी सफाई माना गया है जिसमें हाथ, पैर और मुंह ही नहीं बल्कि गुप्तांग भी शामिल है। दूसरा, ठंडी जलवायु में बाहर नहा सकना संभव न होने के कारण लोगों को बन्द कमरे में नहाना पड़ता है। अतएव पर्दा होने का लाभ उन्हें इस रूप में अवश्य मिलता है कि वे प्रत्येक अंग को खोलकर इत्मीनान से देर तक धो-मल कर नहाते हैं। तीसरा, यह कि जहाँ भारत में नहाना—चाहे जैसे भी हो—एक नित्य प्रति का काम—धार्मिक अनुष्ठान की तरह—माना जाता है, वहाँ ठंडे मुल्कों में ऐसा नहीं होता। हफ्ते में एक बार अच्छी तरह नहा डालना रोज-रोज के काग-स्नान से वे अच्छा मानते हैं। उपर्युक्त कारणों के अलावा इसका एक कारण जलवायु और स्थानीय परिस्थितियाँ भी हैं। ठंड के कारण उन्हें काम से इतनी जल्दी थकान नहीं आती जितनी हम लोगों को आती है। सूखी जलवायु न होने के कारण उनके देश में धूल, गंदगी इतनी नहीं है जितनी हमारे देश में, जिसके कारण हम चौबीस घंटे तो क्या आठ-दस घंटे में ही ताजगी और सफाई के लिए नहाने की इच्छा करने

लगते हैं। दूसरे, आज के आधुनिक साधनों को यदि हम छोड़ दें तो पाश्चात्य देशों में पहले सर्वत्र हर मौसम में इतनी आसानी से घरों में पानी नहीं मिलता था और यदि मिलता भी था तो उसे गरम करने को ईंधन का अभाव था। इसलिए प्राचीन योरोप के जितने भी स्नान—जैसे रोमन, टर्किश, रूसी और यूनानी— आज तक प्रसिद्ध हैं वे ऐसे देशों में विकसित हुए हैं जहाँ यह अभाव नहीं था।

फिनलैंड का सावना इन स्नानों के समान प्राचीन भले न हो, पर अपने देश के इतिहास में इसका बहुत प्राचीन स्थान है। वहाँ लोग यह कहते सुने जायेंगे कि देश और सावना के इतिहास अभिन्न मित्र हैं। फिनलैंड वस्तुत: जंगलों का देश है। वहाँ की लकड़ी योरोप भर में जाती है और वन उद्योग वहाँ की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। पेड़ और जंगल से जूझने वाले निवासियों का जीवन भी कठिन और मेहनत का होता है। इस प्रकार, घोर श्रम के बाद थकान मिटाने के लिए गरम नहान की स्वाभाविक इच्छा की पूर्ति में उन्हें कोई बाधा नहीं थी। हो सकता है, सावना के विकास में रूसी और टर्किश-स्नानों का काफी योग हो, क्योंकि इन तीनों में कम समानता नहीं है। यदि यह सही हो तो कारण स्पष्ट है। इन देशों की आवश्यकताओं और जलवायु में मेल होने से उनके स्नानों में मेल दिखाता है। तथापि फिनिश सावना के साथ सबसे महत्वपूर्ण बात जो है वह यह कि संसार के किसी देश में स्नान और सार्वजनिक जीवन, राष्ट्रीय सभ्यता और लोक-भावना का इतना प्रगाढ़ संबंध नहीं है जितना फिनलैंड में। फिनिश भाषा का यही एक शब्द है जो देश के बाहर भी सुप्रचलित है। फिनलैंड जाने वाले बहुत से विदेशी टूरिस्ट तो सावना के साथ कई प्रकार की रोमांटिक कल्पनाएँ लेकर जाते हैं जैसे जापानी, रूसी और अरब देशों के हमामी स्नानों के विषय में प्राय: लोगों के मन में रहती है। फिनिश जीवन की पूर्ति इसके बिना हो ही नहीं सकती। आप फिनलैंड किसी के यहाँ ठहरे तो वह बड़ी-से-बड़ी चीज को भूलकर भी आपको सावना के लिए वैसे ही निमंत्रण देगा जैसे हम भारतवासी किसी दोस्त को विवाह-भोज में सम्मिलित होने को बुलाते हैं। आप फिनिश-परिवार में मिलने वाली हर चीज को इन्कार कर दीजिए पर भूलकर भी सावना का निमंत्रण न अस्वीकारें। अन्यथा सरलमन और स्वाभिमानी फिनिश भाई को आश्चर्य से अधिक दु:ख होगा।

●

सावना : फिनलैंड का विशिष्ट स्नान (२)

□ □ □

सावना के प्रारंभ काल पर लोगों का बहुत मतभेद है। पर ऐतिहासिक ग्रन्थों के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि यह स्नान कम-से-कम एक हजार साल पुराना जरूर है। प्रसिद्ध रूसी यात्री सेंट एंड्रू ने नोवोग्रोद से रोम की लम्बी यात्रा के अपने विशद वर्णन में सावना की ही तरह एक स्नान का उल्लेख किया है। इसकी तिथि १००० ईसवी सन् मानी जाती है। उसके बाद १४वीं और १५वीं सदी के कई ग्रन्थों में सावना का स्पष्ट उल्लेख एक पुरानी स्नान-परम्परा के रूप में मिलता है जो उस समय अवश्य ही ४००-६०० वर्ष पुरानी होगी। फिनिश साहित्य के श्रेष्ठ प्रबन्धकाव्य 'कलेवल' में नायक-सहित कई पात्रों का सावना नहाते हुए वर्णन किया गया है। इससे प्रेरित होकर सर्वश्रेष्ठ फिनिश चित्रकार अक्सेल गालेन ने 'कलेवल' की कई घटनाओं को अपनी तूलिका से अंकित किया है। इन चित्रों में सावना का राष्ट्रीय और सांस्कृतिक महत्त्व खूब उभर आया है। मध्ययुगीन फिनलैंड में सावना की प्रतिष्ठा आरोग्य-लाभ के श्रेष्ठ साधन के रूप में जम चुकी थी। ऐसे उल्लेख भी मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि बहुत से लोग तो रोज सावना का आनन्द लेते थे। चिकित्सा के साधन कम होने के कारण गरीब माताएँ सावना-घर में जाकर अपने बच्चों को जन्म देती थीं। बीमारी की हालत में रोगियों को सावनाघर में विशेष सुरक्षा की प्रतीति होती थी। आज भी आधुनिकता से दूर घाटियों में रहने वाले ग्रामीण फिनिश लोगों में यह कहावत प्रचलित है कि 'प्रेतात्माओं और सावना से जिसे लाभ नहीं हुआ उसका कोई इलाज नहीं है।'

फिनिश भाषा का एक शब्द है 'लुइली'। इसका अर्थ होता है 'पत्थर की भाप।' यही शब्द फिनिश की सजातीय एक अन्य भाषा हंगेरियन में 'लिल' रूप में आता है, पर जिसका अर्थ 'आत्मा' हो जाता है। विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल में सावना से साधनहीन ग्राम-वासियों को इतना लाभ होता

था कि वे पत्थर से निकले हुए भाप को प्राण अथवा आत्मा का प्रतीक मानने लगे थे। मध्ययुगीन काव्य-ग्रन्थों में ऐसे प्रसंग आये हैं जबकि मरते हुए व्यक्ति को सावनाघर में इसलिए लिटा दिया जाता था कि वह तो या जीवित हो उठेगा या मरने के बाद उसकी आत्मा भाप रूपी आत्मा से मिलकर इतनी शक्तिशालिनी बन जायेगी कि उसे पिशाचिनियां नष्ट नहीं कर सकेंगी। सावनाघर में बैठने वाले मंच को पवित्र वेदी माना जाता था जहाँ आग और पानी की संयुक्त आहुति देकर पिशाचिनियों को दूर भागाया जाता था। सावना से संबंधित ऐसी ही पुनीत भावनाओं के कारण सावनाघर आज सैकड़ों वर्षों के अस्तित्व के बाद भी यौन-व्यभिचार के लिए बदनाम न हो सका। यही एक प्राचीन स्नानघर बचा है जिसमें आज भी सब काम परिचरिकाएं ही करती हैं। जबकि टर्किश, रोमन और यूनानी स्नानघर मध्ययुग में वेश्यावृत्ति और अन्य दुराचारों के अड्डे बन गए थे। परिणामस्वरूप १७वीं-१८वीं सदी तक कई देशों से तो इनका नामोनिशान तक मिट गया। यह नहीं है कि सावना की परिचारिकाएं दूर रहकर काम करती हैं। बल्कि वे नहाने वाले को-स्त्री-पुरुषों सबको—कपड़ा उतारने, रखने, पहनने आदि में निर्विकार भावा से मदद करती हैं। कई सावना क्लबों में तो ये ही परिचारिकाएँ जरूरत पड़ने पर एकदम नग्न नहाने वाले पुरुषों की पीठ रगड़ देती हैं। बर्च की मूर्छला से उनके शरीर के पृष्ठ भाग को पीटती है और ठंडे पानी से पीठ आदि स्थान धोने में मदद करती हैं। वैसे यह जरूर है कि फिनलैंड के बाहर आजकल जो तमाम सावना बनने लगे हैं उनमें यह रिवाज उस देश-विशेष की सामाजिक रीति के प्रतिकूल पड़ने के कारण नहीं भी हो सकता। इसीलिए कई विदेशी यात्री जो अपने देश में कम 'दिलचस्प' सावना देश चुके हैं, फिनलैंड आने पर सावना आनन्द की विशेष रोमांटिक कल्पना के साथ प्रतीक्षा करते हैं। परन्तु फिनिश परिचारिकाएं अपनी जिस परंपरागत सौजन्यता, विनम्रता, गम्भीरता और विकारहीन मैत्री भाव से नहाने वालों की सहायता करती हैं उसने सावना को इस आधुनिक युग में भी गन्दा होने से बचा लिया है।

सावनाघर में प्रवेश करने से पहले मेरे मेजबान ने इस स्नान के बारे में बहुत सारी बातें बतायीं। स्नानविधि समझाने के पहले उन्होंने भूमिकास्वरूप कुछ रोचक और गम्भीर बातें मुस्कराते हुए कहीं। उनका मुस्कराना वैसे था

तो विनम्रता के लिए। पर उसमें सावना-स्नान में निहित गम्भीरता के त्रास से मुझे बचाने का भी अभिप्राय था। महत्वपूर्ण बात उन्होंने जो कही वह यह थी कि सावना का पूर्ण आनन्द तभी मिलता है जब उसमें भाग लेने वाला हर व्यक्ति उसके वातावरण के निर्माण और रक्षा में पूरा सहयोग दे। उन्होंने बताया हम अपने नटखट बच्चों को हमेशा चेतावनी देते हैं कि 'सावना में सावनार्थी की तरह पेश आओ या यहाँ से बाहर निकलो।' मैंने पूछा—"भला यह सावनार्थी की तरह पेश आने का क्या अर्थ है ?"

"सावना-स्नान सचमुच एक सामूहिक अनुष्ठान-जैसा है। उसमें उनको स्वच्छ और निश्चित मन से जाना चाहिए। सबके प्रति एक-सा प्रेम और आदर का भाव होना चाहिए। पुराने झगड़ों को भुलाकर पवित्र भाव से आना चाहिए। अधिक बात नहीं करना चाहिए। वस्तुतः हमारे लिए केवल दो ही पवित्र स्थान हैं—गिरजाघर और सावनाघर। जिस प्रकार हम गिरजाघर में हँसते-खिलखिलाते नहीं, शान्त और शालीन रहते हैं उसी प्रकार हमें सावनाघर में भी रहना चाहिए। पत्थर गरम करने, पानी डालने, शरीर पीटने और धोने, कमरे को साफ रखने आदि में सबके समान सहयोग की अपेक्षा की जाती है।" उन्होंने समझाया और फिर जल्दी-से जोड़ दिया "पर आप तो हमारे मेहमान हैं। आप से हम यह नहीं...."

मैंने बात काटकर कहा—'तो मुझे मेहमान बनाकर आप मेरा सावना का आनन्द अधूरा बना रहे हैं।"

परन्तु सावना के वास्तविक वातावरण में मैंने दो सबसे महत्वपूर्ण बातें पायीं। एक तो यह कि सावनाघर में पहुँचकर कोई छोटा-बड़ा, मेहमान-मेजबान, बाप-बेटा, माँ-बेटी जैसा सम्बन्ध नहीं कायम रखता। वे सब समवयस्क की तरह निर्विकार, निस्संकोच और निश्छल होकर व्यवहार करने लगते हैं। आप अपने को कितना ही बड़ा तुर्रे खाँ समझते हों। अदना-से-अदना आदमी भी यदि आकर आपके हाथ में बर्च की पत्तियाँ पकड़ा देगा कि लो मेरी पीठ को पीट दो तो आप इन्कार नहीं कर सकते। वहाँ हर व्यक्ति बिना औपचारिकता या अहम् भाव के सच्चे भाई, साथी और समूह के सदस्य की तरह व्यवहार करता है। गौर से सोचने पर लगेगा कि सावना भी आदिम मानव-समाज की सामूहिक सभ्यता और जीवन का परिचायक है। आज जिस समाज-

वाद, साम्यवाद या मानव-एकता का शोर हम मचाते हैं वह वस्तुतः प्राचीन युग में अपने निराले आदिम ढंग से विद्यमान था।

दूसरी महत्वपूर्ण चीज जो मुझे लगी वह यह थी कि घर के भीतर बन्द होने पर भी सावनार्थी फिनलैंडवासी अपना सम्पर्क प्रकृति से यथा-संभव बनाए रखने की चेष्टा करता है। सावनाघर इस प्रकार बनाया जाता है ताकि स्नानार्थी बाहर का दृश्य नहाते हुए भी आसानी से देख सके। इसके अलावा जैसे ही स्नान समाप्त होता है ये घर के बाहर बरामदे में चुपचाप बैठ जायेंगे और प्रकृति का अवलोकन करते हुए विश्राम करेंगे। चाहते हुए भी भरसक बातचीत नही करेंगे। यह सावना की पूर्ण सम्पन्नता की शर्तों में से एक है। वैसे बड़े शहरों में, जहाँ भीड़-सी रहती है, इसका पालन पूर्णरूपेण नहीं हो पाता। अधिकांश सावनाघरों का शहर के बाहर, घर के पिछवाड़े बाग में, जंगल में, झील के किनारे बनाया जाना मुख्यतः इसी प्रकृति-दर्शन की खातिर ही है। दूसरे, सावना दिन में प्रकाश रहते ही ले लेने की परम्परा भी इसी की द्योतक है। यदि किसी कारणवश कमरे में अंधेरा हो तो बिजली की अपेक्षा मोमबत्ती का प्रकाश ही पसन्द किया जाता है ताकि सावना की स्वाभाविकता अधिक नष्ट न हो।

ये सारी बातें बताकर मेरे मित्र ने सावना-नहान की विधि संक्षेप में बतायी। पूरे स्नान की आठ अवस्थाएँ मानी गयी हैं।

१. पसीना होना
२. भाप पैदा करना
३. बर्च की पत्तियों से शरीर को पीटना
४. धोना
५. शरीर पोंछना
६. शरीर ठंडा करना
७. शरीर सुखाना
८. विश्राम और भोजन

सावना भरसक खाली पेट लेना चाहिए या कम से कम भोजन के दो-तीन घंटे बाद। यह स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है हम सभी जानते हैं। पर परंपरा-प्रिय और आस्थावान फिनलैंडवासी इसे भी शारीरिक पवित्रता की एक शर्त

मानता है (जरा सोचिए तो भारतीयों और फिनिश लोगों में कितनी समानता है।) कमरे में आग जलती होती है। इसीलिए वह लगभग १४०° फारेनहाइट तक गरम रहता है। प्रवेश करने के २-४ मिनट बाद से ही शरीर से पसीना छूटने लगता है। कोई यदि चाहे तो सिर पर भीगा कपड़ा रख सकता है। किन्तु सामान्य फिनिश स्नानार्थी इसकी आवश्यकता नहीं समझता। पसीना निकलना शुरू हो जाने के बाद गरम पत्थरों पर लोग पानी डालने लगते हैं ताकि भाप निकलकर कमरे में फैले। यह क्रिया शुरू होने के ३-४ मिनट बाद कमरे का तापक्रम बढ़ने लगता है जो २००° से भी ऊपर जा सकता है। कमरे में भाप फैलते ही स्नानार्थी मंच या सीढ़ियों पर पीठ के बल अध-लेटी अवस्था में 'बैठ' जाते हैं ताकि भाप सारे शरीर में लगे और एक साथ लगे। बीच-बीच में पैरों को उठाकर सिर से ऊँची सतह तक ले जाकर कुछ देर तक उस अवस्था में लेटा रहना चाहिए। इससे पैरों का रक्त-संचालन बदल जाने के कारण उनसे पसीना आसानी से छूटने लगता है। यह बात मेरी समझ में पहले तो नहीं आयी। पर जब करके देखा तो माननी ही पड़ी। इस बीच बारी-बारी से नहाने वालों द्वारा पत्थरों पर पानी छिड़कने का क्रम चलता रहता है। कहते हैं हर व्यक्ति को जितने नहानार्थी हैं उतनी ही बार पानी छिड़कना चाहिए। उसके बाद अन्त में एक बार सावना के लिए। यह देखकर मुझे गंगा-किनारे हिन्दू भक्तों द्वारा सूर्य को अर्घ्यदान देने का दृश्य याद आ गया। इसके बाद जब शरीर पर—खास तौर से मुँह पर जब अधिक गरमी महसूस होने लगे तो बर्चकी टहनियों से शरीर को पीटने की क्रिया शुरू होती है। बर्च का मूर्छला पहले से लोगों को दे दी जाती है। अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार सब धीरे या तेजी से पर अनुशासन के साथ, शरीर के अंग-प्रत्यंग को उससे पीटते हैं। औसतन आधा घंटा या चालीस मिनट बाद जब पसीना निकलना एक प्रकार से बन्द हो जाता है और गर्मी असह्य होने लगती है तो थोड़े से गरम पानी से शरीर को धोया जाता है ताकि पसीने के साथ निकला हुआ विकार त्वचा से अलग हो जाय। धोकर शरीर को पोंछ डालना चाहिए। इन दो क्रियाओं में दो-तीन मिनट लग जाते हैं पर इससे शरीर की गरमाहट कम नहीं होती। उसी तापक्रम को लेकर अब स्नानार्थी शरीर को ठंडा करता है। यह शरीर पर ठंडा पानी उँडेलकर या बरफ में घुसकर प्रायः किया जाता है। इसकी कोई निश्चित

अवधि नहीं है। नहाने वाले को स्वतः मालूम हो जाता है कब उसका शरीर अतिरिक्त ताप से मुक्त होकर स्वाभाविक तापक्रम पर आ गया है। यदि कोई झील में उतरे और तैरना चाहे तो इसका ख्याल रखना चाहिए कि शरीर को बहुत झटके से इधर-उधर न हिलाया जाय। हर काम,शांति और इत्मीनान से करने से ही सावना का पूरा आनन्द मिलता है और स्वास्थ्य पर हानि कर प्रभाव नहीं पड़ता। ठंडा हो जाने पर शरीर को सूखी तौलिया से हल्के-हल्के रगड़कर सुखा डालना चाहिए। असली स्नान का यह अन्तिम चरण है। पर इसका प्रभाव अभी इतनी क्रियाशीलता से शरीर में जारी रहता है कि हम शरीर सूख जाने पर ही सावना-स्नान की इतिश्री नहीं मान सकते। इसके बाद कमरे के बाहर किसी खुले स्थान में, या यदि जाड़े का मौसम हो तो अधखुली काँच की खिड़की के सामने, शांति के साथ जाकर बैठ जाना चाहिए। वैसे आजकल के अपेक्षाकृत अधिक कोमल शरीर के लोग जाड़े में बर्फीली हवा के कुप्रभाव का खतरा न उठाते हुए भीतर बिस्तर पर भी लेटकर आराम करते हैं। पंद्रह-बीस मिनट में प्रायः सभी प्रकार के शरीर वाले पूर्ण विश्राम पा लेते हैं। मुझे तो झपकी आने लगी थी। पर मित्र की पत्नी ने शरबत का गिलास हाथ मे थमाते हुए डांटा—

"सावना के बाद कुछ-न-कुछ अवश्य पीना चाहिए। सारा शरीर निचुड़ जो जाता है। न पीने से नाक से खून आ सकता है। सिर में चक्कर भी आ जाता है। दूसरे, मियां यदि तुम सो गये तो यह सारा खाना कौन खायेगा ? तुम सब सावना का लुत्फ लेते रहे। और मैं यहाँ जिन्दगी में पहली बार शाकाहारी भोजन बनाने में सिर-चोटी का पसीना एक कर रही थी, वह क्या अपने लिए ?" उनकी मीठी झिड़की उस समय नींद से भी अधिक रसीली लगी। चादर फेंक उठ बैठा। कहा—"जो आज्ञा, देवि !" पर बात तो यह थी कि सावना के बाद कसकर भूख लगती है। सो जाता तो स्वप्न में भी पछताता। थोड़ी देर बाद जो खाना आया उसे देखकर लगा कि सावना जैसा यज्ञ जिस महाभोज की प्रस्तावना था उसकी प्रतिष्ठा हमारी मधुर अन्नपूर्णा ने शत-प्रतिशत रखी थी। किसी प्रकार जब भोजन का अन्त आया तो मैंने धन्यवाद के साथ एक वाक्य और जोड़ दिया—"सावना मे गुण-ही-गुण है। केवल एक दोष है। ऐसी भूख लगती है कि अति भोजन का भय बना रहता

है ।" सचमुच फिनलैंड के लोग सप्ताह का अपना सबसे अच्छा भोजन सावना के बाद ही करते हैं । इस लिहाज से यह अच्छा ही है कि वे सप्ताह में केवल एक बार—शनिवार को—सावना लेते हैं । अन्यथा जो स्वास्थ्य लाभ सावना उन्हें देगा वह अजीर्णरूपी मसखरा वापिस छीन लेगा ।

आज केवल फिनलैंड में लगभग पाँच लाख सावनाघर हैं । अस्सी प्रतिशत ग्रामवासियों का अपना निजी सावना है। शहरों में भी बहुत सारे प्राइवेट सावना हैं । किन्तु धीरे-धीरे सार्वजनिक और सामूहिक सावना-घरों की संख्या बढ़ रही है । सरकारी संस्थाएँ, विद्यालय, व्यवसाय कम्पनियाँ, राजनीतिक दल, धार्मिक संस्थाएँ, लेखक-पत्रकार-संघ इत्यादि अपने सदस्यों और कर्मचारियों की सुविधा के लिए अलग सावनाघर बनवाने लगे हैं । साथ ही तमाम सावना क्लब भी खुलने लगे हैं । ऐसे क्लब बड़ी सफलता प्राप्त कर रहे हैं । सावना के प्रचार और धन-प्राप्ति दोनों के विचार से सावना-क्लब का प्रयोग तेजी से चल पड़ा है । यहाँ तक कि छोटे कस्बों में भी ऐसे क्लबों की माँग तेजी पर है । इसका मुख्य कारण यह है कि आज के विविधतापूर्ण युग में मनुष्य अपने परिवार में ही बँधकर नहीं रहना चाहता । वह बृहत्तर समाज में आकर अधिक-से-अधिक अनुभव—हर प्रकार का अनुभव—प्राप्त करना चाहता है, जहाँ वह विभिन्न तरह के चेहरे, शरीर, प्रकृति, रुचि और विचारों वाले लोगों से सम्पर्क कर सके । यदि व्यक्तिगत सम्पर्क न भी हो सके तो उनके कार्यकलापों और हाव-भावों का अवलोकन कर लेने से ही वह सन्तुष्ट हो जाता है । इन कारणों से, लोगों का मत है, दुर्भाग्यवश पारिवारिक निजी सावना की लोकप्रियता कम हो रही है । उनकी संख्या भी अनुपात में कम होती जा रही है । आखिर आधुनिक औद्योगिक सभ्यता की लपेट से सावना-जैसी दृढ़ परम्परा भी न बच पायी ।

सावनास्नान के गुणों की जितनी व्याख्या की जाय कम है । फिनिश डॉक्टरों ने ईमानदारी और वैज्ञानिक निरपेक्षता से इस पर काफी अनुसन्धान किया है । जहाँ तक मानसिक लाभ का प्रश्न है वह केवल स्वानुभूति से ही जाना जा सकता है । वहाँ के वातावरण का मन पर इतना असर पड़ता है कि हर व्यक्ति दूसरों के प्रति अपनी दुर्भावनाओं को—द्वेष, वैमनस्य, क्रोध, प्रति-हिंसा, घृणा, स्पर्द्धा को—कुछ देर के लिए ही सही—अवश्य भूल जाता है। उसके मन में मैत्री, सहयोग, शालीनता और सहिष्णुता के भावों का विकास

होता है । पर इन सबसे भी ऊपर जिसकी प्राप्ति सावनार्थी को होती है वह है अपूर्व मानसिक शान्ति । यह मैं स्वयं अपने अनुभव से कह सकता हूँ । शोरगुल, तोड़फोड़, मशीनों, भीड़-भक्कड़, स्वार्थ और संघर्ष के इस युग में सावना का महत्त्व कितना बढ़ जाता है यह इसी से समझा जा सकता है । आश्चर्य नहीं पश्चिमी देश के लोग—जो हड़बड़ी, भय और तेजी के कारण प्रायः स्नायु रोगों से पीड़ित होते हैं—इस स्नान के महत्त्व को प्राच्य लोगों से अधिक समझते हैं ।

पर शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी सावना का महत्त्व प्रचुर है । इसका सीधा और सर्वप्रथम प्रभाव पड़ता है त्वचा पर । यहाँ तक कि विदेशी डॉक्टरों ने भी स्वीकार किया है कि फिनलैंडवासियों की त्वचा योरोप के अन्य देशों के लोगों की त्वचा की अपेक्षा कहीं अधिक साफ, स्वस्थ, चिकनी और लावण्यपूर्ण होती है । आज से वर्षों पहले सन् १९४० में औषधिविज्ञान के एक प्रसिद्ध जर्मन-विशेषज्ञ डॉ० वी० मुक ने सावना के बारे में एक ऐसे तथ्य की खोज की जिसका ज्ञान स्वयं फिनिश डॉक्टरों को नहीं था । एक पत्रिका में लिखते हुए उन्होंने घोषणा की—"सावना का असली प्रभाव उसकी रेडियो सक्रियता से उत्पन्न होता है । यह ऐसी रेडियो सक्रियता है जो प्राणियों के लिए बहुत लाभदायक होती है । और मानव शरीर को तो उसकी विशेष आवश्यकता होती है । इसी के लिए हम मध्य योरोप गासटाइन, क्रौजनाक आदि जैसे रेडियो सक्रिय सोतों में (रेडियो ऐक्टिव स्पा) में स्नान करने के लिए अपने तमाम रोगियों को भेजते हैं ।" इसी सिलसिले में उन्होंने यह भी लिखा—जैसा अन्य डॉक्टरों ने उनसे पहले और बाद में कहा है—कि 'सावना हर प्रकार से निर्दोष स्नान है । इसका प्रयोग वृद्ध, जवान, स्त्री, पुरुष, स्वस्थ और रोगी निर्भीकता से कर सकते हैं ।' विख्यात हृदय-रोगों के चिकित्सक आर्वोविसा ने तो यहाँ तक कहा है कि 'ऐसा कमजोर जीर्ण रोगी जो घर से सावना घर तक पैदल भी नहीं चल सकता निश्चिन्त होकर सावना-स्नान ले सकता है । यदि उसे कुछ होगा तो लाभ ही होगा ।' आगे खोज करने पर यह पता चला है कि गर्भवती स्त्री के लिए सावना विशेष रूप से लाभदायक है । गर्भ के अन्तिम तीन-चार माह में नियमित सावना लेने वाली स्त्री को प्रसव के समय कम-से-कम खतरा और पीड़ा रहेगी । यह भी देखा गया है कि सावना की अभ्यस्त नव-

प्रसूता को अपेक्षाकृत अधिक दूध होता है और उसके दूध में किसी प्रकार का ऐसा विकार नहीं पाया जाता जिसका शिशु पर हानिकर प्रभाव हो। सावना से शरीर के विभिन्न अंग, उनकी पेशियाँ और स्नायु में अधिक परिश्रम से उत्पन्न हुई जड़ता, तनाव या उत्तेजना भी दूर होती है। यही कारण है कि फिनिश खिलाड़ियों और सैनिकों को सरकारी तौर पर सावना लेने की हिदायत दी जाती है। प्रत्येक ओलिम्पिक खेलों में मेजबान देश फिनलैंड के खिलाड़ी दल के लिए अलग से सावनाघर बनवाता है। कई खेल विशेषज्ञों ने अपनी रिपोर्टों में यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि जिमनास्टिक और वैयक्तिक प्रतियोगिता के खेलों या व्यायामों में, जिनमें शरीर के अतिरिक्त फुर्ती और लचीलापन की बहुत आवश्यकता होती है, फिनिश लोग जो इतनी सफलता प्राप्त करते हैं उसमें बहुत कुछ सावना का योग है। हर फिनिश खिलाड़ी प्रतियोगिता के दिनों में विशेष रूप से सावधानी के साथ प्रतिदिन सावना लेता है। इसमें केवल इसका ध्यान रखा जाना चाहिए कि खेल के तुरन्त बाद या पहले यह स्नान नहीं लेना चाहिए। दिन-भर काम करने वाले किसान को चाहिए कि वह १५ मिनट विश्राम करके ही सावनाघर में प्रवेश करे। द्वितीय महायुद्ध और अन्य क्षेत्रीय युद्धों में फिनिश सैनिकों ने तो युद्ध स्थल तक में टैंटों में सावनाघर बना लिया था। जिसे भी थोड़ा १५-२० मिनट का अवकाश मिलता वर्दी फेंक सावना में पहुँच जाता। सेनाधिकारी स्वयं सैनिकों को, यह जानकर कि इस टुकड़ी को आधा घंटा विश्राम करने को मिला है, पहले सावना नहा लेने की राय नहीं हुक्म देते थे। वैसे शान्तिकाल में सेना-छावनियों में हर सैनिक के लिए सावना लेना उसी प्रकार अनिवार्य है जिस प्रकार कवायद करना और अफसरों को सलाम करना।

ऐसे सावना की कीर्ति इतनी व्यापक होते हुए भी उसके आलोचक भी यत्र-तत्र मिलेंगे। अधिकांश ऐसे लोगों की शिकायत यह है कि सावना-घर में गर्मी की मात्रा बढ़ जाने से हृदय की गति इतनी तीव्र हो जाती है कि आगे चलकर हृदय-रोग हो जाने का भय रहता है। इसके अलावा कमजोर हृदय वाले को भी सावनाघर में खतरा रहता है। और यह भी कि सावनाघर की हवा में कारबन की अधिकता और आक्सीजन की कमी रहती है। ऐसी हवा में स्नानार्थियों को, जो कभी-कभी संख्या में ८-१० तक एक कमरे में होते हैं,

आधा घंटा तक रहना पड़ता है। अतएव यह निश्चित ही फेफड़ों के लिए हानिकर है। पहली शिकायत पर वैज्ञानिकों ने खोज की है और यह साबित किया है कि सावना के आदी होते हुए भी फिनलैंड में अन्य पाश्चात्य देशों की अपेक्षा हृदय के रोगी बहुत कम हैं और वहाँ के लोगों की औसत आयु भी ६२ साल है जो संसार के स्वस्थतम देशों में से एक होने का प्रमाण है। यह सही है कि पसीना छूटते समय हृदय की गति औसत ६४ से बढ़कर १३०-१३५ तक—जो दुगुनी से भी अधिक है—हो जाती है। यह गति शरीर ठंडा होने पर ९०-१०० हो जाती है। और पाँच मिनट के विश्राम के बाद ही औसत पर लौट आती है। पर हृदय-गति के इस चढ़ाव-उतार का भी सावना के १००० साल पुराने इतिहास में मानव-शरीर पर कोई दुष्प्रभाव नहीं देखा गया है। यह तो कोई कह ही नहीं सकता कि सावना एक सर्वथा परिपूर्ण स्नान है। पर आज तक इसके विरुद्ध ऐसा कारण स्नानार्थियों और वैज्ञानिकों दोनों को नहीं मिला जो इसकी निर्दोषता पर शंका पैदा कर सके। भविष्य में और अधिक गहराई से खोज होने पर यदि, कुछ मिल जाए वह अंतर्यामी ही जान सकता है। और भी मार्मिक बात जो सावना में है वह यह कि इसने अपने देशवासियों के मन में अपने प्रति एक अनोखी आस्था पैदा कर दी है। नोबेल पुरस्कार विजता सिल्लनपाय ने एक बार असाधारण भक्ति के साथ सावना के बारे में कहा था—"जैसी उदात्त भावनाएँ, विराट् कल्पनाएँ और शक्ति-संपन्नता सावना के मंच पर हमारे मनों में जागती हैं वैसी पृथ्वी के किसी स्थान में नहीं।" धन्य है, एक स्नान के प्रति ऐसी अगाध और अडिग आस्था अपने आप में एक आश्चर्य है! वैसा ही जैसा सावना।

पुराने जमाने के लोग परिश्रम से थके शरीर को शिथिल करने के अभिप्राय से सावना लेते थे। अन्य प्रकार के भाप-नहानों का भी यह महत्त्वपूर्ण प्रयोजन था। इसका मतलब यह नहीं है कि आज के यांत्रिक युग में शरीर-श्रम की आवश्यकता कम हो जाने से भाप-नहान की आवश्यकता भी कम हो गयी है। वस्तुतः यह और बढ़ गयी है। हजारों लोग दिन भर घरों में पंखे के नीचे कुर्सी पर बैठे लिखने-पढ़ने का काम करते हैं। बुद्धिजीवी वर्ग को भारतीय गरमी में भी पसीना नहीं होता। पसीने के द्वारा प्रकृति शरीर-शोधन की जो क्रिया करती है उससे वे वंचित रह जाते हैं। इसका दुष्परिणाम प्रौढ़ा-

वस्था में किसी-न-किसी आंतरिक या जीर्ण रोग के रूप में उन्हें भुगतना पड़ता है। यदि ऐसे लोगों को नियमित रूप से सप्ताह में एक-दो बार सावना या ढंग का कोई भाप-नहान दिया जाय तो हृदय-रोग, रक्तचाप, दमा, चर्मरोग बहुत कम हो जायें। भाप-नहान के विश्वव्यापी प्रचार, प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा इसको अपनाया जाना, दो-तीन हजार वर्ष पुरानी परम्परा और आधुनिक विज्ञान के अन्वेषण इन सबों ने यह सिद्ध कर दिया है कि भाप-नहान केवल ठंडे देशों में ही नहीं गरम देशों में भी उपयोगी है। भारत-जैसे देश में, जहाँ अपेक्षाकृत इंधन की परेशानी नहीं रहती, सावना की व्यावहारिकता स्वयं सिद्ध है। ●

हालैंड का एक फार्म

□ □ □
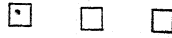
हालैंड का पहले नक्शा देखने और फिर उस देश में पहुँचने पर पहला प्रश्न मन में यह उठा कि यहाँ के लोग खेती कहाँ करते होंगे। जिधर नजर जाती मकान, सड़क, गाँव, पुल, रेल लाइन, कारखाना या अधिक से अधिक फल और सब्जी के छोटे-छोटे बगीचे दिखायी देते थे। पूरा देश सपाट मैदान होते हुए भी बड़े मैदानों से वंचित सा दीखा। हमारे देश-जैसे मीलों तक फैले बड़े-बड़े खेत वहाँ नहीं दीखे। अधिकांश मैदान क्रिकेट या फुटबाल ग्राउण्ड जैसे ही दीखे जबकि कृषि में हालैण्ड की ख्याति मैं वर्षों से सुनता आया था और अब उसी से आकृष्ट होकर वहाँ पहुँचा था।

मेरी शंका का समाधान दूसरे ही दिन हो गया। वहाँ के एक कृषि-प्रतिष्ठान ने मुझे एक बहुत ही श्रेष्ठ एवं विख्यात फार्म पर प्रेक्षण के लिए भेजा। हमारे देश में होता तो हम ऐसे फार्म को कम से कम सौ एकड़ का होने की आशा करते। यह फार्म दो टुकड़ों में था और सब मिलाकर लगभग पाँच एकड़ था। एक टुकड़ा क्रिकेट ग्राउण्ड जैसा और दूसरा फुटबाल ग्राउण्ड जैसा दीखता था। लेकिन, इस फार्म पर आश्रित दो परिवारों के सदस्यो की संख्या बारह थी जिनमें से छः स्कूल जाने वाले विद्यार्थी थे। दोनों घरों में रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन, गैस या बिजली का चूल्हा, गरम पानी की टंकी, रेफ्रीज्ररेटर, बिजली का ओवेन, धुलाई की मशीन वैकु-क्लीनर आदि प्रायः सभी आधुनिक सामग्री मौजूद थी। दोनों परिवारों के पास अपनी अलग-अलग कार, पाँच-छः साइकिलें, तथा एक पुराना और एक नया मकान था। खेती के काम के लिए उनके पास एक ट्रक और एक ट्रैक्टर, दवा छिड़कने की मशीन, दो छोटे गोर्डेन ट्रैक्टर और अनेक प्रकार के आधुनिक औजार भी थे। इसके अलावा उनका खाना-पीना ऐसा था जैसा हमारे यहाँ के बड़े-बड़े रइसों को भी नसीब न होगा। आश्चर्य है पाँच एकड़ धरती सोना उगलता भी है तो कितना उगलती है। संयोगवश मैं फार्म पर उस समय पहुँचा जब कृषक

परिवार अपने कर्मचारियों के साथ दोपहर का भोजन करने जा रहा था। मैं भी उसमें सम्मिलित हुआ। भोजन के बाद परिवार के सबसे वरिष्ठ सदस्य श्री बाकर ने कहा—'आप अभी विश्राम करें। हम भी इस समय एक घण्टे का विश्राम लेते हैं। उसके बाद हम आपको फार्म पर ले चलेंगे।' इसलिए मुझे अपनी उत्सुकता पर दो घण्टे और नियन्त्रण रखना पड़ा।

अगस्त का महीना था। ग्रीष्मकालीन सुहावनी धूप नासपाती के पेड़ों पर सो रही थी। हमने बगीचे में प्रवेश किया तो ऐसा लगा जैसे खेत नहीं कोई सघन कुंज है। कहीं मेंड़ नहीं, कहीं एक इंच भी जमीन खाली नहीं। सारा आवागमन पेड़ों के नीचे से होकर था। पूरे बगीचे में ऊपर से नीचे, बायें से दायें ट्रैक्टर जाने के लिए उसी की चौड़ाई की दो चौड़ी मेड़ें थीं। मैंने श्री बाकर से कहा—'आखिर इन झुके हुए पेड़ों के नीचे से आप लोग आते जाते कैसे होंगे ?' उत्तर था—'झुक कर। हम कोई बूढ़े हो गये हैं जो झुककर चलने से थक जाय। यदि इस बगीचे में हम चार मेड़ें और निकालते हैं तो कम से कम चालीस सेब के पेड़ कट जायेंगे। जिसका मतलब हुआ करीब आठ हजार रुपये प्रतिवर्ष का नुकसान। हम तो यह आशा करते हैं कि एक दिन हैली-काप्टर जैसे किसी ऐसे यन्त्र का आविष्कार होगा जो उड़कर खेत के बीचोबीच सामान ढोने के लिए उतर सकेगा। इसके लिए शायद तीस फुट लम्बी और तीस फुट चौड़ी जमीन पर्याप्त होगी। इससे हमारे नौ-दस पेड़ कट जायेंगे। लेकिन, उसके बदले इन दो चौड़ी मेड़ों पर पचास पेड़ लगा लेंगे। अर्थात चालीस पेड़ यानी करीब आठ हजार प्रति वर्ष की अतिरिक्त आमदनी। यदि उक्त छोटा हैलीकाप्टर तीस हजार रुपये में भी आया तो चार साल में उसकी कीमत निकल आयेगी।' पचास वर्षीय, लगभग ६ फुट लम्बे और अल्प शिक्षित भोले चेहरे वाले इस किसान की व्यावसायिक बुद्धि पर मैं हैरान था। भारतीय किसान की भावुकता उसे धरती को अपनी माँ समझने की प्रेरणा देती है और डच किसान की बनिया बुद्धि धरती को सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी। दोनों में कौन ठीक है और कौन गलत, इसका निर्णय मेरी समझ में यथार्थ जीवन ही कर सकता है। इस यथार्थ जीवन का परिचय उपर्युक्त विवरण से ही हो जाता है। प्रकृति में रहने और काम करने वाला हर किसान भावुक होता है—हालैंड का किसान भी होता है। लेकिन, वह अपनी

भावुकता की वह कीमत नहीं देता जो भारतीय किसान देता है। भावुकता के अतिरिक्त इसमें और भी कारण निहित हैं जैसे श्रमशीलता, आशावादिता, अर्थ-व्यवस्था, प्रबन्ध-क्षमता और सर्वथा अनुकूल सामाजिक एवं भौगोलिक अवस्थाएँ इत्यादि। इन सभी आन्तरिक शक्तियों का ही यह परिणाम है कि श्री बाकर के पाँच एकड़ के बगीचे में नासपाती, अंगूर, खरबूजा, टमाटर, गोभी, खीरा, चुकन्दर, ब्रुसेल्स, स्प्राउट, लेटेस, स्ट्राबेरी, अण्डाइवी और सेमें पर्याप्त मात्रा मे उगती है। अंगूर, टमाटर और खरबूजा छोड़कर, जो मौसम के अनुसार कांच के घरों में उगाये जाते हैं, बाकी सब चीजें वर्ष में केवल गर्मियों के चार महीने में ही तैयार की जाती है। अर्थात् इन सब चीजों की केवल एक फसल ही उन्हें मिल पाती है। बाकी आठ महीने वे जौ की एक त्रैमासिक फसल छोड़कर सारा समय जमीन को जोतने गोड़ने, खाद देने और हानिकारक कीटाणुओं से बचाने में लगाते हैं। उनकी इस अभूतपूर्व सफलता का कारण केवल यहीं तक सीमित नहीं है। जिस ढंग से एक-एक इंच जमीन का प्रयोग करते हुए वे लोग आधुनिक यन्त्र से खेती का सारा काम करते हैं, मिट्टी तैयार करते हैं, पेड़ों और फसल की तुषार कीड़ों से रक्षा करते हैं एवं समय पर फल तोड़कर या काटकर बाजार पहुँचा देते हैं, वह भी इन किसानों की समृद्धि और निरन्तर विकास का महत्वपूर्ण कारण है।

मुझे एक घटना याद आती है। सितम्बर का अन्तिम सप्ताह था। बरसात शुरू ही हुई थी। सेब और नासपाती की आधी फसल टूट चुकी थी और बाकी आधी में से लगभग एक चौथाई फल तोड़ने लायक थे। अर्थात् वे पक चुके थे, जिन्हें ३-४ दिन बाद तोड़ा जाना था। अचानक एक दिन रात को भोजन के समय रेडियो पर मौसम का समाचार सुना कि दोपहर के बाद हल्की सी आंधी आने की सम्भावना है, फल की खेती वाले सतर्क हो जायं। समाचार सुनते ही पूरा कृषक परिवार खाने की मेज से उठ पड़ा। औरतों और बच्चों सहित बरसात की अन्धेरी रात में नौ बजे से सबेरे तीन बजे तक लगभग डेढ़ सौ पेटी फल तोड़कर सुरक्षित भीतर रख लिया गया। तीन बजे से छः बजे तक लोगों ने विश्राम किया और फिर रोज की तरह काम में लग गये। दिन भर में लगभग दो सौ पेटी फल और तोड़ लिये गये। आंधी आयी और फल भी नष्ट हुए, लेकिन जितना नष्ट होने की सम्भावना हो सकती थी, उसका

शायद दसवाँ हिस्सा ही नष्ट हो पाया। यह भी सम्भव था कि आंधी बिल्कुल न आती—जैसा प्रायः रेडियो समाचार के बाद होता है—लेकिन घोर आशावादी होते हुए भी कर्मठ किसान बरसात की शीतल रात में आराम से सोने का लोभ त्याग कर प्रकृति से जूझने के लिए बाहर निकल आया। नुकसान होता भी तो शायद ३-४ सौ रुपये का जो उनकी हैसियत की तुलना में कोई बड़ा नुकसान नहीं था। लेकिन, हालैण्ड के किसान की कठोर व्यावसायिक बुद्धि में यह पैसे की नहीं, उसके जीवन दर्शन की क्षति थी।

हमारे यहाँ का किसान जितना उगाता है, उसका एक अच्छा खासा भाग मौसम, लापरवाही, सुस्ती, अज्ञानता, विवशता या जानवरों के कारण नष्ट हो जाता है। फल-सब्जी खेत से बाजार तक पहुँचते-पहुँचते तीन चौथाई ही रह जाती है लेकिन हालैंड जैसे देशों में बाजार की ऐसी व्यवस्था है कि दूर से दूर के खेत या बगीचे से बाजार तक फल-सब्जी पहुँचने में तीन-चार घण्टे से ज्यादा नहीं लगते। परिवहन और सड़कों की इतनी समुचित व्यवस्था है कि छोटे से छोटे किसान को भी अपने थोड़े से थोड़े माल को घर में नहीं रखना पड़ता। श्री बाकर के खेत पर जो फसल शाम तक टूटती थी दूसरे दिन सवेरे आठ बजे तक बाजार में पहुँच जाती। फसल के बाजार में पहुँचने पर वहाँ की सहकारी समितियाँ सारा माल खरीद कर ठंडे गोदामों में रख देती हैं, जहाँ से आवश्यकतानुसार माल बाद में बिकता रहता है। किसान को उस दिन के भाव के हिसाब से समिति का वाउचर दे दिया जाता है। अर्थात् किसान ने अपनी जो फसल आज बारह बजे दोपहर तक तोड़ी है उसे वह चार बजे तक बेचकर निश्चिन्त हो जाता है और फिर अपने काम में लग जाता है। उसके दिल पर न कोई बोझ रहता है और न दिमाग में कोई चिन्ता। न ही उसको कोई एजेन्ट, आढ़तिया या कुंजड़ा ठगता है। हर काम नियम, अनुशासन और संघटन के साथ पूरा करने के बाद उसको निर्धारित बाजार भाव के अनुसार रकम मिल जाती है। यहाँ तक कि श्री बाकर ने शौकियाने तौर पर दो गायें पाल रखी थीं जिनसे प्रतिदिन सवेरे आठ सेर और शाम को छः सेर दूध मिलता था। पूरे परिवार के लिए इतना दूध कुछ ज्यादा था। शायद चार सेर प्रतिदिन बच जाता होगा। दूसरे वहाँ के नियमानुसार बिना डेयरी में दूध पश्चराइज किये पी भी नहीं सकते थे, फिर भी यह किसान प्रतिदिन दोनों

वक्त अपने यहाँ का दूध ट्रैक्टर गाड़ी से चार पाँच मील दूर डेयरी में भेजता था। मेरा अनुमान है कि सब मिलाकर उसे तीन चार रुपये रोज का ही फायदा होता था जो उसके लिए और वह उसमें जितना शक्ति और समय देता था उसे देखते हुए लगभग नहीं के ही बराबर था। मैंने श्री बाकर से जब यह पूछा कि भला यह मुफ्त की परेशानी क्यों मोल ले रखी है, तो बोले—'हम किसान हैं। ट्रैक्टर और रासायनिक खाद का आविष्कार हो जाने के बाद भी हम अपनी परम्परा से विद्रोह नहीं करते। इतनी खेती-बाड़ी होने पर भी यदि मुझे खरीद कर दूध पीना पड़े तो लानत है मेरी किसानी पर। सम्पूर्ण किसानी वही है जिसमें खेती के अलावा दूध, गोश्त और अण्डों के लिए पशुओं का भी पालन होता हो इसलिए हमने गाय के अलावा सुअर और मुर्गियाँ भी पाल रखी हैं। हालांकि ये इतनी कम हैं कि हमारी आवश्यकता पूरी नहीं हो पाती। परन्तु हमें इसका अत्यधिक सन्तोष तो है ही कि किसान होने के नाते हम अपनी आवश्यकता की खाद्य सामग्री यथासम्भव स्वयं पैदा करते हैं, उगाते हैं। देश को भोजन देना हमारा काम है। यदि स्वयं हम ही अपने भोजन का उत्पादन नहीं कर सकते तो शहर के बाबू, फिल्म स्टार या यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर क्या करेंगे ?'

श्री बाकर का यह उत्तर मेरे लिए अविस्मरणीय है। पहली बार लगा कि हालैण्ड का यह किसान शरीर से मेहनती और बुद्धि से व्यावसायिक ही नहीं हृदय से भावुक और सिद्धान्तों से आदर्शवादी भी है। उसके जीवन में इन चारों बातों का ऐसा समावेश है कि उसके लिए धरती माता न होकर भी धरती के लिए वह वरद-पुत्र है। कैसी विडम्बना है कि धरती को माँ कहने वाले भारतीय किसान को धरती से भरपेट अनाज नहीं मिलता लेकिन धरती को मात्र भोजन का भण्डार समझने वाले डच किसान को भरपेट अनाज ही नहीं भरपेट ऐश्वर्य भी मिलता है। ठीक भी है अच्छी माताएँ अपने चापलूस बेटों को नहीं, बल्कि मेहनती और कमाऊ पूतों को ही सच्चे हृदय से चहाती है चाहे वह कठोर स्वभाव का ही क्यों न हो। ●

स्विट्जरलैंड :
जहाँ समाजवाद एक स्वाभाविक प्रक्रिया बन गया है

□ □ □
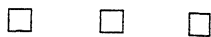
स्विट्जरलैंड दुनिया का सबसे पुराना गणराज्य है। सैनमारिनो और अंडोरा कुछ इससे पहले के हैं। पर ये देश प्रभुसत्तासम्पन्न होते हुए भी इतने छोटे जनक्षेत्र हैं कि उन्हें देश मानने वाले इन देशों के बाहर बहुत कम होंगे। स्विट्जरलैंड की यह विशेषता अपने आप में चाहे इतनी महत्वपूर्ण न हो, पर लोकतांत्रिक परम्परा की दृष्टि से परखने पर इसका महत्त्व निर्विवाद है। प्रथम यह कि इस छोटे से देश ने उस समय अपने को गणराज्य घोषित किया जब यह चारों ओर से साम्राज्यवादी देशों से घिरा हुआ था। साथ ही उसके साधन भी सीमित थे। उद्योग-धन्धे बहुत कम थे। जो थे उनका आधुनिकीकरण नहीं हुआ था। दूसरा यह कि गणराज्य बन जाने अर्थात् लोकतन्त्री सिद्धान्तों को कम से कम विचारों में अपना लेने के बाद भी इस छोटे से देश ने अपनी एकता को असाधारण सफलता के साथ कायम रखा। अधिक नहीं पिछले विश्व युद्ध के पहले तक कई विद्वानों का मत था कि राजाशाही परम्परा पर चले आते हुए देश और रजवाड़े गणराज्य बनने पर राजनीतिक दृष्टि से ढुलमुल और प्रशासन की दृष्टि से कमजोर पड़ गये हैं। सरकार में स्थायित्व का अभाव, फूट, अराजकता इत्यादि इस संधिकालीन संकटावस्था के अनिवार्य परिणाम हैं। फ्रांस में राज्यक्रांति के बाद जो हुआ वह सर्वविदित बात है। जर्मनी में गणराज्य की स्थापना होते ही संकट पर संकट आते गये जिसने अन्ततोगत्वा हिटलर को जन्म दिया। इटली में भी आये दिन सरकार बदलती रहती है। पुर्तगाल और स्पेन ने राजाशाही से छुटकारा पाया लेकिन उसके बदले तानाशाही और निरंकुशता ही अपना सके। ऑस्ट्रिया की जिस कमजोरी या निस्सहायता का लाभ उठाकर हिटलर उसे आनन-फानन हड़प कर सका था उसका कारण भी एक हद तक शक्तिशाली ऑस्ट्रो-हंगेरियन साम्राज्य को तोड़कर गणराज्य बनाना ही था। बहरहाल, योरोप के जनतांत्रिक गणराज्यों

ने दूसरे महायुद्ध तक दुनिया के सामने कोई उत्साहवर्धक उदाहरण नहीं पेश किया था । स्विट्जरलैंड को छोड़ फिनलैंड ही उन दिनों एक ऐसा गणराज्य था जहाँ की राजनीतिक स्थिति राजाशाही समाप्त होने के बाद भी मजबूत बनी रही । तथापि स्विट्जरलैंड की सफलता फिनलैंड की सफलता से अधिक महत्वपूर्ण है । १. स्विट्जरलैंड बहुभाषी देश था वहाँ जर्मन भाषियों और फ्रेंच भाषियों में कशमकश होने की काफी सम्भावना थी । जबकि फिनलैंड द्विभाषी होते हुए भी स्पष्टतया फिनिस भाषियों का देश था और अनिवार्यतया उनके आधिपत्य में रहता था । २. स्विट्जरलैंड गणराज्य की स्थापना अनेकानेक रजवाड़े, जनक्षेत्रों, शहरों आदि को बेमेल ढंग से बटोर कर किया गया था । जबकि फिनलैंड में ऐसी कोई स्थिति नहीं थी । ३. भौगोलिक स्थिति के कारण स्विट्जरलैंड पर बाहरी हमलों या पड़ोसी राजतान्त्रिक देशों के षड़यन्त्रों का बहुत खतरा बना रहता था । जबकि फिनलैंड रूस की बोलसेविक क्रान्ति के बाद इस भय से वहुत कुछ मुक्त हो गया था । द्वितीय विश्वयुद्ध में ही इसलिए हिटलर से जितना खतरा स्विट्जरलैंड को था उतना किसी भी हालत में फिनलैंड को रूस से नहीं था । ४. स्विट्जरलैंड में जो रजवाड़े और जिले शामिल हुए थे उनकी कोई समान ऐतिहासिक परम्परा और विकास नहीं था । केवल हाब्सबर्ग राजाओं की विस्तारवादी प्रवृत्तियों से बचने के लिए अपना एक छोटा सा संगठन बना लिया था । इन राजाओं और उनके ड्यूकों का जोर पन्द्रहवीं-सोलहवीं सदी के फ्रांस, जर्मनी और इटली के सीमावर्ती भागों में बढ़ रहा था । इसीलिए आज स्विट्जरलैंड वस्तुतः जर्मनी, फ्रांस और इटली का एक समाविष्ट रूप है । अतएव तीन भिन्न देशों के संगठन का जो सबसे व्यावहारिक रूप हो सकता था वही रूप अर्थात् (Confederation) स्विट्जरलैंड के नये नेताओं ने अपने नये देश के लिए चुना । इस राज्य-संघ में आगे चलकर आल्पस की घाटियों में बसे, कुछ और छोटे-छोटे जिले एवं शहर भी शामिल हो गये । दरअसल, स्विट्जरलैंड का निर्माण क्रमबद्ध या व्यवस्थित रूप में नहीं हुआ । आज भी इतिहासकार इस देश के इतिहास के अध्ययन, अध्यापन और लेखन में अनेक पेचीदगियों का अनुभव करते हैं । इस प्रकार स्विस राज्य-संघ के अवयव इतने दुर्बल होने पर भी स्विस जनता की राष्ट्रीय भावना, राष्ट्रीय एकता और स्विस सरकार की राजकीय व्यवस्था, प्रशासन

कुशलता अपूर्व हैं। दुनिया में ऐसे दो-चार ही देश होंगे जो इस देश की एकता और संगठन के साथ बराबरी कर सकें। इतिहासकारों ने राष्ट्रीयता की किसी कसौटी पर स्विट्जरलैंड को खरा नहीं पाया। भौगोलिक, ऐतिहासिक, भाषयिक या राजनीतिक किसी भी दृष्टि से इसे एक देश या राष्ट्र नहीं माना, लेकिन पिछले तीन सौ वर्षों में इसने अपनी एकता, संगठन और सामूहिक विकास की प्रवृत्ति का ऐसा परिचय दिया है उससे इंगलैंड जैसे देश भी, जिन्हें अपनी राष्ट्रीय एकता पर अभिमान है, ईर्ष्या करते हैं। इतना ही नहीं राजनीतिक स्थायित्व के कारण स्विट्जरलैंड ने इस सदी में आशातीत आर्थिक उन्नति की है और अपनी सैन्य शक्ति को काफी बढ़ाया है। योरोप में स्विस सेना कदाचित सबसे अधिक आधुनिक, सुगठित, युद्ध प्रवीण, बहादुर और अनुशासित है। यह देश अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में तटस्थ नीति पर विश्वास करता है। पर शक्ति सम्पन्नता पर उससे भी अधिक विश्वास करता है।

इतिहासकारों ने स्विट्जरलैंड की इस अनोखी विशेषता पर प्रचुर सोचा है। लेकिन अभी तक किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँचे कि इस देश की आन्तरिक शक्ति का क्या रहस्य है। मैंने अपनी स्विस यात्राओं के दौरान यह प्रश्न कई स्विस मित्रों से किया। गोष्ठियों-सभाओं में उठाया। कई प्रकार के उत्तर मिले। किसी ने कहा "हम स्विस निवासी इतने प्रकृति प्रेमी हैं कि हम राजनीतिक या अन्य प्रकार के सांस्कृतिक झगड़ों के लिए न फुरसत है और न इच्छा।" किसी ने कहा—"प्राकृतिक सौन्दर्य से सम्पन्न अपने देश को हमें बहुत प्यार करते हैं।" किसी ने कहा—"प्रकृति के छन्द, लय और लावण्य ने हमारे जीवन को भी लययुक्त कर दिया है जो राजनीतिक फूट, षडयंत्र या कशमकश से विशृंखलित हो जाता है। अतएव हम इन आधुनिक रोगों से सदा दूर रहने का भरसक प्रयत्न करते हैं।" ये दलीलें कहाँ तक ठीक हैं इसका निश्चय तो कोई मनोवैज्ञानिक ही कर सकता है। साधारण व्यक्ति अपने सहज ज्ञान से इतना ही जानता है कि प्रकृति प्रेमी लोग शान्तिप्रिय भी होते हैं। अतएव स्विस लोग शान्तिप्रिय हैं इसको सामान्यतया मान लेने में किसी को भी आपत्ति न होगी। किन्तु यह भी सच है कि स्विट्जरलैंड में गृहयुद्ध हुआ है और राजनीतिक कशमकश भी किसी न किसी अंश तक चलती रहती है। आज भी वहाँ सम्मिलित सरकार है और आये दिन कई राष्ट्रीय विषयों

पर तीव्र विवाद उठ खड़ा होता है। तथापि इन खींचातानियों और विवादों के बावजूद स्विट्जरलैंड की आन्तरिक बनावट कुछ ऐसी है जो इस देश को अन्यान्य आधुनिक बीमारियों से बचाये हुए है। प्रकृति का उसमें कुछ परोक्ष-अपरोक्ष प्रभाव हो सकता है पर उपर्युक्त दलीलों से कोई 'आधुनिक' विचारक सन्तुष्ट नहीं हो सकता। ठोस कारणों के लिए हमें स्विट्जरलैंड की आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था को टटोलना होगा।

इस संक्षिप्त ऐतिहासिक भूमिका से यह तो स्पष्ट हो ही गया है कि स्विट्जरलैंड ने अपने यहाँ गणराज्य स्थापित करके बहुत पहले ही कम से कम सैद्धान्तिक रूप से जनतन्त्रात्मक परम्परा आरम्भ कर दी थी। इससे यह हुआ कि ह्रासोन्मुख साम्राज्यवादी तत्वों को तेजी से नष्ट करके नये मूल्यों और राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना में स्विस नेताओं को उतना समय नहीं लगा और न उतनी बाधाएँ मिलीं जितनी अन्य योरोपीय देशों के नेताओं को। समय की माँगों, बदलते विचारों और मूल्यों, जनता की भावनाओं और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के दबाव से जो परिवर्तन अवश्यम्भावी थे उनको जिस निष्ठा और तत्परता से स्विट्जरलैंड अपनाता गया वह उदाहरणीय है। अन्य शक्तिशाली, प्राचीन और समृद्धिशाली देश भी लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था से इतने अनुशासित नहीं हो सके जितना स्विट्जरलैंड, राजनीति और प्रशासन में। इस प्रशासन की सबसे अधिक गारन्टी स्विस संविधान में मिलती है जो दुनिया का सबसे विचित्र विधान वाला संविधान है। उदाहरण के लिए केन्द्रीय सरकार की बनावट पर ही दृष्टिपात करें, केन्द्रीय विधान सभा मन्त्रिमण्डल के लिए सात सदस्यों का चुनाव करती है। इनमें से प्रत्येक के जिम्मे एक विभाग रहता है और प्रत्येक सदस्य अर्थात् मन्त्री केवल चार वर्ष के लिए चुना जाता है। मन्त्रिमण्डल ही अपने सदस्यों में से एक को राष्ट्रपति और एक को उपराष्ट्रपति चुन लेता है जो केवल एक वर्ष के लिए नियुक्त किये जाते हैं। मन्त्रिगण बहुधा बार-बार मन्त्रिमण्डल में निर्वाचित होकर आ जाते हैं। इस प्रकार वे राष्ट्रपति के पद पर प्रतिवर्ष अपनी-अपनी पारी के अनुसार पहुँचते रहते हैं। क्योंकि राष्ट्रपति एक वर्ष के लिए चुना जाता है और एक बार चुने जाने पर वह दुबारा भी चुना जा सकता है पर लगातार दो वर्ष नहीं चुना जा सकता। इस पद्धति से सरकारी और राजनीतिक व्यवस्था

व और निरन्तरता बनी रहती है। लेकिन बारीकी से समझने पर महत्वपूर्ण विशेषता इस संविधान में यह मिलेगी कि लोकतन्त्र के सिद्धान्त के अनुरूप इसमें देश को निरंकुश प्रशासक या तानाशाह से बचाने की पूरी व्यवस्था है, फेडरेशन की बनावट जिसमें प्रत्येक संभाग या कैन्टन की स्वायत्तता और स्वतन्त्रता सुरक्षित है। स्वयं लोकतन्त्र के सम्मान और उपयोग का प्रमाण है। इस प्रकार दुनिया के सबसे प्राचीन गणराज्य में लोकतन्त्र के सभी बुनियादी सिद्धान्तों के अनुसार राज्य के संगठन, प्रशासन और राजनीतिक कार्यकलाप हैं। अतएव आश्चर्य नहीं कि इस देश में विभिन्नता के बावजूद इतनी एकता है। इसका श्रेय वहाँ की प्राचीन लोकतन्त्री परम्पराओं को है। योरोप में कुछ ही देश मुझे ऐसे मिले जिनके नागरिकों में इतनी राजनीतिक जागृति हो जितनी स्विस नागरिकों में। फेडरेशन के अन्तर्गत मिली क्षेत्रीय स्वतन्त्रताओं ने वहाँ के नागरिकों में स्वतन्त्र चिंतन, सार्वजनिक मामलों में दिलचस्पी और व्यापक एवं उदार दृष्टिकोण का विकास किया है। इससे वहाँ की सरकार को लोकतन्त्रात्मक सिद्धान्तों पर जनता को चलाने में उतनी सुविधा होती है जितनी जनता को सरकार को चलाने में। वस्तुतः इस देश को वहाँ की जनता और सरकार दोनों मिलकर चलाते हैं, आगे बढ़ाते हैं और नये मूल्यों को जन्म देते हैं। लोकतन्त्र का यह व्यापक और सार्वकालिक योगदान है जो स्विट्जरलैंड जैसे देश के माध्यम से उसने योरोपीय राजनीति में किया है।

राजनीतिक संगठन से भी अधिक महत्वपूर्ण है स्विट्जरलैंड का आर्थिक स्वरूप जिसने वहाँ की राजनीति, प्रशासन, अर्थव्यवस्था और समाज पर गहरा प्रभाव डाला है।

स्विट्जरलैंड पूर्णतया पहाड़ी प्रदेश है जहाँ वर्ष में छः से आठ मास तक बर्फ जमी रहती है और गिरती है। सुन्दर पर्वतमालाओं, घाटियों और जंगलों से भरे इस देश में कृषि बहुत ही सीमित क्षेत्र और मात्रा में होती है। जो खेती होती भी है उसमें से अधिकांश पशु-पालन, दूध और दूध से तैयार की हुई चीजों से सम्बन्धित है। लगभग १६% लोग ही कृषि और वन उद्योग में सक्रिय भाग लेते हैं। यह संख्या सन् १८८० में ३७% और सन् १९४१ में २०% थी

जिससे यह सिद्ध होता है कि धीरे-धीरे स्विट्जरलैंड कृषि से विमुख होकर औद्योगिक काम-धन्धों को अपना रहा है। कृषि में भी अधिकतर मुर्गीपालन और पशुपालन होते हैं। प्रति गाय प्रति वर्ष दूध का उत्पादन इस छोटे से देश में २९०० किलोग्राम है जो अमरीका के उत्पादन से ड्योढ़ा है। तथापि दूध, मक्खन, पनीर, मांस इत्यादि स्विस निवासियों के लिए कम पड़ता है और उन्हें खाने की प्रायः प्रत्येक वस्तु बाहर से किसी न किसी मात्रा में आयात करनी पड़ती है। उधर वहाँ की धरती पर जलवायु और पहाड़ों के कारण अनाज भी सीमित मात्रा में पैदा होता है। चिरकाल से स्विट्जरलैंड को अन्य देशों से मंगाये अनाज पर निर्भर रहना पड़ता है। अतएव बाध्य होकर वहाँ के अधिकांश लोगों को अन्य उद्योग-धन्धों में लगना पड़ा। आज लगभग ५०% निवासी औद्योगिक कामों में संलग्न हैं। अन्य आँकड़ों को देखकर लगता है कि कृषि की तुलना में स्विट्जरलैंड दुगने से भी अधिक औद्योगिक देश है। लेकिन स्विस उद्योगों की अपनी विशेषता है जिसने वहाँ की आर्थिक स्थिति को परिचालित किया है। इस विशेषता का सम्बन्ध तीन बातों से है।

१. स्विट्जरलैंड में खनिज पदार्थ प्रायः नहीं के बराबर हैं। कुछ हिस्सों में केवल नमक पाया जाता है। लोहा या अन्य धातुओं का नाम नहीं है। शक्ति के स्रोतों तेल, गैस, कोयला का भी पूर्ण अभाव है। इससे वहाँ बड़े-बड़े उद्योगों का विकास और कारखानों का निर्माण न हो सका। जो कल कारखाने खुले प्रायः छोटे पैमाने पर उत्पादन के लिए जिनसे स्थानीय निवासियों को रोजगार मिल सके। आज भी तमाम औद्योगिक प्रगति के बावजूद वहाँ का आयात निर्यात से १२% अधिक है।

२. कड़ी ठण्ड के कारण स्वभावतया लोगों का बन्द गरम घरों में कुछ कर सकने लायक कामों की ओर झुकाव बढ़ता गया। अतएव घरेलू उद्योगों का विस्तार हुआ जिसमें छोटी-छोटी कलात्मक वस्तुओं का ही निर्माण सम्भव था। इस प्रकार यह देश घड़ियों, गहनों, सजावट की चीजों के बनाने में हमेशा अग्रणी रहा है।

३. पहाड़, घाटी, नदी, नालों और झीलों के आधिक्य के कारण पन-बिजली का प्रचुर प्लावन हुआ। यह विद्युत शक्ति पहाड़ों पर घाटियों में

से तो पहुँच सकी पर इससे बड़े कल कारखानों को कोई लाभ नहीं पहुँच पाया। इससे लघु उद्योगों को विशेष प्रोत्साहन मिला।

इस प्रकार स्विट्जरलैंड में ऐसे उद्योगों का विकास हुआ जिसके लिए बड़ी पूँजी से कहीं अधिक कारीगरी और कलात्मकता की दरकार थी। हथकंडी जाड़े में गरम कमरे की खिड़की से बाहर गिरती हुई बरफ को देखते हुए कर्मचारी जिन यंत्रों और उपभोक्ता वस्तुओं का निर्माण कर सकते थे उनसे पूँजीपतियों की नहीं मध्यम श्रेणी के कारीगरों की ही संख्या बढ़ी। इधर कच्चा माल न होने के कारण विदेशी पूँजी के आने या स्थानीय एकाधिकारों की वृद्धि का भी प्रश्न नहीं उठा। किसी भी दृष्टि से पूँजीवाद, एकाधिकार औद्योगिक शोषण या वर्ग संगठन को प्रोत्साहन नहीं मिला। औद्योगिक केन्द्र रह जाने योग्य स्थानों का भी विकास न हुआ जहाँ से आधुनिक युग सुलभ राजनीतिक, आर्थिक और असमाजवादी खुराफातों को पोषण मिलता। सब मिलाकर स्विट्जरलैंड की आर्थिक बनावट योरोप के अधिकांश देशों से भिन्न प्रकार की होती गयी। और आज इस देश की कई बातें उन देशों से जो इतनी निराली हैं इसका कारण यह आर्थिक पहलू ही है। इतना ही नहीं यह देश कृषि प्रधान न होते हुए भी औद्योगिक देश नहीं बना। दोनों का अनुपम समावेश ही प्रकृति के इस लाड़ले देश में मिलेगा।

इसका मनोवैज्ञानिक असर स्विस निवासियों पर पड़ा ही। साथ ही स्विस समाज के लिए यह आर्थिक ढाँचा एक प्रकार से वरदान साबित हुआ। बड़े पैमाने पर मजदूर या सर्वहारा न होने के कारण वर्ग संघर्ष और उससे उत्पन्न घृणा वैमनस्य और हिंसा की प्रवृत्तियाँ आर्थिक असमानता और अन्याय इस देश में अपेक्षाकृत कम पनप सके। वस्तुतः पूरे देश की आर्थिक प्रवृत्तियाँ कुछ इस ओर थीं कि वहाँ उस ठेठ पूँजीवादी व्यवस्था का विकास नहीं हो पाया जो अमरीका हालैंड और अन्य औपनिवेशिक देशों में हुआ। स्विट्जरलैंड के अन्य दो महत्वपूर्ण उद्योग हैं डाक टिकट और पर्यटन। एक का सम्बन्ध पूर्ण रूप से सरकारी विभाग से है और दूसरा उद्योग इस प्रकार का है कि उसमें पूँजी के प्रसार एकाधिकार या अत्यधिक मुनाफाखोरी और शोषण की सम्भावना बहुत कम है। तिस पर इस उद्योग पर भी सरकारी निन्यत्रण रहता है।

अर्थात् प्रारम्भ से ही इस देश में ऐसी परिस्थितियाँ रहीं जिन्होंने वहाँ आधुनिक युग में स्वाभाविक रूप से राष्ट्रीय धन का अधिक से अधिक समान वितरण करने में सरकार और औद्योगिक संस्थानों को मदद दी। दरअसल जिन आदिम परिस्थितियों ने आदिम मानव समाज को साम्यवादी बनने पर विवश किया था आधुनिक युग में वैसी ही आधुनिक परिस्थितियों ने स्विट्जरलैंड में भी ऐसी ही प्रवृत्तियों की रक्षा की। इस दृष्टि से समस्त पाश्चात्य जगत में यह देश सबसे निराला है। इस आर्थिक पहलू का मिलन हुआ स्विट्जरलैंड की प्राचीन लोकतान्त्रिक परम्पराओं के साथ। अतः पूँजीवाद और हड़तालों के इस युग में भी यह नन्हा प्यारा देश अनेक राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक बीमारियों से दूर रहते हुए धीरे-धीरे उत्तरोत्तर उन्नति करता गया और आज दुनिया में सबसे ऊँचे जीवन स्तर वाले देशों में से एक है।

शासन व्यवस्था लोकतान्त्रिक परम्पराओं और औद्योगिक (आर्थिक) ढांचे के इस निराले मेल से जो सबसे बड़ा लाभ हुआ वह यह कि अगले वर्षों में योरोप में बढ़ती हुई समाजवादी धाराओं को स्विट्जरलैंड ने बड़ी आसानी से और जल्दी पकड़ लिया। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध से ही योरोप में समाजवादी लोकतन्त्र की हवा बहने लगी। जर्मनी में सामाजिक लोकतन्त्र के समर्थकों का संगठित प्रभाव शुरू हुआ और जर्मन सोशल डैमोक्रेटिक पार्टी की स्थापना हुई। इससे प्रेरित होकर इसके साथ ही और इसी की रूपरेखा पर आधारित योरोप के अन्य देशों में भी मार्क्सवादी पार्टियाँ—अर्थात् सोशल डैमोक्रैटिक बनने लगीं। पश्चिम में यह एक नये राजनीतिक आन्दोलन का सूत्रपात था। स्विटजरलैंड ने भी उसमें भाग लिया। सन् १८७० में सोशल डैमोक्रैटिक पार्टी की स्थापना हुई जो आज देश की सबसे बड़ी राजनीतिक संस्था है। वर्तमान स्विस सरकार के मिश्रित मन्त्रिमण्डल में भी यह सबसे बड़ी पार्टी है। इसके अलावा ईसाई समाजवादी पार्टी भी केन्द्रीय विधानसभा और मन्त्रिमण्डल में प्रभावशाली दल है। धार्मिक प्रकृति के होते हुए भी यह पार्टी लोकतन्त्रात्मक समाजवाद पर विश्वास करती है। अतएव मतभेदों के बावजूद ये दोनों पार्टियाँ फिलहाल एक साथ अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार अपने देश को लोकतंत्रात्मक समाजवाद की दिशा में ले जाने की कोशिश कर रही हैं।

स्विट्जरलैंड में उद्योग उत्पादन और उत्पादन के साधनों के समाजीकरण या राष्ट्रीयकरण का प्रारम्भ १८९८ में स्विस रेलवे के साथ हुआ। सन् १८४७ में जब पहली रेल लाइन बनाने की योजना बनी तो उसके हथियाने में निजी व्यापारी लोग सफल हो गये। उसके बाद वर्षों तक रेलवे के स्वामित्व पर समाजवादियों और प्राइवेट उद्योगपतियों में विवाद चलता रहा। ५० वर्ष बाद जाकर आखिरकार पहली रेल लाइन का स्वामित्व सरकारी क्षेत्र में आया। तब से राष्ट्रीय व्यापार और उद्योग पर सरकार का नियन्त्रण बढ़ता ही गया। इसमें शोषक वर्ग को मुनाफाखोरी की बेलाग छूट नहीं मिली। दूसरी ओर औद्योगिक और कृषि सहकारिता बाजार नियन्त्रण अतिरिक्त आयकर परिवार भत्ता आदि उपायों के द्वारा भी मेहनतकश लोगों की आय को बढ़ाने और खर्च को घटाने का एवं धनी लोगों की आय को नियन्त्रण में रखने का भरसक प्रयत्न किया जाता रहा है। पश्चिम के ८ देशों में स्विट्जरलैंड भी एक ऐसा देश है जहाँ परिवार भत्ते की योजना, वृद्ध और अवकाश प्राप्त लोगों के लिए आवासगृह, स्वास्थ्य, बीमा, बेरोजगारी में सरकारी आर्थिक मदद छुट्टी का विशेष भत्ता इत्यादि सामाजिक सुरक्षा (Social security) योजनाएँ पूर्ण और व्यापक सफलता के साथ चल रही हैं।

स्विट्जरलैंड में समाजवादी विकास की प्रक्रिया बहुत कुछ स्वतः और स्वाभाविक रूप से चलती रही है और भावी परिस्थितियों में भी चलेगी। सार्वजनिक खुशहाली न्यूनतम आर्थिक विषमता और वितरण के सामूहिक तरीकों का व्यवहार उच्च जीवन-स्तर और राजनीतिक एवं सामाजिक स्वतन्त्रताओं को देखकर लगता है कि इस देश में राष्ट्रीयकरण, समाजीकरण और सहकारिता का काम बड़े पैमाने पर चला होगा। बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनी होंगीं, कानून पास हुए होंगे। वर्गों के बीच संघर्ष हुए होंगे। मगर बातें इससे भी हल्की रहीं। स्विस देश की जनता और प्रकृति के अनुरूप यहाँ समाजवादी प्रक्रियाएँ स्वाभाविक अग्रसर हुईं। लोकतान्त्रिक व्यवस्था थी ही। आर्थिक परिस्थितियों भौतिक एवं भौगोलिक अवस्थाओं ने इसके और भी प्रभावशाली प्रसारण में मदद की। बड़े-बड़े देश जहाँ औद्योगिक केन्द्र हैं, निजी पूँजी है, पूँजीपति हैं, एकाधिकार हैं और है एक ह्रासोन्मुख शोषक वर्ग, यह शिकायत करते सुने जाते हैं कि समाजवाद लाने के लिए उत्पादन के साधनों

का जो समाजीकरण होना चाहिए। उसके सबसे बड़े बाधक हैं हमारी पुरानी परम्पराएँ, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक तीनों, जिन पर सर्वहारा वर्ग के दुश्मनों ने वैयक्तिक स्वतन्त्रता और राष्ट्रीय संस्कृति की मुहर लगा दी है। इन देशों के लिए स्विट्जरलैंड एक ज्वलन्त उदाहरण है जहाँ के नागरिक समाजवादी अर्थव्यवस्था के इतने निकट होते हुए भी किसी भी देश के नागरिकों से कम स्वतन्त्र, कम राष्ट्रवादी, कम संगठित और अनुशासित नहीं हैं। फर्क है तो यही कि जहाँ स्विट्जरलैंड में प्रकृति और भूगोल ने सरकार और जनता का साथ दिया वहाँ अन्य बड़े और धनी देशों में स्वयं मनुष्य ने मनुष्य का साथ नहीं दिया। समाजवादी शक्तियों को हराने वाले एक ओर मनुष्य हैं तो दूसरी ओर पहाड़ और बर्फ। यही स्विट्जरलैंड की सबसे बड़ी चुनौती दुनिया के लिए है, वस्तुतः समाजवाद के लिए है। ●

चैकोस्लोवाकिया की गलियों में

□ □ □

उस दिन चैकोस्लोवाकिया की यात्राकर यहाँ लौटा तो आपका पत्र मिला। 'आरोग्य मन्दिर' के नये भवन का संवाद तो इधर के सवादों में सबसे उज्ज्वल मानता हूँ। आश्चर्य नहीं देश लौटने पर घर जाने के पहले गोरखपुर चला जाऊँ। 'आरोग्य' में प्रकाशित विवरण से लगता है आपने कोई कसर बाकी नहीं रखी। सचमुच हमारे देश में ऐसे सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक प्राकृतिक चिकित्सा-केंद्र की बहुत पहले से आवश्यकता थी, सो अब पूरी हुई।

इस ग्रीष्मकाल में अधिक पर्यटन नहीं कर सका। पहले तो इसलिए कि अब बचा ही कौन देश है। दूसरे, कुछ सभा-सम्मेलनों का काम ले रखा है। अपना अध्ययन कार्य है, सो अलग। फिर भी एक मित्र विशेष के प्रेमाग्रह से चैकोस्लोवाकिया जाने का निर्णय कर डाला। अब लौटकर यहाँ दूर से उस देश पर मनन करता हूँ तो लगता है वहाँ न जाकर बड़ी भूल कर रहा था। किसी अन्य देश ने पहले मुझे इतना प्रभावित नहीं किया था। भूमि और उस पर बिखरी प्रकृति सुन्दर हैं, उनसे भी आकर्षक वहाँ के निवासी हैं। शरीर जितना कर्मठ स्वभाव उतना ही सरल। बात-बात पर हँस पड़ते हैं। बातचीत हो या न हो होठ हँसने को आतुर रहते हैं। तो भला ऐसे लोगों से दोस्ती हुए बिना रहे कैसे ! किसी दूकान पर पूछता हूँ—"अँग्रेजी जानते हो ?" "नहीं" "जर्मन ?" "नहीं।" खिलखिलाते हुए मुँह पर आप "फिर हम तुम्हें छोड़ेंगी नहीं" का भाव देख सकते हैं। आँखों, अंगुलियों आदि के संकेत से या किसी अन्य ग्राहक की मदद से आपको समझे बिना नहीं जाने देंगी। जगत् प्रसिद्ध कार्लोवीवारी में इस प्रथम अनुभव का ऐसा चस्का लगा कि प्राग (चेक भाषा में इसे प्राहा कहते हैं जो अत्यन्त मधुर सुनाई देता है।) जैसे बड़े-बड़े शहर में जब तमाम जर्मन और अँग्रेजी सुनाई देने लगी तो दुःख हुआ। सौदा

खरीदने का वह मजा जाता रहा। निराशा महसूस होने लगी, हाय ! यहाँ भी जीभ हिलाने वाला या हिलाने वाली ही मिली। मुसकराती आँखें, और नचाती अंगुलियों का मधुकरी प्रभाव दुर्लभ हो गया। यह भी क्या दुनिया है जहाँ लोग केवल भाषाओं से ही बातचीत करते हैं। क्या व्याकरण, शब्दों और निर्धारित स्वरों से ही अभिव्यक्ति सम्पन्न होती है ?

भौगोलिक दृष्टि से चैकोस्लोवाकिया योरोप के मध्य में स्थित होने पर भी जैसा राजनीति ने भी घोषित कर दिया है, वह योरोप का पूर्वी भाग है। इस पूर्वीयता का भाव मुझे सर्वत्र महसूस हुआ। लोगों के शान्त चेहरों, संयत वार्तालापों, धीमी आवाज, मुस्कराते होंठों, उत्सुक आँखों सबसे पूर्वी सभ्यता अथवा उस जैसी सभ्यता में विकसित मानव का-सा आभास मिलता है। अन्य साम्यवादी देशों की भाँति इस देश के बारे में भी तमाम इधर-उधर की सुनता रहा था। लोगों को आजादी नहीं, गरीबी अब भी हावी है। लोग आन्तरिक त्रास से ग्रस्त हैं। इत्यादि-इत्यादि। लेकिन कागज पर लिखे अक्षरों और वहाँ के वास्तविक जीवन में काफी भेद दिखाई दिया। लोग प्रसन्नचित्त, सुखी, सम्पन्न, कर्मरत और स्नेहिल। जीवन में सन्तुलन और प्रयोजनीयता। पश्चिमी योरोप के देशों में यात्री को अनायास यह आभास मिलता है कि थोड़े नहीं तमाम लोग केवल जीते रहने के लिए जी रहे हैं। पैदा हुए हैं तो जीओ। चाहे पेरिस की पैट्रो में भीख माँगकर या इताल्वी रिवीश पर लाखों रुपयों से बने बंगले में ऐश फरमाकर। अपने-अपने हठके साथ मनमानी दिशा की ओर चलते जाने को यहाँ आजादी की संज्ञा मिल गयी है। जीवन और विचार में कहीं समानता नहीं, एकता नहीं, समझौता नहीं। तब भला एकत्रित विचार और सर्व कल्याण की प्रेरणा से प्रदीप्त मन में प्रयोजन का भाव जगे कैसे ! पोलैंड, रूस, योगोस्लाविया और अब चैकोस्लोवाकिया की सड़कों पर टहलते हुए, रेस्टोरां में खाते हुए या गाड़ी में सफर करते हुए बरबस यह बातें सोचा किया ? क्या ये चटक-मटक से दूर दिखने वाले श्रमजीवी वर्ग के लोग कुछ निर्माण नहीं कर रहे हैं ? निर्माण जिसमें बहुजन ही नहीं सर्वजनहिताय का लक्ष्य निहित है ? लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले व्यक्ति की आजादी क्या है ? उसकी आजादी क्या उस लक्ष्य विशेष से निरपेक्ष रह सकती है ? इसका उत्तर इन देशों के जीवन को निकट से देखने पर मिल जाता है। अल्डुअस हक्सले ने

जिसे 'फ्रीडम फोबिया' (मुक्त ज्वर) कहा है उसका अभिधार्थ चाहे सबको मालूम हो किन्तु व्यंजनार्थ का निर्लिप्त बोध तथाकथित 'लोहे की दीवार' के दोनों ओर अवलोकन करने से ही होगा। अन्यथा उच्छृंखलता तथा नैतिक या आर्थिक अराजकता को हम मानवीय गुण माने बैठे रहेंगे।

आप यदि दूसरी बार यूरोप आयें तो चाहे एक ही सही पूर्वी यूरोप के देशों को अवश्य देखते जायें। भारत और नेहरू के प्रति चैक लोगों में इतनी श्रद्धा है कि स्वयं भारतीय होने का सन्देह होने लगता है। एक दिन मोरा-विया (चैकोस्लोवाकिया गणराज्य के तीन प्रदेशों में से एक—अन्य दो हैं बोहेमिया और स्लोवाकिया) के एक गाँव की पाठशाला देखने गया तो जितने प्रश्न विद्यालय विषयक मैंने किये उससे अधिक भारत और नेहरू के बारे में उन लोगों ने मुझ से किये। सबकी धारणा है कि किसी दिन भारत एक आदर्श समाजवादी देश होगा। पश्चिम में यह सुनकर कि नेहरू व्यक्तिगत रूप से प्रगतिशील समाजवादी हैं और लेनिन को विश्व की मात्र महान् विभूतियों में मानते हैं लोगों को कुछ हैरत होती है। कुछ तो यह कह बैठते हैं कि तटस्थ नीति की आड़ में भारत सोवियत गुट की ओर झुक रहा है। किन्तु पोलैंड और चैकोस्लोवाकिया में लोगों की धारणा इसके विपरीत है। किसी ने यह प्रश्न नहीं किया कि नेहरू सरकार तटस्थ क्यों है। उनके प्रश्न प्राय: इस बारे में होते हैं कि नेहरू सरकार की गृहनीति क्या है? क्या भारत में समाजीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हो गयी है? धर्म और भगवान् के नाम पर लोगों का शोषण क्या अब भी जारी है? आप समझ ही सकते हैं यह अवसर मेरी लेक्चरबाजी का होता है। घण्टे दो घण्टे बाद उन्हें उतना यकीन जरूर करा देता हूँ कि आने वाली पीढ़ियाँ भारत के आन्तरिक रूप परिवर्तन में वर्तमान पीढ़ी से अधिक योगदान देंगी जिसके लिए वे लोग हार्दिक कामना प्रकट करते हैं।

इसी मोरोविया प्रदेश में मेरे एक मित्र रहते हैं। कस्बे का नाम है गोट-वाल्डोव। पहाड़ और जंगल की गोद में बसा यह सुरम्य क्षेत्र है। प्रकृति के साथ मानव निर्मित उद्योगों के लिए भी यह नगर विख्यात है। आबादी ५७००० की ही है किन्तु जिस होटल में—होटल मोस्क्वा (होटल मास्को)—

में ठहरा था उसकी विशालता और वैभव देखकर एक क्षण के लिए न्यूयार्क का भ्रम हो उठता है, बारह मंजिलों की इमारत, लिफ्ट, सर्वत्र, फर्श मखमली दरी से ढकी हुई, हर कमरे में रेड़ियो, टेलीफोन, नहाने का आधुनिकतम प्रबन्ध, ठण्डा गरम पानी, सुन्दर फर्नीचर और पर्दे, करीने से सजा हुआ, जगह-जगह फूल। अधिक नहीं पन्द्रह वर्ष पहले सारे टीकमगढ़ शहर में केवल महाराज वीरसिंह की कोठी में ही ऐसी सम्पन्नता के दर्शन होते थे। जबकि गोटवाल्डोव के ऐसे होटलों में पुलिस के सर्वोच्च अधिकारी और सड़क कूटने वाले मजदूर अगल-बगल एक साथ रहते हैं, एक साथ खाते हैं, एक साथ नाचते हैं। अधिक नहीं दस ही वर्ष पहले इस कस्बे का दृश्य टीकमगढ़ से बहुत भिन्न नहीं था। चैक लोगों में एक मजाक प्रचलित है कि उन दिनों केवल भगवान् के (जिस पर उनका विश्वास नहीं है) घर ही कलेक्टर और किसान साथ रहते थे। अन्यथा इस लोक में तो वे अलग ही रहा करते थे। आर्थिक और सामाजिक समानता ही नहीं चैकोस्लोवाकिया का जीवन-स्तर सब साम्यवादी देशों के जीवन स्तर से ऊँचा है, संघ के स्तर से भी।

आपने कदाचित् चैकोस्लोवाकिया के स्पाओं का नाम सुना हो। यहाँ के पहाड़ों से एक प्रकार के सोते फूटे हैं जिनका पानी खारा रोगनिवारक होता है। कुछ सोते गरम जल के भी हैं। कहते हैं इस पानी में विशेषकर पेट के रोगों को दूर करने के अद्‌भुत तत्व होते हैं। अँग्रेजी में 'मिनरलवाटर' कहते अवश्य हैं, किन्तु यह उससे कुछ अधिक हैं। जल पीने के अतिरिक्त बिजली, मालिश, नहान, मिट्टी आदि के भी उपचार रोगी को दिये जाते हैं। सरकार की ओर से इन सोतों के आसपास मुफ्त चिकित्सा के सैनोटोरियम बने हैं। प्रत्येक स्पा (अंग्रेजी में स्पा ही है) वस्तुतः अपने आप में एक यात्रा-स्थल बन गया है। वहाँ बस्ती बस गयी है। टूरिस्ट आने लगे हैं। अतएव रहने, खाने, मनोरंजन वगैरह की सुविधाएँ सुन्दर और प्रचुर हैं। इनमें से सबसे मशहूर कार्लोवीवारी है। देश-विदेश से सैकड़ों चिकित्सार्थी यहाँ आते हैं। गर्मियों में आधी आबादी तो रोगियों की हो जाती हैं। जगह-जगह छिद्रों से बहते पानी के चारों ओर भीड़ लगी रहती है। एक विशेष प्रकार की तुतुहीमें पानी लीजिए और टहलते हुए पीते जाइये। जैसे लोग टहलते हुए शौक से सिगरेट या पान का सेवन करते हैं वैसे ही यहाँ मुँह में तुतुही लगाये रोगी गरम या ठण्डा खारा पानी

पीते रहते हैं। पेरिस की शौकीन महिलाएँ भी अपनी लिपस्टिक की आभा भूलकर समाजवादी समाज की इस बेफिक्री का मजा लेने लगती हैं। जर्मनी का महाकवि गेटे, संगीतकार बोथोवन, दार्शनिक शिलर, इंग्लैंड का राजा चार्ल्स चतुर्थ, रूस का जार पीटर महान् आदि अन्यान्य व्यक्ति यहाँ चिकित्सा करा गये हैं। ऊँची पुरानी इमारतें जो किस समय राजा-रईसों के वैभव से भरपूर थीं आज हर व्यक्ति के लिए उपलब्ध हैं। उन्हें होटल बना दिया गया है जो बीमार किसान मजदूर को आश्रय देती हैं। यहाँ के अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह की चर्चा तो हमारे देश में भी काफी होती है। अतएव आश्चर्य नहीं 'मैं भारतीय हूँ' जानते ही लोग राजकपूर, नरगिस और देवानन्द का संवाद पूछने लगते हैं। 'बूट पालिस' नामक चित्र से यहाँ के लोग प्रभावित हुए थे। आज भी उस गरीब बालिका और बालक का स्मरण कर एक युवक ने, जो हमारा सामान लेकर हमें स्टेशन से होटल ले आया था, मुझसे पूछा—"अब तो वैसी हालत तुम्हारे देश में नहीं होगी ?" अपने उत्तर से मैंने उसे संतुष्ट तो क्या किया शायद भ्रम में ही डाल दिया। समाजवादी समाज की नयी पीढ़ी को स्पष्ट और सीधा सत्य चाहिये। दुनिया भर की बौद्धिक ऊबड़-खाबड़ में पड़कर वह उसे गंवाना नहीं चाहती। यह तो पूँजीवादी देशों के आजाद तबीयत के लोगों की विलासिता है। कार्लोवीवारी से प्राग जा रहा था। रेल-गाड़ी के उस केबिन में केवल एक दम्पति और मैं ही था। शाम हुई भोजन का समय हुआ। मेरे पास आप्रीकॉट के अतिरिक्त कुछ नहीं था। सो कोने में दुबका हुआ-सा खिड़की से बाहर झाँकते हुए धीरे-धीरे खा रहा था। लेकिन यह कैसे हो सकता है! महिला ने दो नहीं तीन व्यक्तियों के लिए सैंडविच बनाने शुरू किये। मैंने कनखियों से देखा तो और भी घबरा गया। उनके पास रोटी और माँस के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। अभी तक हम में टूटी-फूटी जर्मन के द्वारा केवल औपचारिक वार्ता ही (सुन्दर दृश्य है न ? हाँ ! गर्मी है न ? हां ! इत्यादि) हुई थी। सोचा अब शाकाहार पर भाषण देना पड़ा तो किस भाषा का सहारा लूँगा ? अन्त में वह क्षण आ ही गया। मैं बड़ी तन्मयता से पहाड़ों के उस पार क्षितिज पर कुछ खोजने का अभिनय कर रहा था। महिला ने, जैसे यह तो कृपा नहीं, घर की बात है, कागजी तौलिये पर भोजन बिना कुछ कहे मेरे सामने रख दिया। पतिदेव ने मेरी ओर हँसकर

देखते हुए चर्वण शुरू कर दिया। महिला ने भी वह बड़ा लुक्मा लिया कि लगा खाते समय उन्हें बात करना नहीं भाता। मुझसे दुगुने साइज की थीं भी वे। जरा अनुमान कीजिए कैसे मैं इस प्रेम-संकट से मुक्त हुआ? रक्षा की कार्लोवीवारी ने। उधर देवीजी ने कौर निगला (यह प्रयोग बार-बार न आता) इधर मैंने किसी प्रकार थूक निगलकर कहा—"बहुत-बहुत धन्यवाद। कार्लोवीवारी से चिकित्सा कराकर आ रहा हूँ। डाक्टर ने भरसक हल्के पेट यात्रा करने की सलाह दी है। पेट का रोग आप जानती ही हैं, कुछ झक्की होता है। रेलगाड़ी की हचकसे वह लौट आ सकता है। प्राग पहुँचकर इन सैंडविचों को सुभीते से खाऊँगा।" यह तो हिन्दी में लिख गया हूँ। वहाँ तो इतना कहते वर्षों लग गये होंगे। जीभ के साथ हाथ, आँख, पेट और कान चलाने पड़े सो अलग। उन्हें कुछ कहने का अवसर न देने हेतु तपाक से उठा और बैग खोल बड़ी कोमलता और इसरार से अश्व मांस से सुसज्जित उन सैंडविचों को दाल भरी पूड़ी की तरह कलेवे के लिए फैला-फैलाकर रखने लगा। डर था कहीं रोग, चिकित्सालय, डाक्टर, कितने दिन रहे, आदि के बारे में न पूछने लगें। कौन जाने ये खुद वहीं से आ रहे हों। झट से बैग बन्दकर हाथ धोने के बहाने लपकता हुआ शौचालय की ओर चला गया। सारी गाड़ी घूमकर खूब देर करके लौटा तो महिला वहाँ नहीं थी और पतिदेव झपकी ले रहे थे। जहाँ पहले सैंडविचें रखी थीं वहाँ अब दो बड़े-बड़े आप्रीकॉट रखे थे। सोच ही रहा था कि महिला आ पहुँची। स्नेह से बोली—"कहाँ थे? ये तुम्हारे लिए ही हैं।" भूख तो लगी ही थी। प्राग का अभी दो घण्टे का रास्ता था। सो बात बढ़ाने से फायदा क्या! अब अँधेरा हो चला था। अपनी कपटता और उस नेक दम्पति के सहज प्रेम के अनमेल मिलन से उपजी आत्म-ग्लानि को चुपचाप पीता हुआ आप्रीकॉट खाने लगा। क्षितिज के अन्धकार में खोजने को अब था भी क्या? इस घटना के द्वारा मैं यही कह रहा था कि इस समाज में आन्तरिक सत्य बाह्य सत्य बन गया है जो सहज है, ग्राह्य है, दृश्य है। एक व्यक्ति अकेला बैठा है। भोजन का समय है। उसे भोजन चाहिए। हमारे पास भोजन है। तो इसमें भला पूछ-ताछ तकल्लुफ संकोच या अनुग्रह की क्या बात! लो खाओ। सोचो मत, किसने दिया और क्यों दिया? चैकोस्लोवाकिया में केवल एक मुसीबत जरूर है जिसने मुझे

बहुत तंग किया। मांस न खाने वाले को काफी भुगतना पड़ता है, लोग समझ ही नहीं पाते कि बिना मांस खाये भला कोई स्वस्थ और मजबूत (समाजवाद इसके बिना खुदावाद बन जायेगा) रहा जा सकता है। वैसे लोग सब्जी, सलाद और फल भी खाते हैं। पर मांस बिना नहीं। प्राकृतिक चिकित्सा के विषय में जानकारी नहीं प्राप्त कर सका। किन्तु जहाँ इतने स्पाओं में मिट्टी पानी की चिकित्सा दी जाती है वहाँ अपने ढंग की प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति होगी ही। हो सकता है उसमें नैतिक दृष्टि से मांस को त्याज्य न समझा जाता हो। तथापि यह चैकोस्लोवाकिया की प्रथम यात्रा थी। देर-सबेर वहाँ फिर जाने का संकल्प है। तब इन बातों की सुचारु रूप से खोज करूँगा। ●

विलक्षणता जिसका नाम वेनिस है—१

□ □ □

आज से लगभग चार हजार बरस पहले आड्रियाटिक सागर के उत्तरी किनारे पर एक दलदली टापू पर कुछ आदिवासी कहीं से आ बसे। उस परिश्रमी जाति ने दलदल, काई और ज्वार की उपेक्षा कर सर्वत्र प्रतिकूल परिस्थितियों में भी टापू को एक कस्बे का रूप दे दिया। कीचड़ में बल्लियाँ गाड़कर झोंपड़ियाँ खड़ी कीं। जगह-जगह नालियाँ खोदकर पोखरों का पानी समुद्र में निकाल दिया और सूखी जमीन पर बल्लियों और पौले खंभों के सहारे ठोस पक्के मकान भी बनाने लगे। समुद्री मछलियाँ खाते-खाते जब वे ऊब गये तो उनकी नावें खाड़ी लाँघकर दूर नीले क्षितिज तक जाने को मचल उठीं। उस समय रोमन साम्राज्य का प्रखर सूर्य दक्षिणी योरोप पर चमक रहा था। आड्रियाटिक सागर के उत्तरी किनारों से आने वाली नौकाओं को जब रोमन नाविकों ने देखा तो दुनियाँ को पहली बार विदित हुआ कि एक टापू पर 'एनेती' नामक जाति के लगभग पाँच सौ लोग समुद्र और दलदल से लड़ते हुए रह रहे हैं, जिसे वे आगे चलकर 'वेनेती' अर्थात् आज का "वेनेसिया' या 'वेनेत्सिया' (अंग्रेजी में वेनिस) कहने लगे। हमारी ट्रेन शाम के आठ बजे जब वेनिस के नये और अत्यन्त आधुनिक स्टेशन में प्रविष्ट हुई तो वहाँ और चारों ओर नगर की जगमगाहट देखकर मैंने भी उसके पूर्वजों और निर्माताओं को मन ही मन बधाई दी। सूटकेस और चार दिन की यात्रा का कार्यक्रम लिये मानों मैं वेनिस के चार हजार वर्ष की यात्रा का इतिहास पढ़ने आ पहुँचा था। स्टेशन के बाहर आया। आँख भरकर एक बार पूरे शहर को देखा और एक गहरा निश्वास छोड़कर सूटकेस उठा लिया। सामने ही 'कनाल ग्रांदा' (बड़ी नहर) में एक विशाल नाव में यात्री उतरते जा रहे थे। मैं भी पूँछकर उतर पड़ा। नाव उसी होटल की ओर जा रही थी जहाँ का पता मेरे पास था। वेनिस में प्रवेश करते ही पहला अनुभव नाव और नहर का ही हुआ। वस्तुतः वेनिस है ही नाव और नहर का शहर।

वेनिस का निर्माण लगभग एक सौ टापुओं पर हुआ है। टापुओं का धरातलीय सम्बन्ध उस विशाल मैदान से है जिसे 'वेनेती' कहा जाता है और जिसे डेल्टा के रूप में एक नहीं ग्यारह नदियाँ सदियों से आल्प्स पर्वत की घाटियों से रेत, मिट्टी और पानी लाकर तैयार करती रहीं। एक सौ टापुओं को जोड़ने का काम करीब चार सौ पुल करते हैं, और पूरे शहर के टापुओं को पुलों के अतिरिक्त नहरों ने भी जाल बुनकर जोड़ा है जिनकी संख्या आठ-दस नहीं पूरे १५० है। इनमें सर्वप्रमुख और सबसे बड़ी है 'कनाल ग्रांदा' जो अंग्रेजी के एस (S) के आकार की होकर पूरे शहर को दो फांकों में लगभग बराबर से बाँटती है। वेनिस की अधिकांश नहरें किसी जमाने में छोटी-बड़ी नदियों का तला थीं। डेल्टा निर्माण और समुद्री पानी के नीचे उतर जाने से हजारों साल पहले उन नदियों का पानी भी उतर गया और धीरे-धीरे वे सूक्ष्म होती गयीं। आज उनकी ठठरी के रूप में ये नहरें ही रह गयी हैं जो वेनिस की जीवन-शिराएँ बन गयी हैं। बिना पूर्व योजना और परिकल्पना के वेनिस की बस्ती बनती और बढ़ती गयी। जल और थल, थल और जल पर रैन-बसेरा बनाते-बनाते 'वेनिती' ('एनेती' का परिवर्तित रूप) जाति के उत्तराधिकारियों ने संसार का एक प्राचीनतम नगर—जो राज-महलों, कला-संग्रहालयों के अलावा व्यवसाय और जहाजरानी का भी अन्यतम केन्द्र रहा है—बना डाला। जहाँ थोड़ी सी जगह मिली वहीं सोने-खाने का संरजाम जोड़ लिया। फलस्वरूप वेनिस में सड़कों के बदले घरों के अगल-बगल के नागिन सी बल खाती हुई २३२७ गलियाँ बन गयीं। कहीं-कहीं ये गलियाँ इतनी सकरी हैं कि दो व्यक्ति एक साथ नहीं चल सकते। बनारस, कानपुर और कलकत्ते की गलियों की बात हम अक्सर सुनते रहे हैं। पर वेनिस की ये गलियाँ देखकर मैं अवाक् रह गया। इतनी सकरी मोड़दार, लम्बी और एक दूसरे से अनन्त तक जुड़ी हुई कि पूरा शहर एक भूल-भुलैया सा जान पड़ा जिनमें कोई अजनबी होशहवाश ठीक करके भी प्रवेश करे तो एक बार घबड़ा उठे। वेनिस में एक आम कहावत है कि वेनिस में आने का सर्वोत्तम मजा तब है जब एक बार उसकी गलियों में खो जाओ और बिना किसी से पूछे निकलने का प्रयत्न करो। दरअसल किसी ने रास्ता बता भी दिया तो उसको याद रखने के लिए एक नक्शा ही बनाना पड़ेगा। यहाँ से सीधे जाकर दायें, फिर बायें और तिरछे, उसके बाद थोड़ा खुला स्थान, फिर

दाहिने तरफ की तीसरी गली से दो मोड़ पार कर बायीं दिशा में सौ कदम जाइये—इत्यादि-इत्यादि सुनकर किसी को स्कूल के दिनों में चक्रवृद्धि ब्याज का सवाल जैसा प्रतीत होना स्वाभाविक ही है। स्वयं वेनिसवासी तक कभी-कभी इन २३२७ गलियों में खो जाते हैं और बाध्य होकर उस मुहल्ले में किसी से हँसकर कहते हैं—'भई, मैं हूँ तो यहीं का। पर रास्ता खो बैठा हूँ।' जवाब मिलता है—'कोई बात नहीं। कभी मैं भी आपके मुहल्ले में पहुँचूँगा तो हिसाब बराबर हो जायेगा।' अर्थात् वेनिस में खो जाना किसी के लिए कोई बड़ी बात नहीं है। उल्टे अच्छा-खासा मनोरंजन हो जाता है। हाँ, यदि किसी के पास समय सीमित हो तो साथ में शहर का एक अच्छा नक्शा लेकर ही होटल के बाहर कदम रखना चाहिए।

छोटी गलियों का प्रभुत्व होने का यह मतलब नहीं कि वेनिस में यातायात की समस्या बहुत विकट है। दरअसल वहाँ यातायात की कोई कठिनाई ही नहीं है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि चौड़ी सड़कें न होने से कारें, बसें या अन्य बड़े वाहन सब जगह जाते ही नहीं। सामान और लोगों को इधर-उधर ले जाने का काम सड़कों के बदले नहरें करती हैं जिनके किनारों पर सर्वत्र साफ सुन्दर और पक्के घाट बने हैं। उन घाटों पर नावों और यात्रियों के लिए सभी आवश्यक सुविधाएँ हैं जो किसी रेलवे स्टेशन या बस स्टेण्ड से कम नहीं हैं। प्रत्येक प्रमुख गली, चौक, बाजार या दर्शनीय स्थान के निकटतम घाट पर ये नाव-स्टेशन बने हैं। समय पर नावें पहुँचती और छूटती रहती हैं। सब कुछ वैसा ही जैसा किसी बड़े शहर की बसों या मेट्रो का संचालन होता है। नावों से उतर कर लोग हँसी-खुशी गलियों में पैदल चलकर अपना काम करते हैं। दूरियाँ लम्बी नहीं हैं। गलियाँ साफ और पक्की हैं, गर्मी में ठंडी रहती हैं और बरसात में ढलान और सुन्दर नाली की व्यवस्था होने के कारण पानी तत्काल बह जाता है। कहीं विशेष चढ़ाई भी नहीं है। अतएव लोग आसानी से इन गलियों में पैदल आते-जाते हैं। जहाँ विशेष आवश्यकता पड़ती है वहाँ छोटी गाड़ियाँ पुलिस की विशेष अनुमति से जाती है या गलियों में बनी दूकानों और मकानों में माल पहुँचाने का काम कुली करते हैं। भाग्यवश भारत की तरह इटली में भी कुलियों का अभाव नहीं है—खास तौर से वेनिस जैसे जरूरतमन्द शहर में। वेनिस पहुँचकर मुझे इसका स्पष्ट आभास मिल गया

कि स्कूटर और फीयट जैसी छोटी कार का आविष्कार इटली में ही क्यों हुआ। लेकिन यह तो मात्र एक खोज पर विचार कर रहा था। पश्चिम की प्राचीनतम सभ्यता, इतिहास, कला, साहित्य, भाषा और राजतन्त्र का जनक और पोषक देश इटली के उस नगर में मैं पहुँचा था जिसकी सृष्टि १०० टापुओं, ११ नदियों, ४०० पुलों, १५० नहरों और २३२७ गलियों के अद्भुत संविधान से हुई थी।

आँख खुली तो चौंक-सा उठा। ठीक सामने खिड़की से दूर नहर से एक नाव गुजर रही थी। लाल, काले, बैंगनी, पीले, सुनहरे रंगों से रंगी जलपरी की तरह पानी पर मानो ठहरते-ठहरते फिसल पड़ती हो, पहली बार भूमिसारिका में निकली लाजवंती की तरह बढ़ती हो, रुकती हो और फिर प्रेमातुर होकर बढ़ जाती हो। वेनिस में ऐसी नावों की भरमार है। मध्ययुगीन शौकीनों की पसंद के अनुसार होने के कारण आज भी इन्हें उसी मध्ययुगीन नाम 'गौंडोला' से पुकारा जाता है। आवश्यकतानुसार इनमें सजावट घटा-बढ़ा के टूरिस्टों को घुमाने के अतिरिक्त अन्य कामों में भी इन्हें लाया जाता है। ये नावें तिकौनी, दोनों सिरों पर खास तौर से उठी हुईं और सुडौल होती हैं। दूर से ऐसी दिखती हैं मानो कोई राजहंस अभिमान से अपनी ग्रीवा उठाये जल प्रदेश का निरीक्षण करने निकला हो। कुछ देर तक बिस्तर पर अधलेटा-सा इस भव्य प्रातःकालीन दृश्य का रसपान करता रहा। नौकाओं का सिलसिला बन्द हुआ तो बिस्तर से उछलकर बाहर आया और बाहर निकलने को आतुर हो उठा। दरवाजे पर दरबान ने 'गुड मार्निंग' कह कर पूछा कि मैंने शहर में घुसने से पहले नक्शा ले लिया है या नहीं। यह काम मैंने रात को ही कर लिया था।

हर शहर की एक अपनी गंध होती है। दिन के प्रकाश में पहली बार वेनिस को देखा तो उस गंध की पूरी प्रतीति हो गयी। वेनिस उन शहरों में से है जिसमें कम से कम पहले दिन केवल सड़कों और गलियों में लक्ष्यहीन घूमना चाहिए। वह भी पैदल और धीरे-धीरे ताकि जहाँ कुछ रोचक और अद्भुत दिखे, रुककर जी भरके देखा जा सके, एवं एक-एक वस्तु को निकट से और बारीकी से निरखा जा सके। वेनिस सचमुच ही अपने आप में एक संग्रहालय है जिसकी प्रत्येक वस्तु की एक कहानी है। दुनियाँ में ऐसे स्थान

विरले ही हैं जिसके इतने सीमित क्षेत्र में इतनी दर्शनीय वस्तुएँ भरी पड़ी हों। जहाँ जाइये, कदम-कदम पर कोई न कोई चीज आपका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करेगी। अतएव सवेरे नौ बजे से दोपहर दो बजे तक और तीन बजे से शाम के आठ बजे तक इस स्वप्नपुरी में यहाँ-वहाँ भटकता रहा। एक बार में दस-दस गलियों का चक्कर लगाकर छोटी कोठरियों में छिपे किसी रेस्तरां में बैठकर प्रसिद्ध इताल्वी रोटी पिजा खाता और फिर आगे चल देता। पियाजा सान मारको और सान मूसे, सान स्टीफानो आदि प्राचीन गिरजे दूर से देखे। नहरों के किनारे घूमा। इताल्वियों की मस्ती और अक्खड़पन का दूर से कई बार रसास्वादन किया। कितनी ही बार तोहफे बेचने वाले, मल्लाहों और सस्ते गाइडों से अपना पिण्ड छुडाया। नहरों-नालों के ऊपर छोटे-छोटे से नीची छतों के मकानों में छोटी-छोटी खिड़कियों से आधुनिक और रूढ़िवादी इताल्वी परिवारों की झाँकी देखी। दो-एक जगह स्त्री-पुरुष की खुल्लम-खुल्ला लड़ाई देखकर मन ही मन अपने देश को याद किया। दूर खाड़ी की पल्ली तरफ जब सूर्य उतर गया तो उसकी सिलहटी छाया में शीतल बयार को मुँह पर झेलते हुए बड़े पुल पर खड़ा होकर दूर-दूर तक नावों का जल-विहार देखता रहा। पास ही किसी डोंगी पर एक उत्साही अमरीकी जब अपनी आखिरी फोटो खींचने के लिए झटके से खड़ा हुआ तो खर-स्वभाव के मल्लाह ने झिड़क दिया। लेकिन तब तक कैमरा क्लिक कर चुका था। इताल्वी हँस पड़ा। ऊपर पुल पर खड़ा मैं भी मुस्करा उठा। ये इताल्वी लोग भी कैसे होते हैं? पल में तोला, पल में माशा। नाव पर बैठने के लिए एक-एक फर्लांग आपके पीछे चिरौरी करते हुए चले जायेंगे और जब आप बैठ जायेंगे तो उनकी दीनता और विनम्रता एकदम रूप बदल देगी। शायद वाचालता, सेवाभाव, ईमानदारी, चालाकी, मसखरापन, भावुकता, उदारता या भोलापन इताल्वी चरित्र में क्या नहीं है। 'रियाल्तो पुल' पर खड़ा-खड़ा सोच रहा पुरानी संस्कृति, इतिहास, संघर्ष और निरन्तर परिवर्तन के कारण इटली कई मामलों में भारत के समान है। किसी इताल्वी से बात करते समय कभी किसी पंजाबी की तो कभी किसी बिहारी की, कभी किसी केरलवासी की तो कभी किसी मराठे की याद आ ही जाती। दूर कहीं सीटी बज उठी। इटली में योरोप के अन्य देशों के विपरीत अब भी कुछ रेलगाड़ियों में तीखी सीटियाँ ही लगी हैं—बिल्कुल भारतीय रेलों की

तरह। तब तक अंधेरा हो चुका था। गोंडोलाओं के स्थान पर अब उनका आभास मात्र दिखायी देता था। उधर से ध्यान हटा तो लगा वेनिस में भी कोई थक सकता है। होस्टल वहाँ से करीब तीन फर्लांग था। वेनिस की विख्यात रात कहीं कल की तरह मुझे सुला कर चुपचाप सरक न जाये इस आशंका से लम्बे डग भरता हुआ अपने डेरे की ओर चल दिया।

"सर, जंतिलमन, ब्यूतीफुल म्यूजिक, दान्स, बिर्रा एण्ड बेरी गूद फूद। फ्रेश फिश फ्रोम—। मैं आगे नहीं समझ सका। एक व्यक्ति अपनी टिपीकल इताल्वी अंग्रेजी में मुझे बुला रहा था। (सर, महाशय, सुन्दर संगीत, नाच, बियर और बहुत बढ़िया भोजन,········से ताज़ी मछली) दिन भर का भूखा क्या न करता। तुरन्त पूछा—

"कहाँ ? यहाँ तो कोई रेस्तराँ नहीं। मुझे कहाँ ले जाना चाहते हो ?"

"सर, हियर, दिस वे" कहकर वह अपनी स्वाभाविक चुस्ती और तेजी से गली पार कर नहर पर बने घाट की सीढ़ियाँ उतरने लगा मानो अब तो मैं उसका पालतू टैरियर हूँ। जाऊँगा कहाँ। बड़ा बुरा लगा। कुछ कहने जा ही रहा था कि एकदम ठिठक गया। गुस्सा काफूर हो गया। साँस साधे सामने का दृश्य देख रहा था। घाट के कोने में एक छोटी-सी नाव निश्चल दीवार से टिकी लगी थी। नहर के उस पार कहीं से बिजली का नीला प्रकाश पानी पर पड़ रहा था जिसकी झिलमिलाती आभा नाव पर भी रह-रह कर पड़ जाती थी। छाया और प्रकाश की इस आँख मिचौली में एक प्रेमी-युगल बैठा, एक-दूसरे की कमर में हाथ डाले, अधमुँदी आँखों से बहुत दूर शून्य में देख रहा था—विमुग्ध, आत्म-विभोर सा। विस्मृति और अनुभूति की मोहक अवस्था में डूबता उतराता। और सामने नाव के सिरे पर मल्लाह वायलिन पर किसी प्रेम-गीत का आलाप खींच रहा था। पच्चीस कदम पर ही नहर पर पड़ते प्रकाशों और प्रतिबिम्बों के झुरमुट में उलझा हुआ एक छोटा-सा रेस्तराँ था। रंगीन बल्बों, असली-नकली फूलों और हरे पेड़-पौधों के गमलों से सजाया वह ऐसा लगता था मानो जमीन पर नहीं पानी पर तैरता हुआ कोई विवाह-घर बरात की प्रतीक्षा कर रहा हो। इस रंगीनी और मोहकता के साथ नहर की पनीली गन्ध, कुछ पुरानी नावों की सड़ी काठ की सींड़ भरी गन्ध, झींगुर,

मेंढक, घों-घों आदि जल प्राणियों की रह-रह कर आवाजें। ये सब मिलकर एक ऐसे भावलोक की सृष्टि करते थे जिससे मैं अभी तक अपरिचित था। बंगाल और उड़ीसा में मछुओं की बस्ती में, केरल में धान के खेतों के बीच बने हुए गाँवों में और हालैण्ड में नहरों के किनारे तलघरों में बने क्लबों में मैं कई बार गया हूं। पर वेनिम की नहरी जिन्दगी का यह रूप सम्मोहन की साकार प्रतिमा-सा दिखायी दिया। अपनी अहमियत भूलकर मैं उस एकान्त प्रिय मिथुन को देख रहा था कि रेस्तराँ वाला मुझे अपने पीछे न पाकर लौट पड़ा। मेरी अवस्था को अनुभवी मुस्कराहट के साथ तौलता हुआ बोला—"यस सर, दिस इज अवर वेनिस। फुल आफ रोमांस, लव एन्द वेरी गुद फूद आल एराउण्ड लाइफ—औन्ली लाइफ" (जी हाँ, यह है हमारा वेनिस। रोमांस, प्रेम और बढ़िया भोजन से भरपूर। चारों ओर जिन्दगी—केवल जिन्दगी।) उसने 'गुड फूड' पर विशेष बल दिया ताकि मैं उसके रेस्तराँ को न भूल जाऊँ। उसकी चालाक व्यावसायिक बुद्धि पर हँसते हुए मैंने सोचा यह आदमी दिलचस्प है। इससे बात करके बहुत सारी बातें मालूम की जा सकती हैं। रेस्तराँ लगभग खाली था। संगीत, नृत्य अभी शुरू नहीं हुआ था। केवल भोजन की तैयारी जोरों पर थी। मेजें सजायी जा रही थीं। प्लेटों और छुरी-काँटों की आवाज चारों ओर से आ रही थी। मैंने कौने की एक मेज पर आसन जमाते हुए अपने अग्रदूत से कहा—"यहाँ इतना शान्त क्यों है? सीजन में भी यह हाल?"

"यह बात नहीं। आप जरा जल्दी आ गये। यहाँ तो ९ बजे के बाद समाँ बँधता है। हम इटली में ९ के बाद ही रात का भोजन करते हैं। तिस पर वेनिस की रात। पूरी अपनी। यहाँ आकर नार्वे-स्वीडनवाले भी अपनी ६ बजे खाना खाने की आदत बदल देते हैं।—संगीत भी तभी शुरू होगा।"

"तब तक मैं क्या करूँगा?........"

बात काटने की आदत इतालवियों की एक और विशेषता है। इतनी तेज बुद्धि के और स्फूर्तिपूर्ण होते हैं कि बात समझते ही उसका उत्तर दे देते हैं चाहे बात करने वाले ने अभी वाक्य भी पूरा न किया हो। व्यर्थ की शिष्टता में वे नहीं पड़ते।

"आप तब तक कुछ पीयें। शेरी, वेरमूथ, व्हिस्की, रम या केवल बिर्रा (बियर का इताल्वी नाम) लेंगे ?"

"मैं शराब नहीं पीता। लेकिन बियर ले लूंगा। वह भी एक शर्त पर कि तुम भी मेरे साथ बैठ कर एक गिलास लो। मुझे तुमसे कुछ बातें पूछनी हैं।"

"यह कैसे हो सकता है ?" उसने दूर खड़े अपने मैनेजर की ओर देखते हुए कहा—"मैं इस समय ड्यूटी पर हूं। ऊपर सड़क पर जाकर ग्राहकों को लाना है।"

हमारी बातचीत का अन्दाज लगाकर या शायद यह सोचकर कि भोजन का आर्डर बहुत बड़ा या विशेष होगा मैनेजर हमारी ओर ही आने लगा। उसको सुनाकर मैंने फिर कहा—"अभी तो सैलानी लोग सड़कों पर निकले नहीं हैं। ९ बजे तक जाना।"

मैनेजर ने बात शुरू की तो मैंने पूरी बात कह दी।

"मैं दूर देश का हूं। यहाँ कोई मित्र है नहीं। मैं आपके इस कर्मचारी से अपने साथ बैठा कर कुछ बातचीत करना चाहता हूं।"

मैनेजर भला आदमी था। "हाँ, हाँ। आधे घण्टे की कोई बात नहीं। जिवानी बैठ जाओ।" और हँस कर इतना और जोड़ दिया—"किन्तु यह पीने का शौकीन है। मात्र बियर से सन्तुष्ट नहीं होगा। इसीलिए बहानेबाजी कर रहा था—केवल मेरी खातिर नहीं।"

बेधड़क इताल्वी भी इस बार कुछ झेंप गया। सिर झुकाए हुए मेरे सामने बैठ कर बोला—"सर, थैंक्यू सर। मेरे लिए रम.......।"

"हाँ, हाँ, क्यों नहीं।" मैंने उसे अधिक दुविधा में नहीं रखा। उसकी रम आयी और मेरी बियर। खूब बातें हुईं। उठने लगा तो मैंने यों ही पूछ लिया- "जिवानी, तुम्हारे यहाँ कौन-कौन सी मछलियाँ मिलती हैं ?" फिर क्या था उसने तमाम मछलियों के नाम और गुण बताना शुरू कर दिया।

"आप कौन-सी पसन्द करेंगे सर।" उसने अपना निष्कर्ष निकाला।

"मैं शाकाहारी हूँ। माँस-मछली नहीं खाता।"

"अरे, मैं तो समझा था आप मछलियों के बारे में इसीलिए पूछ रहे हैं कि इनके पुराने शौकीन होंगे। वेनिस आकर मछली न खाना तो बड़ी अटपटी बात है। हमारे वेनिस की शकल ही मछली जैसी है।" कहकर वह ठिठिया कर हँस पड़ा। मैं इस रोचक तथ्य को नहीं जानता था। तुरन्त नक्शा खोल कर देखा। सचमुच वेनिस का आकार एक सुन्दर मछली के समान था। मैंने कहा—"तुम्हारा शहर मछली ही नहीं खूब खायी-पीयी मोटी मछली की तरह है।" जिवानी की बत्तीसी फिर खुली। तब तक सामने से तीन-चार लोग जो पोशाक से विदेशी और धनी दिख रहे थे, घाट की सीढ़ियाँ उतर रहे थे। लपक कर वह उनके स्वागत के लिए बढ़ गया।

विलक्षणता जिसका नाम वेनिस है–२

□ □ □

आड्रियाटिक सागर में महत्वपूर्ण स्थान पर स्थित होने के कारण वेनिस पर पड़ौसी राज-शक्तियों की भूखी नजर हमेशा से रही है। उस दलदली द्वीप पर बसे शरणार्थियों को चैन से रहना दूभर हो गया था। आये दिन पास-पड़ौस से आक्रमण होते रहते। मगर नवीं सदी के एक फ्रांसिसी आक्रमण ने वेनिस के इतिहास को ऐसा झकझोरा कि उसकी दिशा ही बदल गयी। अब तक जो जनक्षेत्र केवल शान्तिप्रिय समुद्रतटीय मछलीमार लोगों की गरीब बस्ती थी अब अपनी रक्षा की तैयारी करते-करते शक्तिशाली राज्य बनने लगा। चारों ओर से मार और अत्याचार ने वेनिसवासियों को एकता, संगठन और दृढ़ता के सूत्र में बाँध दिया जिसकी सर्वोत्तम पराकाष्ठा हुई वेनिस को एक स्वतन्त्र गण-राज्य घोषित करने में। आड्रियाटिक सागर के शीर्ष पर विराजमान एकमात्र राज्य की उपयोगिता को पूरी इटली ने समझा। व्यापार के लिए वेनिस प्रमुख बन्दरगाह बन गया जहाँ से होकर पूर्वी और अरब देशों से आया हुआ तमाम माल पूर्वी योरोप को जाने लगा। आज के यूगोस्लाविया से लेकर रूस तक एशियाई हीरे-जवाहरात, मसाले, गलीचे, हाथी-दाँत, सूखे मेवे इत्यादि मनचाही यात्रा में पहुँचने लगा। देखते ही देखते वेनिस वस्तुतः पूर्वी योरोप का समुद्री द्वार बन गया। इस छोटे से गणराज्य के जलपोत अब आड्रियाटिक सागर से आगे भूमध्य सागर को भी पार कर दूर-दूर तक जाने लगे। योरोप के तमाम व्यापारी और राजा-रईस वेनिस की ओर दौड़ पड़े और बीसों देशों का सोना इस छोटे से दलदली द्वीप समूह में गलने लगा। जगह की कमी के बावजूद फ्रांस, जर्मनी, रूस, एशिया यहाँ तक कि इंगलैण्ड के राजा-रईसों ने वहाँ अपने-अपने महल बनवाना शुरू कर दिया। ईसा की प्रथम सहस्राब्दी समाप्त होते-होते वेनिस की आबादी २५००० के ऊपर पहुँच गई जो उस समय के लिहाज से बहुत थी। अगले सात सौ बरसों तक उसने कल्पनातीत उन्नति की। धन ही नहीं कला और ऐश्वर्य का भी अपरिमित संचय किया। योरोप के शौकीन

धनकुबेरों ने वेनिस को गिरजों, संग्रहालयों, राज-महलों और जुआ-घरों से पाट दिया। सन् १००० से उन्नीसवीं सदी तक योरोप की सर्वोत्तम कला-कृतियों के संग्रह और सृजन का काम उसी तेजी से होता रहा जिस तेजी से शक्ति और सम्पदा का प्लावन। आज वेनिस में संसार के कोने-कोने से आये हुए यात्रियों की चित्रकला, मूर्तिकला, वस्तु शिल्प, नाना प्रकार की हस्तकलाओं और इतिहास का अगाध भण्डार देखने को मिलता है वह इन्हीं ८०० वर्षों के निरन्तर संकलन कार्य का सुफल है। लेकिन अठारहवीं सदी आते न आते वेनिस के इतिहास ने एक नया मोड़ लिया।

अमरीका की खोज हो चुकी थी। नयी दुनिया के प्राकृतिक वैभव ने योरोप के लोभी साहूकारों और सौदागरों को अटलांटिक के उस पार बुलाना शुरू किया। लंदन, पेरिस, रोम, सैण्टपीटर्सबर्ग (वर्तमान लेनिनग्राद जो उस समय रूस की राजधानी था), वियना और बर्लिन के साथ वेनिस का सोना भी अटलांटिक की लहरों में पश्चिम की ओर बह चला। मूलतः व्यावसायिक छोटे से गणराज्य वेनिस की शक्ति क्षीण हो चली। इतालवी प्रायद्वीप के अन्य राज्यों से उसका मतभेद बढ़ता गया। पूँजीवादी व्यवस्था के अनुरूप आर्थिक स्वार्थों की टक्कर ने जूड़ी-बुखार की तरह पूरी इटली के जोड़ों को हिला दिया। उधर फ्रांस में नेपोलियन ने क्रान्ति का आह्वान किया। फ्रांस में काम पूरा करके उसने योरोप के अन्य साम्राज्यवादी देशों पर धावा बोल दिया। सन् १७२७ में जब वह आस्ट्रिया से लड़ रहा था तो वेनिस की विलक्षण समुद्री स्थिति को देखकर पहले उसी को जा दबोचा। यह समाप्त होने पर नेपोलियन ने छोटे-से एक शहर के बराबर इस गणराज्य को अधीन कर लिया। कुछ समय तक यह नैपोलियन और आस्ट्रिया के बीच फुटबाल बना रहा। अन्त में उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में एक विशेष सन्धि के बाद उसे अन्तिम रूप से आस्ट्रिया के साथ बाँध दिया गया। वेनिस ने यह पराधीनता बहुत दिन तक स्वीकार न की। सन् १८४८ में आस्ट्रिया के खिलाफ विद्रोह उठ खड़ा हुआ। उधर एशिया और आस्ट्रिया की भी ठन चुकी थी। इस उठा-पटक की स्थिति का लाभ वेनिस वालों की अवसरवादी बुद्धि ने पूरा उठाया। आस्ट्रिया की हार हुई और ने अन्ततः अपने साँस्कृतिक और ऐतिहासिक जनक इटली के साथ हमेशा के लिए मिल जाना ही भविष्य के लिए श्रेयस्कर समझा।

तब से वेनिस इटली का एक भाग है। ऐतिहासिकता, प्राचीनता और सांस्कृतिक माहात्म्य इटली की अपनी विशेषताएँ थीं। सो वेनिस के योग ने उनमें चार चाँद लगा दिये। बाकी देश के साथ वेनिस भी धीरे-धीरे पर्यटकों का तीर्थ-स्थान बनता गया। दुर्भाग्यवश प्रथम विश्व-युद्ध समाप्त होते ही दुगुने जोर से टूरिस्ट उद्योग के विकास का काम शुरू हुआ। केवल १९३८ के एक वर्ष में लगभग पाँच लाख यात्रियों ने—जिनमें आधे से अधिक विदेशी थे—वेनिस की यात्रा की। इसके पहले शायद दुनियाँ के किसी एक शहर की यात्रा एक वर्ष में इतने लोगों ने नहीं की थी। मात्र १०-१५ बरसों में वेनिस की ख्याति पूरे विश्व में इतनी फैल गई और पाश्चात्य सभ्यता, इतिहास एवं कला के एक विशालतम संग्रहालय के रूप में उसकी प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गयी कि जब दूसरे विश्व-युद्ध में जर्मन कब्जे से मित्र राष्ट्रों ने वेनिस को छुड़ाने का प्रयत्न किया तो सेनापतियों को विशेष रूप से हुक्म दिया कि वेनिस पर भरसक एक भी बम न गिराया जाये। भाग्यवश उस समय तक हिटलर इतना पस्त पड़ चुका था कि बिना किसी बमबारी के ही वेनिस उसके पंजे से मुक्त हो गया। सदियों से जमा की हुई कला और शिल्प की निधि, नहर, नाव और गलियों का शहर वेनिस संसार के सेलानियों और कला-प्रेमियों का आकर्षण केन्द्र बना रहा। चार लाख के इस शहर में आज भी पच्चीसों प्रकार के हस्त-शिल्पों के प्रशिक्षण और उत्पादन का कार्य सैकड़ों संस्थाओं और कारखानों में हो रहा है। सोने, चाँदी, पीतल और ताँबे पर बारीक कलात्मक काम, जरी कढ़ाई, चमड़े, लकड़ी और काँच पर पच्चीकारी, पुरानी कला-कृतियों की सुन्दर अनुकृतियाँ इत्यादि जैसे गृह उद्योगों का मुकाबला योरोप के कम शहर ही कर सकते हैं। यह जरूर है कि आधुनिक युग में वेनिस का व्यावसायिक और समुद्री महत्व घट गया है। तथापि उसके कला-संग्रह, कला-सृजन और कलात्मक जीवन के कारण टूरिस्ट उद्योग ने उसका प्राचीन समृद्धि और ऐश्वर्य को पूर्ववत संजोये रखा है।

'कनाल ग्रांदा' को वेनिस वाले दुनियाँ की सबसे सुन्दर 'सड़क' मानते हैं। पूर्वी बर्लिन की स्टालिन अले, पेरिस की शांस एलीजे, एडिनबरा की प्रिंसेज स्ट्रीट, लेनिनग्राद की नेवस्की प्रास्पेक्ट और शिकागो की मिशीगन एवेन्यू को भी वहाँ वाले दुनियाँ की सबसे सुन्दर सड़क मानते हैं। इसलिए 'कनाल ग्रांदा'

नहर न होकर यदि सचमुच ही सड़क होती तो भी वह दुनियाँ की उतनी सुन्दर सड़क होती जितना पेरिस, लेनिनग्राद वगैरह की। तथापि सुन्दरतम कही जाने वाली सभी सड़कों को देखकर भी मेरा मत है कि 'कनाल ग्रांदा' से गुजरते समय एक अद्वितीय सड़क से गुजरने का अनुभव होता है। यह केवल नहर की अपनी विशेषता के कारण नहीं, बल्कि अन्य चीजों के कारण जो उस सम्पूर्ण क्षेत्र को एक मौलिक स्वरूप प्रदान करती हैं। सर्पाकार अंग्रेजी के 'एस' की तरह चौड़ी नहर, उसमें परियों की तरह तिरती हुई रंगीन नौकाएँ जो कश्मीर की डल झील में बजरों की याद दिलाती हैं और इनके किनारे-किनारे वेनिस ही नहीं समस्त इटली के संगमरमर के बने भव्यतम महलों और कोठियों की पंक्तियों, जिनके द्वारों और बाहरी दीवारों पर विभिन्न रंगों में चित्रित पुराने ध्वज-चिन्ह। पूरी नहर चार किलोमीटर लम्बी है। इसमें से प्रायः पूरे फासले तक ऐसी अट्टालिकाओं की मानों अटूट श्रृङ्खला चली गयी है। उच्चकोटि के प्रसिद्ध इताल्वी संगमरमर का एक स्थान पर इतना विशाल संग्रह और कलात्मक प्रदर्शन मैंने जीवन में पहली बार देखा। कैमरा तैयार किए सिर उठाये एक-एक इमारत देखता जाता। एक से एक सुन्दर। समझ में न आता किसकी फोटो खींचूँ और किसकी न खींचूँ। मल्लाह कहता 'सर' आपको मूवी कैमरा लाना चाहिये था तो सोचता इन गरीबों को अपने से खुशहाल हर व्यक्ति धन्ना सेठ ही मालूम होता है। नहर पर जगह-जगह पुल जिसके नीचे से जाते हुए गण्डोले। नहर का पानी कुएँ जैसा साफ और शीतल। शहर के बीचों-बीच गुजरने के बावजूद नदी का पानी इतना साफ कैसे रहता है यह भी कम अचरज की बात नहीं। मध्य युग में जब वेनिस की गलियाँ और सड़कें कच्ची ही थीं तो रईस लोग कीचड़ से बचने के लिये थलमार्ग छोड़कर नहर के रास्ते ही आया-जाया करते थे। शौकीन लोगों की नावें भी वैसी ही होती थीं। इस प्रकार तभी से नक्काशीदार, खुशनुमा डिजाइनों और रंगों से सजी जोंडोलाओं का प्रचार हुआ जो आज तक उसी रूप में विद्यमान है।

वेनिस की ऐतिहासिक स्मारकों और राजमहलों की संख्या अथवा श्रेष्ठता दोनों का अनुमान लगाना कठिन है। तथापि कुछों की ख्याति संसार के कौने-कौने तक पहुँची है। उनमें से सानमार्को और उसका चौक कदाचित् विशेष उल्लेखनीय हैं। सुन्दरतम सड़कों या एवेन्यू का जिक्र तो कई शहरों में सुन

लेता था। परन्तु संसार का सबसे सुन्दर चौक भी कहीं है यह केवल वेनिस में सुना। स्वाभाविक ही बड़ी उत्सुकता हुई।

पियाजा सानमार्को (सानमार्को स्क्वायर) शहर के लगभग बीचोंबीच स्थित है जो बाजार ही नहीं पूरे शहर का सबसे व्यस्त केन्द्र भी है। उसी स्क्वायर के इर्द-गिर्द यात्रा-एजेंसियाँ, जहाज-विमान कम्पनियाँ, बैंक, विदेशी-रुचि की चीजों की बड़ी-बड़ी दूकानें, फैशनेबुल रेस्तराँ और होटल भी हैं जिसके कारण इस चौक में हमेशा एक अन्तर्राष्ट्रीय मेला-सा भरा रहता है। कहीं भी दस मिनट खड़े हो जाइये। आठ-दस भाषाओं की ध्वनियाँ आपके कानों से जा टकरायेंगी। कहावत बन गयी है कि वेनिस की शान भी चौक संयुक्त राष्ट्र-संघ से भी अधिक अन्तर्राष्ट्रीय है। यह विशेष बात यह है कि दुनियाँ में यही एक मात्र चौक है जहाँ किसी प्रकार की सवारी—मोटर, सायकल, स्कूटर कुछ भी नहीं—नहीं जाती। इसलिए लोग-बाग स्वच्छन्द इधर-उधर घूमते बैठे रहते हैं और चाहे जहाँ खड़े गप्पें लड़ाते रहते हैं। पश्चिम के लिए, जहाँ यातायात के नियम खासतौर से राहगीरों के लिए—इतने कड़े हैं और मोटरों की भीड़ से राहगीर सर्वत्र त्रस्त हैं। यह बहुत बड़ी बात है। सानमार्को की लोकप्रियता का मेरी समझ में यह विशेष कारण है। तथापि इस चौक की अपनी अन्य रचना विषयक विशेषताएँ भी हैं, जिनका सम्बन्ध इतिहास और कला से है।

चौक का मध्य भाग एक सुन्दर प्रांगण की तरह जिसकी पूरी फर्श चिकने उत्कृष्ट पत्थरों से मढ़ो है। प्रांगण के चारों ओर बासीलिका (एक प्रकार का मध्ययुगीन पूजागृह जो प्राचीन काल में दरबार के काम आते थे) एवं अन्य स्मारक बने हैं जिनकी छतों, दीवारों, फर्शों और खम्भों पर तत्कालीन चित्र और पच्चीकारी है। इनके इमारतों की बनावट भी वस्तु-शिल्प की दृष्टि से अत्यन्त आकर्षक है। विशेषकर बासीलिका की बनावट और सजावट अपूर्व है। गैथिक निर्माण शैली में बने इस चर्च (बहुत सी प्राचीन बासीलिकाओं को बाद में चर्च बना दिया गया) में सदियों से परिवर्तन होते रहे। जो शासक या धर्माध्यक्ष आया अपनी कोई स्मृति छोड़ गया। सभी युगों और शैलियों के कलाकारों ने इस पर अपनी प्रतिभा बिखेरी। सन् ८३२ में ईसाई संत मार्क (इताल्वी में मार्को) के शव को एक स्थान पर सुरक्षित रखने के लिए उनके भक्तों ने इस स्थान को चुना था। बाद में गिरजाघर भी बना दिया गया। उसके बाद कई

बार यह बासीलिका खंडित हुई और बनी, और आज तक बनती जा रही है। इसीलिए अक्सर लोग कहते हैं कि सानमार्को चौक का निर्माण वस्तुतः एक हजार वर्षों में हुआ है। तथापि सैकड़ों वर्ष पहले और आज के शिल्प विधान में ऐसा सामंजस्य बैठाया है कि पूरी चीज एक पीढ़ी की कृति मालूम होती है। प्रांगण के एक कौने की ओर खड़ा है एक विशाल चौकोर टावर जिसका पेंसिल की नौक जैसा ऊपरी भाग आकाश में मानो चुभा दिया गया हो। शहर में प्रायः हर जगह से यह स्तम्भ—या मीनार कहें—दिखायी देता है पर निकट, इसके नीचे पहुँचने पर इसके ऊर्ध्वोन्मुख विराट् अस्तित्व का रौब कुछ दूसरा ही पड़ता है। विस्तृत प्रांगण में खड़ा यह लाल रंग का स्तम्भ कभी आकाश की ओर घूरते रोमन साम्राज्य के किसी भी मकाय ग्लैडियेटर की तरह प्रतीत होता है तो कभी चिन्ता में खड़े योगिराज का आभास देता है। इस चौक में कई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाएँ भी घटी हैं जिन्होंने वेनिस और इटली के इतिहास को स्थायी रूप से प्रभावित किया है। अतएव इटलीवासियों की राष्ट्रीय भावनायें भी इसके साथ जुड़ी हैं। दरअसल, सदियों की निरन्तर चेष्टा और प्रयोग से बने इस चौक में खड़े होने पर जितनी कलात्मक अनुभूति होती है उतनी ही आध्यात्मिक शान्ति और ऐतिहासिक गरिमा का भी एहसास होता है।

वेनिस आये चार दिन हो गये थे। अभी रोम, बौलोन, फ्लोरेंस, नेपुल्स, काप्री वगैरह की यात्रा बाकी थी। समय इतनी तेजी से निकल जाता था कि पता ही न चलता था। दिन भर घूमते रहने के बाद अभी कई दर्शनीय स्मारक बाकी थे। पर मानव-मन ही तो ठहरा। वेनिस में भी पुराने स्मारक, चित्रकला, वस्तु-शिल्प वगैरह देखते-देखते ऊब उठा था। दूसरे दिन विदा लेने की सोच रहा था कि वेनिस के विख्यात समुद्र-तट 'लीडो' को भी देख आने की उत्कंठा जाग उठी। अभी तक यह सोच रहा था कि इतने वर्ष योरोप में रह लेने और एक से एक सुन्दर समुद्र-तट देख लेने के बाद अब और क्या समुद्र-तट देखूँ। बहरहाल यह सोचकर कि आज शाम की गाड़ी से बोलोन रवाना होने के बदले कल एक बजे दोपहर की गाड़ी से चला जाऊँगा। सवेरे दो-तीन घण्टे का समय लीडो पर गुजारने को मिल जायेगा। अतएव आठ बजे सबेरे ही सामान वगैरह ठीक करके होटल का बिल चुकता कर नाव से लीडो चला गया। लेकिन जब

होटल वापिस लौटा तो शाम के पाँच बज चुके थे। यह था लीडो का आकर्षण।

लीडो वस्तुतः मात्र 'बीच' (समुद्र-तट) नहीं अपने आप में एक बस्ती है जिसे समुद्र स्नान करने वाले शौकीन लोगों ने ही एक तरह से बसाया है। समुद्र स्नान, धूप स्नान, समुद्री आवहवा में रहने के शौकीन या स्वास्थ्य लाभ करने के इच्छुक टूरिस्टों का लीडो पर इतना जमघट होने लगा कि वहाँ होटलों, रेस्तराँओं, 'बैदिंग काटेजों' और 'हटों', बगीचों, एवेन्युओं, दुकानों और क्लबों की भरमार हो गयी। तट भी खासा लम्बा है जिसके लिये गौंडोला के बदले कार, टैक्सी और ट्राली बसों की जरूरत पड़ती है। इस दृष्टि से लीडो का चित्र वेनिस से काफी भिन्न है। समुद्रतटीय दृश्य भी 'कनाल ग्रांदा' के दृश्य से बहुत भिन्न है। चारों ओर रेत पर पुलिन बिहारियों की भीड़ लगी है। रंगीन छतरियों के नीचे स्नानार्थी पेट या पीठ के बल हाथ-पैर फैलाये मगरमच्छ की तरह पड़े हुए हैं—कहीं पूरा परिवार कहीं बच्चों की टोली, कहीं शिथिल हो कर कोई वृद्ध दम्पत्ति ही लेटा है। पर यह स्थान तो युवा वर्ग का वृन्दावन होता है जहाँ चाँदनी के बदले भर दुपहरिया में ही उनकी रासलीला रचती है। इधर-उधर रेत पर, छिछले पानी पर या छतरी के नीचे आधे धूप और आधे छाँव में अनेक प्रेमी युगल पेट के बल लेटे एक-दूसरे पर रेत या पानी उछालते लेटे हुए हैं। भाग-दौड़, छुवा-छुवौअल, पानी में धर-पकड़, प्लास्टिक की रंगीन गेंदों की फुटबाल या बालीबाल या केवल कमर में हाथ डाले इधर से उधर टहलना, ये तमाम दृश्य लीडो को ऐतिहासिक वेनिस से थोड़ा भिन्न प्रदर्शित करते थे। कहीं-कहीं कुछ संगीत प्रेमी, भावुक इताल्वी लड़के अपने गीटार, मेंडोलीन या कुछ नहीं तो ट्रांजिस्टर ही बजा रहे हैं। ऐसे लोगों की कमी नहीं जो तनहा दिल लिये, रेतीली धरती को सीने से चिपटाये, सिगरेट के धुएँ से जीवन को सरस बनाने की चेष्टा करते हुये आस-पास से गुजरने वाली 'कनकछुरी-सी कामनियों के 'स्विमिंग कांस्ट्यूम' या बिकनी से झाँकते हुए उरोज और नितम्बों को देख कर ही पूरा दिन गुजार देते हैं। खास तौर से जब से बिकनी का प्रचलन बढ़ा है समुद्रतट पर ऐसे 'दर्शनार्थियों' की संख्या बहुत बढ़ गयी है। युवतियाँ भी क्यों पीछे रहें। जिस चीज की कद्र होती है उसे छिपाया क्यों जाय। अतएव आजकल समुद्र तटों पर ऐसी तमाम युवतियाँ दिखायी देती हैं जो नाम-

मात्र का कपड़ा पहनने के बहाने कमर पर पतली-सी बिकिनी लटकाये इधर से उधर दो-दो, तीन-तीन की झुण्ड में घूमती रहती हैं। उनका और कोई प्रयोजन नहीं रहता। बस वे इतना चाहती हैं कि वे अपने कूल्हे, उरोज और पिण्डलियाँ ढुलाती हुयीं जिधर से जायें लोग अपना सब कुछ भूल कर उन्हें देखते रहें। इतने से ही उनकी गुप्त भावनाओं को तुष्टि मिल जाती है।

मेरे पास मुश्किल से दो घण्टे का समय है सोचकर जल्दी से मैंने किसी उपयुक्त स्थान की खोज शुरु की जहाँ कपड़े उतार कर घड़ी, कैमरा जैसी कीमती चीजों को सुरक्षित छोड़कर थोड़ा तैर सकता। दो फर्लांग तक देख आया पर कोई ऐसा ठौर न मिला। तमाम 'बेदिंग हट' थे पर वह अपनी हैसियत के बाहर की बात थी। छतरियाँ भी भरी थीं। किसी के साथ साझा करने के लिये दोस्ती दरकार थी। इसलिए मैंने एक अपने जैसा एकाकी ही चुना। एक काले बालों वाला इतालवी-सा दिखता नौजवान धूप का काला चश्मा लगाये कुहनी के बल लेटा-सा एक पुस्तक पढ़ रहा था। चेहरे से कुछ गम्भीर लगा। कई बार लड़कियों के झुण्ड उसके पास से निकल गये पर उसने ध्यान नहीं दिया। अधिक झिझक छोड़ कर मैंने 'हलो' कहकर उसका ध्यान अपनी ओर खींचा। उसने मेरी ओर सिर उठा कर देखा। तत्काल 'हलो' कह कर सीधे बैठ गया। मैं एक क्षण रुका कि किस भाषा में बात शुरू करूँ कि उसने फिर कहा—"क्षमा करें। मैं केवल अंग्रेजी जानता हूं।" फिर क्या था, मुझे मनचाहा वरदान मिल गया। मैंने बैठते कहा—"मैं भी केवल अंग्रेजी ही ठीक से जानता हूं, मेरा मतलब है योरोप वालों के लिये।"

"तो क्या आप इतालवी नहीं हैं? मैंने आपको इतालवी समझकर ही कहा कि मुझे....।"

"जी नहीं, मैं भारतीय हूँ।" अपने नये मित्र के अंग्रेजी उच्चारण से मैं अब तक समझ गया था कि ये महाशय अंग्रेज हैं, अमरीकन नहीं।

"आप इंगलैण्ड में कहाँ रहते हैं?" मैंने पूछा।

"लेक डिस्ट्रिक्ट में। लेकिन आपको कैसे मालूम मैं इंगलैण्ड में रहता हूँ?" उनकी आँखें विस्मय से चमक उठीं।

"आपके उच्चारण से।" सुनते ही वे इतने उत्साहित हुए कि अपना चश्मा उतार कर बातें करने लगे।

"वाह ! आप भारतीय लोग होते बड़े होशियार हैं।"....इत्यादि-इत्यादि। हम घुल-मिलकर बातें करने लगे। आधा घण्टा निकल गया पर मैं अपने मतलब की बात न कर सका। अन्त में उस समझदार अंग्रेज ने ही कहा—"आप तो नहाने आये होंगे, और मैंने आपको बातों में लगा लिया।"

"जी हाँ, लेकिन मैं आपकी मदद चाहता हूँ। क्या मैं अपनी चीजें कुछ समय के लिये आपके पास छोड़ जाऊँ ?"

"अवश्य। मैं स्वयं आपके साथ नहाने चलता, पर मुझे खारे पानी में तैरना सुहाता नहीं।"

मुश्किल से एक घण्टा बचा था। बारह बजे तक मुझे होटल लौटना था। झटपट 'बेदिंग सूट' पहन पानी की ओर दौड़ गया। इधर-उधर चार-छै डुबकी लेकर लहरों के साथ और भीतर जाने की सोच रहा था कि पीछे से किसी ने बहुत ही सुरीली आवाज में कहा मानो गीत शुरु करने के पहले किसी ने धुन गुनगुनायी हो—"हलो, मैं आपको देर तक अपने पति से बातें करते देखती रही। क्या आप दोनों दोस्त हैं ?" मैंने पीछे मुड़कर देखा—एक विलक्षण रूपवती युवती किंचित मुस्कान के साथ लहरों के धक्कों से बार-बार धरती छोड़ देते हुए अपने सुकुमार पैरों को सम्भालती हुई खड़ी थी। सफेद संगमरमर जैसे उसके शरीर पर वीर बहूटी की तरह लाल रंग का 'कास्ट्यूम', साँचे में ढले अंगों से रचित लमछर देह वल्लरी, उस पर कहीं-कहीं धूप में झिलमिलाती पानी की बूँदें। पानी के भार से नीचे झूल आये उसके रेशमी ब्लोंड (सन के रंग के) बाल की लटें कभी गण्डस्थली और कभी चिबुक को चुम कर हिल उठते मानो रोमांच से सिहर उठे हों। लहरों की हिलोरों में भी मैं ठगा-सा खड़ा रह गया। एक साथ, एक व्यक्ति में इतना सारा सौन्दर्य साकार उतर आया है। शायद उस मोहिनी को ऐसे अनुभव पहले हो चुके थे। आखिर वह मुग्धा नायिका तो थी नहीं जो अपने रूप की अतिशयता को न जानती हो। उसकी आँखों में धूप और खारे पानी से आ गई लालिमा पर क्षण भर के लिए लज्जा की एक हल्की रेखा उतर आयी। मुस्कराहट थोड़ी और फैल गयी। चेहरे पर एक अनौखा लावण्य कौंध गया। कुछ कहने को मुँह खोलने लगी कि मुझे अपनी अभद्रता का ज्ञान हुआ—"जी ?—जी नहीं—हमारा परिचय तो यहीं हुआ। अभी-अभी। आप उनकी पत्नी हैं ?" जानते हुए भी इस बात

को पूछने पर मैं अपने आपसे खिन्न हो रहा था कि एक थोड़ी जोरदार लहर आयी। श्रीमतीजी गिरते-गिरते सम्भल गयीं। हम अभी इतने परिचित नहीं हो गये थे कि मैं हाथ से उन्हें सहारा देता। लेकिन अब तक मैं भी सम्भल गया था। बोला—"लीजिए, लड़खड़ाना तो मुझे चाहिये था, और लड़खड़ा गयीं आप।"

समझते हुए भी वे कुछ अदा से बोली—"क्यों ? आप तो अच्छे-खासे मुस्तैदी से खड़े हैं। आप क्यों लड़खड़ाते ?" उनके मधुर स्वभाव ने मुझे अभयदान दे दिया था। मैंने कह डाला—"आपको देखकर कौन नहीं लड़खड़ायेगा ! एक बार नहीं, प्रत्येक बार।" और अब खिलखिलायी वह सौदामिनी। उसके मुँह खोलते ही जैसे मुझे बिजली का तार छू गया हो। अवाक् रह गया। उसके सारे दांत पीले, ऊबड़-खाबड़ और बेडौल थे। ऊपर के और नीचे के दोनों जबड़े खुल गये थे। वीभत्स लाल खूनी रंग के मसूड़े दिखाई दे रहे थे। अभी-अभी दो सैकेंड पहले जो मुखड़ा इतना सुन्दर लग रहा था अचानक विकृत हो उठा था। ऐसा लगा जैसे पुष्पवाटिका दिखाते-दिखाते किसी ने अचानक उसके बीचोंबीच बना एक भयानक मरघट दिखा दिया हो। रोम-रोम सिहर उठा। एक हल्की सी आह निकल गयी। हे भगवान ! अपनी ही कलाकृति के साथ यह कैसा क्रूर मजाक। सारा अन्तः-करण करुणा और जुगुप्सा से भर उठा। ऐसे बेरहम विधाता को मन ही मन कोसने लगा। मेरे भाव परिवर्तन का स्पष्ट पता श्रीमतीजी को हो गया। उन पर भी उसकी प्रक्रिया हुई। लज्जा की लाली के स्थान पर बेबसी का पीला रंग—वह भी एक ही क्षण के लिए उनकी आँखों में घिर आया। मैं अपने इस तात्कालिक भाव परिवर्तन पर बहुत लज्जित हुआ। वे अभी भी एकदम सामने खड़ी थीं। समझ में नहीं आया किधर देखूँ। एक बार फिर उस बुद्धिमती युवती ने मुझे संभाला। विगत सारे भावों को परे झटकार कर उसने कहा—"अब आप आनन्द से नहायें। मैं तो थक गयी हूँ।" और उसने वहीं खड़ी-खड़ी शरीर ठंडा करने के लिए तीन-चार डुबकियाँ ले लीं। इस बीच मैंने भी कुछ डुबकियाँ ले लीं। मैं तो भाग्य से ही कहूँगा, इतने में पास ही किनारे पर उसका पांच-छै वर्षीय छोटा सा बच्चा किसी एक अन्य महिला के साथ आ निकला। उसकी ओर हाथ हिलाकर 'डेविड, डेविड' कहती हुई वह

लहरों पर कुलाचें भरती हुई चली गयी। एक बार फिर वही लवंगलता नीली जल-तरंगों पर हिलकोरों के साथ डोल उठी। मानो स्वर्णमृगी आंधी की आशंका से डोलती हुई हरी धान की बालों को रौंदती हुई भाग खड़ी हुई हो। लेकिन मैं इस बार मंत्र-मुग्ध नहीं चिंता-मग्न था। पश्चिमी देशों में यह करुण अनुभव मुझे कई बार हुआ था। एक से एक प्रियदर्शी व्यक्ति, पर उनके दांत इतने ही कुरूप। चांद में कलंक तो सुन्दर ही माना जाता है। पर इस कुरूपता में कुछ ऐसा अकथनीय भाव रहता है जिसे चांद का कलंक नहीं, ग्रहण ही मानना चाहिए। मैं तो अब यह सोचने लग गया हूँ कि पश्चिमवासी किसी दैवी अभिशाप के शिकार हैं। डाक्टरों ने दांतों की खराबी के कारण—चीनी और गर्म पेय की अधिकता, कैल्शियम और विटामिनों की कमी—तो मालूम कर लिये हैं। निवारण के भी उपाय मालूम हो गये हैं। उन पर अमल भी हो रहा है। लेकिन परिणाम अभी नहीं के बराबर ही दिखायी दे रहे हैं। हार कर कई चिकित्सकों ने यह मान लिया है कि गंजापन और आँखों की दृष्टि की तरह दांतों का स्वास्थ्य भी वंशगत होता है। मेरे योरोपीय मित्र अक्सर मेरे अच्छे दांतों को देखकर मुझसे मजाक करते थे कि मेरे बत्तीस सुन्दर दाँतों पर बत्तीस लड़कियां न्यौछावर हो सकती हैं! मैं हँसकर जवाब देता कि तब तो उनके बीच में बेचारी जीभ की तरह मैं कैदी की तरह छटपटाऊँगा और जब किसी दिन बाहर निकल भागने की, अर्थात् स्वदेश लौट जाने का, प्रयास करूँगा तो सब दोनों जबड़ों की तरह बीच में दबाकर कुचल देंगी।

इन्हीं बातों में डूबता उतराता मैं लहरों पर झूलता रहा। रह रहकर दूर छतरी के नीचे रेत पर लेटी, बीर-बहूटी के परिधान में लिपटी उस अपूर्व तन्वंगी को देख लेता था। मुझे अब वह बेबसी और करुणा की साकार प्रतिमा सी दिखाई देती। लेकिन नहीं, दस मिनट बाद जब मैं वहाँ पहुँचा तो उसने फिर उसी मोहक मुस्कान और मैत्री भाव से कहा—"कैसा रहा स्नान? आप तो खूब तैरते हैं। एक ये हैं मेरे पति। नमकीन पानी से इनकी नानी मरती है।" और फिर हंस पड़ीं। मन हुआ कि मुँह दूसरी ओर फेर लूं। लेकिन नहीं, इस स्त्री में जब स्वयं अपनी विकृति पर विजय पाकर इतने आत्म-विश्वास के साथ मुक्त हंसी हंसने का साहस है तो मुझे इसका सम्मान करना चाहिए। सम्मान ही नहीं किया मन ही मन उस असाधारण मनोबल वाली

नारी के व्यक्तित्व को श्रद्धा से सराहा भी। उनका बच्चा भूख की बात करने लगा था। अतएव माँ बच्चे को लेकर कार की ओर चल दी और अपने गम्भीर, आलसी पति को प्यार से हिदायत देती गयी—"बाकी सामान लेकर जल्दी आ जाओ।" मैंने मन ही मन कहा—"तो ये महाशय यहाँ अकेले नहीं थे। विवाहित और किसी के बाप हैं। इसीलिए मेनकाओं से अप्रभावित तल्लीनता से पुस्तक पढ़ रहे थे।"

लीडो पर यह पहली और सबसे मार्मिक घटना थी। अंग्रेजी परिवार जा चुका था। मैं अपने कपड़ों की रखवाली करता हुआ रेत पर पड़ा था। चारों ओर देखता, सोचता और जब धूप से शरीर गरम हो जाता तो दौड़कर समुद्र में एक डुबकी ले आता। एक बजे की गाड़ी पकड़ने की बात जान-बूझकर भूल गया। क्या करता। उस गरम सौंधी रेत ने मुझे पकड़ रखा था। नाक, मुँह को रेत में गाड़ सा दिया था। छाती और पेट में शीतल स्पर्श बड़ा सुखद लग रहा था। पीठ पर सूर्य की किरणों की मीठी मार पड़ रही थी। कानों में सागर की लहरों का आरोह-अवरोह झंकरित हो रहा था। बीच-बीच में कुछ कोमल पदचापों की आवाज सुनायी देती। आवाज पास आती तो समवेत खिलखिलाहट मेरी जंघों और पीठ पर रेंगती हुई सिर में आकर स्मृति का कोई द्वार खटखटाने लगती। चाहता हूँ पलट कर देखना उन खिलखिलाने वाले श्री मुखों को। लेकिन नहीं देखूँगा। अब देखने को बचा ही क्या है? खिलखिलाहट दूर चली गयी। मुँह के बल समाधिस्थ मेरी हास्यास्पद देह अब उसको प्रतिध्वनित ही कर सकती है।

न जाने कब मेरी जीवित समाधि में नींद आकर घुल गयी। आँख खुली तो पीठ तवे सी तप रही थी और गर्दन पर पसीना हो आया था। सिर चकरा-रहा था। एक बजे वाली गाड़ी वेनिस से अब तक पचास मील दूर जा चुकी होगी। मैंने सोचा। चलो अच्छा हुआ। मैं लपक कर उठा और लहरों की ओर फिर दौड़ गया।

जीसस के जन्म और मृत्यु के देश में–१

□ □ □

दमिश्क से जेरूसलम की यात्रा बड़ी विशिष्ट रही। सीरियन एयर लाइन्स के ४० सीटर विमान में मैं एक मात्र यात्री था। मुझे बैठाकर परिचारिका ने जब दरवाजा बन्द कर लिया, तो मजाकिया पर्सर (प्रमुख प्रबन्धक) ने नियमानुसार लाउडस्पीकर पर कहा, "हमारे एक मात्र यात्री महोदय! हम अपने विमान पर आपका स्वागत करते हैं....।" और फिर बरबस माइक्रोफोन पर ही हँस पड़ा। अपने केबिन का दरवाजा खोलकर बाहर आया और बोला—"क्षमा करें। यह मेरा पहला अनुभव है कि पूरे विमान में केवल एक सवारी लेकर चल रहा हूँ। इसलिए हँसी आ गयी।"

"तो क्या पहले ऐसा कभी नहीं हुआ ?"

तब तक परिचारिका भी आ गयी थी। बोली—"हुआ क्यों नहीं। ये पर्सर महाशय इस लाइन पर कुछ ही बार चले हैं। अतएव इन्हें अजीब-सा लग रहा है। दो-तीन महीने पहले एक बार और ऐसा ही हुआ था।"

"चलो, अच्छा है! जेरूसलम में मुझे देखकर लोग समझेंगे कि कोई भारतीय महाराजा डुगलाज डी. सी. के 'चार्टर्ड प्लेन' से तीर्थयात्रा करने आया है।" मैंने औपचारिकता को हँसी से समाप्त करने की कोशिश की और सफल रहा। हमारी बातें खुलकर होने लगीं। कई बार 'कॉकपिट' में जाकर पाइलट से बातें करता रहा। ४५ मिनट की यात्रा का अधिकांश समय कॉकपिट में ही गुजारा। सवेरे का समय था। मौसम साफ था और हवा भी शान्त थी। केवल कहीं-कहीं कुछ बादल के टुकड़े आ जाते और विमान को गुदगुदा कर पीछे रह जाते। इसलिए चालक और रेडियो इंजीनियर को बहुत काम न था। आराम से कम्पासों और लीवरों को देखते-संभालते उड़े जा रहे थे। एक बार चालक ने नीचे जमीन पर कुछ देखकर अरबी में न जाने क्या कहा कि मुझे छोड़कर सब बड़े जोर से 'हो-हो' करके हँस पड़े। पर्सर से मैंने अनुवाद करने को कहा, तो बोला—"ये पाइलट महाशय पहले टैक्सी हांका करते थे।

नीचे सीरिया और जोर्डन की सीमा पर दमिश्क-जेरूसलम रोड पर बनी पुलिस चौकी के पास कुछ टैक्सियाँ खड़ी देखकर कहने लगे कि दस वर्ष पहले जब मैं दमिश्क से बेरुत (लेबनान) और जेरूसलम टैक्सियाँ चलाता था, तो अक्सर वे खाली ही रहती थीं—केवल एक या दो सवारियाँ। और अब इस एयर लाइन्स के विमान भी खाली चला रहा हूं। कहीं उस टैक्सी कम्पनी की तरह इस हवाई कम्पनी की भी बधिया न बैठ जाये !" मैं भी हँसा। कुछ ही मिनटों बाद जेरूसलम दिखायी देने लगा। सबके चेहरे जिम्मेदारी की भावना से गम्भीर हो गये और अपने-अपने काम में लग गये। रेडियो इंजीनियर ने कण्ट्रोल टावर से सन्देश लिया और पाइलट चमड़े की गद्दीदार कुर्सी पर शरीर को एक बार ठीक से जमाकर विमान को उतारने की तैयारी करने लगा। पर्सर ने मुझ से कहा—"आप अपनी सीट पर जाकर बैठिए और कृपया कमरपेटी बाँध लें। हम अब 'लैण्ड' करेंगे।"

"क्या अब आप इसे लाउडस्पीकर पर नहीं ऐलान करेंगे ?" मैंने हँसकर कहा। पर इस बार कोई नहीं हंसा। मजाक असमय किया गया था।

इतनी सुखद और स्वतन्त्र विमान-यात्रा मैंने पहले कभी नहीं की थी। उल्लास से चमकते चेहरे के साथ जब जेरूसलम के छोटे-से हवाई अड्डे पर उतरा, तो चकित रह गया। लगा मेरा 'महाराजा' वाला मजाक सच हो गया। टर्मिनल में पहुँचते ही एक सज्जन ने तपाक से 'हलो, डॉक्टर जायसवाल' कहकर मेरा सूटकेस थाम लिया। मैं जब तक उनसे कुछ पूछूँ वे आगे बढ़कर टैक्सी बुलाने लगे। अन्त में मुझे टोकना ही पड़ा, "आप मुझे कैसे जानते हैं ? मैंने तो आपको कभी देखा नहीं।"

"मेरा नाम अवीदा है। कल रात को के. एल. एम. ने दमिश्क से मुझे आपके पहुँचने की खबर दी है।"

"अच्छा यह बात है।" अब खयाल आया कि कल जब मैं दमिश्क में अपनी हवाई कम्पनी के. एल. एम. से जेरूसलम का रिजर्वेशन करा रहा था, तो क्लर्क ने पूछा था कि आपका जेरूसलम में ठहरने का कोई प्रबन्ध है या नहीं, तो मैंने कहा था, "नहीं, पर चिन्ता ही क्या है ! पहुंचने पर हो जायेगा !" तब भला यह स्वागत क्यों ? टैक्सी एक टूरिस्ट एजेन्सी के द्वार पर जा लगी, तो शंका और बढ़ी। नौकर ने सामान उतारा। सोफे पर बैठाया

गया। चाय आयी। बातचीत शुरू हुई तो मैंने कहा—"मेरे पास तीन दिन हैं। इनमें जेरूसलम, बेथलेहेम, अम्मान और मृतसागर देखना है।"

"हाँ, हाँ! इसका सुन्दर प्रबन्ध कर दिया जायेगा।" हिसाब जोड़ा गया, तो इस पूरी यात्रा का टैक्सी, गाइड, भोजन और होटल सहित उसने चालीस डालर अर्थात् करीब दो सौ रुपये बताये। मैं समझ गया कि इनके दलाल आसपास के प्रमुख स्थानों की हवाई कम्पनियों में रहते हैं, जो आने वाले यात्रियों की सूचना इन्हें देते रहते हैं। हवाई अड्डे पर स्वागत और अब तक खातिरदारी का कारण समझ में आ गया। इन चालाक लोगों से उसी चालाकी से निबटना चाहिए, सोचकर मैंने बड़ी मिठास से कहा, "यह तो बिल्कुल उचित दाम बताया आपने। फिर भी मैं थोड़ा सोचकर ४-५ बजे तक आपको सूचना दूँगा। शायद मैं जेरूसलम में एक दिन और बिताना चाहूँ। है भी यह कितना रोचक शहर। फिलहाल तो मुझे आप एक होटल का पता दे दीजिए।" शाम को मैंने फोन पर कह दिया, "आप मेरी यात्रा का अभी कोई प्रबन्ध न करें। कार्यक्रम तय होने पर खबर दूँगा।" जब तक अबीदा मियाँ कुछ कहते मैंने 'गुडबाई' कह कर फोन रख दिया। काशी, प्रयाग, मथुरा या हरिद्वार हो, तीर्थ स्थान के पण्डों की एक ही बिरादरी है।

भूतपूर्व फिलिस्तीन के प्रमुख शहर जेरूसलम की कहानी अतीत और वर्तमान, विनाश और निर्माण, घृणा और प्रेम, युद्ध और शान्ति, दमन और स्वतन्त्रता की सम्मिलित कहानी है। दुनिया के बहुत ही कम ऐसे शहर हैं, जिन्होंने इतना देखा या सहा हो, जितना मध्यपूर्व के दो देशों में विभाजित इस छोटे-से शहर ने देखा और सहा है। इसका प्राचीन नाम केवल 'सलेम' था, जिसका उल्लेख बाइबिल में आता है। किन्तु बाद में मिस्र और बेबीलोनिया के धार्मिक ग्रन्थों में 'उरूसलीमू' नाम मिलने लगा। शायद वर्तमान जेरूसलम इस दूसरे नाम का ही अपभ्रंश रूप हो। सतत अनुसन्धान के बाद भी इतिहासकार नहीं मालूम कर पाये हैं कि शहर का जन्म कब और कैसे हुआ। तथापि यह मानने में किसी को आपत्ति नहीं होती कि जेरूसलम दुनिया के प्राचीनतम शहरों में से एक है। कहते हैं एक हजार वर्ष ईसा पूर्व राजा डेविड ने इसे जेबुसियों से छीनकर अपनी राजधानी बनाया था।' बाद में तो फिर इजराइल के विख्यात राजा सोलोमन ने यहाँ एक मन्दिर भी बनवाया, जो

आज भी अनेक परिवर्तनों के बावजूद माउण्ट मोरिया पर विद्यमान है। उसके कुछ वर्षों बाद बेबीलोनिया के शासक ने जेरूसलम पर कब्जा करके सारे यहूदियों को निकाल दिया। तब से ईसा की छठी सदी तक इस शहर पर अनेक आक्रमण हुए। शासक और राजवंश बदले। इस बीच जेरूसलम के पास ही बेथलेहेम में ईसा का आविर्भाव हो चुका था और फिलिस्तीन के पश्चिम में बसे बड़े भूभाग में, जिसे आज यूरोप कहते हैं, ईस्वी काल आरम्भ हो गया था। जेरूसलम ही नहीं, पूरे फिलिस्तीन से यहूदियों को इस बीच कई बार निकाला गया और वापस लाया गया। सातवीं सदी में अन्ततः अरबों ने इस शहर में प्रवेश किया, जिसके खलीफा अल-खताब ने माउण्ट-मोरिया पर सोलोमन के मन्दिर के पास ही लकड़ी की एक मस्जिद बनवायी। १०९९ में ईसाई मिशनरियों ने भी इस शहर में प्रचार शुरू किया। लेकिन ११८७ में अरब शासक सलादीन ने उन्हें भी बाहर खदेड़ दिया। अन्त में सोलहवीं सदी में टर्की की शक्तिशाली ओटोमन सल्तनत ने इस पर कब्जा कर लिया, जिसकी हुकूमत १९१७ तक चलती रही। प्रथम विश्व युद्ध में उनसे छीनकर अंग्रेजों ने इसे अपने अधिकार में कर लिया। १९१८ से जेरूसलम का आधुनिक इतिहास शुरू होता है। १९२२ से १९४८ तक लीग आफ नेशन्स के प्रादेश (मैण्डेट) के अन्तर्गत इंग्लैण्ड ने इस पर शासन किया। इस बीच पश्चिमी देशों के यहूदियों ने अपना आन्दोलन प्रबल करके संयुक्त राष्ट्र संघ से एक अलग यहूदी राज्य कायम करने की माँग की, जो स्वाभाविक ही फिलिस्तीन को बाँटने के इरादे से की गयी थी। उन दिनों संयुक्त राष्ट्र संघ में पश्चिमी देशों का बहुमत और प्रभाव था ही। यहूदियों को इनका वरदहस्त भी प्राप्त था। अतएव सन् १९४९ में संयुक्त राष्ट्र संघ के एक प्रस्ताव के अनुसार फिलिस्तीन का विभाजन करके इजराइल नाम से यहूदी राज्य की स्थापना की गयी। बाकी हिस्से को जोर्डन कहा गया, जो फिलिस्तीन की अरब जनता को दिया गया। दोनों की सीमा पर स्थित जेरूसलम शहर को भी उसी धार्मिक आधार पर—इसे जातीय आधार भी कहा जा सकता है, क्योंकि अरब कोई धर्म नहीं जाति है—दो टुकड़ों में बाँट दिया गया।

इजराइल और जोर्डन का मामला अब वस्तुतः यहूदी और अरब का मामला बन गया है। घृणा, वैमनस्य और प्रतिहिंसा अब दो देशों से चलकर दो जातियों में फैल गई है। सन् १९४८ से ही इन दोनों छोटे-छोटे देशों ने

अपनी विचित्र समस्याओं और समाधानों द्वारा सारे विश्व का ध्यान आकर्षित किया है। अतएव मेरी जेरूसलम की यात्रा का कारण केवल ऐतिहासिक स्मारकों का दर्शन करना नहीं बल्कि उसकी वर्तमान स्थिति को समझना और देखना भी था।

मैंने जिस जेरूसलम को देखा और जिसकी चर्चा यहाँ कर रहा हूँ वह जोर्डन का जेरूसलम है। इच्छा तो इजराइली जेरूसलम भी जाने की थी, ताकि दोनों ओर की स्थिति का प्रत्यक्ष अवलोकन कर सकता। पर दोनों देशों में अनबन होने के कारण इतनी कानूनी कठिनाइयाँ थीं कि वह फिलहाल असम्भव लगा। दूसरे, हमारे देश ने इजराइल राज्य को अभी तक मान्यता नहीं दी है, जिसके कारण दौत्य सम्बन्ध न रहने से भारतीयों को वहाँ जाने में काफी परेशानी होती है।

टूरिस्ट कार्यालय में पहुँचते ही अवीदा महाशय ने मुझे यहूदी-अरब विवाद पर एक पुस्तक भेंट की। होटल पहुँचा तो वहाँ भी एक पर्चा मिला। बाद में भी कई जगह कुछ-न-कुछ साहित्य मिलता रहा है। मैं कहता, मुझे इसकी कोई आवश्यकता नहीं। मैं आपके मामलों से भलीभाँति परिचित हूँ। पर वे न मानते। भड़कने के आदी यात्रियों को इस साहित्य वितरण में प्रचार की गन्ध भले आये, पर अरब लोगों में अपने प्रति हुए अन्याय की सही जानकारी दुनियाँ वालों को देने की ऐसी उत्कट इच्छा है कि वे प्रचार-कार्य पर अत्यधिक व्यय कर रहे हैं।

नृतत्वशास्त्रीय दृष्टि से यहूदी और अरब, दोनों एक ही जाति के—सैमेटिक जाति के हैं। मूल उत्पत्ति और भाषा दोनों में इनका रक्त का सम्बन्ध मिलता है। इनका मूल निवास भी पृथ्वी के एक ही भाग—आज का मध्यपूर्व—में था। प्राचीन फिलस्तीन या मध्ययुगीन ट्रांसजोर्डन में इनमें से कौन पहले आया, यह एक हद तक ही विवादास्पद है। पर इसका महत्त्व इस तथ्य से कम हो जाता है कि अरब लगभग दो हजार वर्षों से फिलस्तीन में रह रहे हैं। इतने लम्बे समय तक किसी देश में रहने वाली जाति किसी भी कानून, नियम और आदेश के अनुसार विदेशी नहीं करार दी जा सकती, चाहे उस देश में कितनी ही सभ्य जातियाँ कितनी ही संख्या में पहले से रही हों। अरबों की यही सबसे बड़ी शिकायत है कि उन्हें उनके ही देश में विदेशी करार देकर निकाल दिया गया है और उनके स्थान पर सदियों से अमरीका और यूरोप में रहते आये यहूदियों को बसा दिया गया है।

जीसस के जन्म और मृत्यु के देश में—२

□ □ □
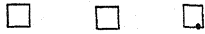
दोपहर के बारह बजे जब होटल से निकला, तो रेगिस्तानी प्रदेश के अनुरूप ही सारा परिवेश तेज धूप की उज्ज्वलता से भरा था। पर मेरा मन उपर्युक्त बातों की धुन्ध से भरा था। मेरे पास जेरूसलम की इतनी जानकारी और साथ में इतना साहित्य था कि गाइड की कोई जरूरत नहीं थी। नक्शे की मदद से अपने खोज-अभियान पर निकल पड़ा।

इजराइली भाग से जोर्डनी जेरूसलम काफी छोटा है, जिसकी आबादी कुल पचास हजार है। इजराइल को वैसे भी शहर का आधुनिक भाग मिला था। तिस पर उसका यूरोपीय ढाँचे पर तेजी से आधुनिकीकरण हो रहा है। पर जोर्डनी भाग अभी भी प्रायः प्राचीन ही है। अर्थाभाव और विस्थापितों की समस्या की वजह से अरबों ने नवनिर्माण का काम उस वृहत पैमाने पर नहीं शुरू किया है, जिस पर यहूदियों ने किया है। तथापि प्राचीन स्मारकों के अगल-बगल से अनेक नयी इमारतें बनती जा रही हैं, जो इस अत्यन्त पिछड़े प्रदेश की जनता के लिए नयी आशा की परिचायक हैं। स्वयं शहर वस्तुतः दो भागों में बँटा है। एक भाग पुराने प्राचीर से घिरा है, जिसे सोलहवीं सदी में तुर्की शासकों ने बनवाया था और दूसरा इसके बाहर मैदान और चट्टानों पर बिखरा हुआ था। पहला भाग बिल्कुल प्राचीन तौर-तरीके का है। संकरी गलियों में बनी छोटी-छोटी कोठरियों में सजी दुकानें, वैसी ही खिड़कियाँ, दरवाजे और छतें। पत्थरों की पगडण्डी पर कोई सवारी नहीं जाती। जगह-जगह बुर्ज और दरवाजे बने हैं, जिनकी संख्या सब मिलाकर ४१ है। सात प्रमुख द्वारों में आजकल केवल चार खुले रहते हैं। दमिश्क दरवाजा इनमें सर्वप्रमुख है, जो शहर का एक तरह से प्रवेश द्वार है। छोटे व्यापारियों की दुकानों पर अधिकांश गरीब ग्राहक ही आते हैं। इसलिए इन संकरी गलियों में गन्दे, लबादा और पगड़ी पहने गरीब, पुराने ढंग के लोगों के साथ टकराते हुए चलने में उसी जेरूसलम का स्मरण आता है, जिसका चित्रण 'टेन कमाण्डमेण्ट्स', 'बेन हर' आदि बाइबिल-युग-विषयक फिल्मों में मिलता है।

अधिकांश धार्मिक या ऐतिहासिक स्मारक पुराने जेरूसलम में ही हैं। माउण्ट मोरिया पर बनी मस्जिद, जो अब 'डोम आफ दि राक' कहलाती है, इस्लाम का कदाचित सबसे प्राचीन स्मारक है। कहते हैं इसी चट्टान पर इब्राहिम का, जिसे इस्लाम सबसे पहला मुसलमान मानता है, बलिदान हुआ था। उसके लगभग एक सौ वर्ष बाद जब मुसलमान अरबों ने जेरूसलम में प्रवेश किया, तो उस स्थान पर यह गुम्बदनुमा मस्जिद बनवा दी। यह मस्जिद इस्लामी वास्तुकला की दृष्टि से दुनिया की सबसे सुन्दर ऐतिहासिक इमारतों में से एक मानी जाती है। गुम्बद पर सुनहरे पानी से पुताई की गयी है, जिस पर उत्कृष्ट चित्रकारी है। दीवारों पर बहुत ही सुन्दर कलात्मक अरबी लिपि में कुरान की आयतें लिखी हैं। इमारती खूबसूरती की दृष्टि से कुछ विशेषज्ञ इसकी तुलना ताजमहल और इस्ताम्बूल की नीली मस्जिद से करते हैं। विशाल अहाते में मस्जिद के आस-पास अनेक छोटी मस्जिदें, मीनारें, फव्वारे एवं संग्रहालय और पुस्तकालय भी है। मेरा मत है कि जेरूसलम में यह सबसे आकर्षक और लोकप्रिय स्मारक है, जिसे टूरिस्ट लोग सबसे पहले ही देखना पसन्द करते हैं। उच्च स्थान पर होने से शहर के हर भाग से यह दिखायी देता है, जिससे भी लोगों की उत्सुकता अनायास बढ़ती है। मक्का और मदीना के बाद मुसलमानों के लिए सबसे पवित्र तीर्थ जेरूसलम ही है। इस्लामी देश में होने के कारण भी यहाँ तीर्थयात्रियों की भीड़-सी मची रहती है। रूस में जनक्रान्ति होने से पहले वहाँ के लाखों मुसलमानों में हजारों प्रतिवर्ष जेरूसलम तीर्थ के लिए आया करते थे। अब गत पचास वर्षों से इसमें बहुत कमी आ गयी है।

मुसलमानों और यहूदियों का ही नहीं, जेरूसलम ईसाइयों का भी तीर्थ है। उनके लिये तो यह सर्वाधिक पवित्र और ऐतिहासिक स्थान है। जेरूसलम के निवासी तो यहाँ तक कहते हैं कि ईसाई धर्म का 'होली सिटी' (पवित्र नगरी) रोम नहीं जेरूसलम है। यदि रोम को पवित्र नगरी मान भी लिया जाये, तो वह केवल रोमन कैथोलिक चर्च के लिए, समस्त ईसाई धर्म के लिए नहीं। इस पर कई बार गम्भीर वाद-विवाद भी हो चुका है, पर रोमन कैथो-लिकों का बहुमत होने के कारण रोम की वर्तमान प्रतिष्ठा में खलल नहीं पड़ पाता। दूसरे, रोम यूरोप में—पश्चिमी संसार में—है, जहाँ का एकमात्र धर्म

ईसाई धर्म है । जबकि जेरूसलम इस्लाम धर्मावलम्बी एक अरब देश में—एशिया में—है । इसलिए स्वाभाविक ही पश्चिमी यूरोपीय देश जिनमें लगभग कोई धर्म निरपेक्ष नहीं है, अपने धर्म को अधिकाधिक यूरोपीय जामा पहनाने के लिए उससे सम्बन्धित स्थानों और स्मारकों को यूरोपीय क्षेत्रों में ही देखना पसन्द करते हैं । आज भी अनेक ईसाई—पश्चिम के—ऐसे हैं, जिन्हें यह नहीं मालूम है कि ईसा वस्तुतः एशियाई व्यक्ति थे और ईसाई धर्म पूर्व का धर्म है, पश्चिम का नहीं । ईसा को नीली आँखों और गोरी चमड़ी वाला चित्रित करने का तो अब सर्वत्र रिवाज हो गया है । जब विद्वानों ने इस पर आपत्ति उठायी कि ईसा मसीह एशियाई थे और उनको उसी रूप में दिखाना चाहिए और देखना भी चाहिए, तो धर्म के संरक्षकों ने तत्काल यह दलील देकर मामले को खत्म करना चाहा कि आराध्य देव की कल्पना, जिस रूप में की जाये उसी रूप में वह सही है । विवाद आगे बढ़ा, तो कुछ इतिहासकारों ने, जो अब भी ईसा को ऐतिहासिक नहीं केवल पौराणिक व्यक्ति (मिथ) मानते हैं—तुरन्त अपना प्रमाण पेश किया कि इन्हीं विरोधभासों से यह सिद्ध होता है कि ईसा केवल एक काल्पनिक चरित्र थे, ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं । तब से धर्माध्यक्षों ने इस विषय पर चुप्पी साध ली है ।

जो भी हो, जेरूसलम सचमुच ईसाई धर्म का जन्म-स्थान है । इसके पास ही एक कस्बे में ईसा मसीह का जन्म हुआ था और बिल्कुल वर्तमान शहर में उनको सूली पर चढ़ाया गया था । एवं दफना देने के बाद कब्र से निकलकर उन्होंने पुनरुत्थान प्राप्त किया । यह स्थान आज भी परम्परागत तौर पर "होली सेपल्चर' के नाम से प्रसिद्ध है. जहाँ ईसा की प्रथम शताब्दी में ही एक पूजास्थल बना दिया गया था । बाद में कई बार बन-बिगड़कर बारहवीं सदी में अन्तिम रूप से एक सुन्दर गिरजाघर बन पाया । पहले यह शहर के बाहर पड़ता था । अब बस्ती बढ़ जाने के कारण उसके भीतर आ गया है । प्रतिवर्ष क्रिसमस पर यहाँ पच्चीस दिनों का विविध ईसाई मतावलम्बियों द्वारा उत्सव किया जाता है, इसमें रोमन कैथोलिक आंग्लिकन चर्च, ल्यूथरन चर्च, ग्रीक आर्थोडाक्स चर्च, अरमीनियन चर्च, सीरीयन चर्च इत्यादि प्रायः सभी बड़े और प्रमुख चर्च भाग लेते हैं, पूर्ण मैत्री भाव और विशुद्ध धर्म-निष्ठा से ये सब आपसी भेदभाव भूलकर अपने-अपने आयोजन ही नहीं करते, बल्कि एक-दूसरे के कामों और

उत्सव में भाग भी लेते हैं। पश्चिम में विभिन्न मतावलम्बी ईसाइयों के सहअस्तित्व या आपसी सहिष्णुता का जैसा लज्जास्पद रिकार्ड रहा है उसे देखते हुए जेरूसलम में उनका सहअस्तित्व सचमुच ही आश्चर्यजनक है। ईसाई ही नहीं, मुसलमान और यहूदी भी जेरूसलम में अपने-अपने त्योहार मनाते हैं, जिनमें हर धर्म और सम्प्रदाय के लोग स्वेच्छा और परम्परा से सहयोग करते हैं। वस्तुतः कोई भी उत्सव पूरे नगर का उत्सव बन जाता है। इसमें भी कम विरोधाभास नहीं है कि जिस जेरूसलम में धर्म ने मनुष्य के दिलों को ज़हर से भर दिया है, उसी जेरूसलम में यह स्वस्थ परम्परा आज भी बनी है।

इन दो स्मारकों को देखने में ही चार घण्टे लग गये। रेगिस्तान की जाड़े में भी दिन की धूप जल्दी थका देती है। पर आस-पास कहीं बैठ कर विश्राम करने लायक जगह नहीं दिखी। चाय या भोजन की जो दूकानें थीं, सब पुराने ढंग की जैसे हमारे ढाबे हुआ करते हैं। थोड़ा-सा सहारा लेकर कहीं बैठ जाइये और खा-पीकर अपना रास्ता लीजिए। उस पर मक्खियों और विविध प्रकार की दुर्गन्धों से लड़िए, सो अलग। जिस दूकान पर भी जाता, सामने अण्डों से भरी लोहेदार जाली झूल रही है। बगल में अंगारों पर कबाब सुलग रहा है। और ठीक कुर्सियों से सट कर एक छोटी, मैली मेज पर चाय बन रही है। कहीं मेज और कुर्सी के बीच से निकलने की कोशिश की, तो निश्चय जानिए, उसके चोगे की कुछ मैल आपकी विलायती पोशाक पर जरूर उतर आएगी। कहीं-कहीं तो देखा कि ठीक दरवाजे पर तीतर, बटेर, मुर्गी जैसे परिन्दों की कोई पिटारी रखी है, जिसे परे बचाकर ही आप भीतर जा सकते हैं।

पुरानी बस्ती के चार-पाँच और दर्शनीय गिरजे और स्मारक देख कर छह बजा दिये। अब जेरूसलम का आनन्द लेते ही बनता था। सूरज ढल गया था। नारंगी धूप इधर-उधर आड़ में छिपने लगी थी। दूर कहीं समुद्र से हल्की, शीतल बयार, पहाड़ियों, घाटियों और रेत के टीलों का आलिंगन करती हुई जेरूसलम की बूढ़ी काया से आ टकराई। मैं होटल की ओर भागा। जल्दी से कैमरे पर्चे-नक्शे फेंककर हाथ-मुँह धोया और कपड़े बदल कर बाहर आ गया। सड़क की ऊँचाई उतर रहा था कि लगा कैमरा कमरे में छोड़ कर भूल की। क्षितिज पर सूर्य अपनी विदाई का सिन्दूरी परिधान पहने रह-रहकर हमारी ओर झाँकता

और छिपता जाता। समस्त पहाड़ी प्रदेश दिन-रात की सन्धि-बेला में एक अनोखे प्रकाश से उद्भासित हो उठा था। बहुत दिनों से इतना गौरवपूर्ण सूर्यास्त नहीं देखा था। अतएव सड़क के किनारे एक छोटी-सी चट्टान पर बैठकर इत्मीनान से देखने लगा।

अरब लोग स्वभावतः अधिक जिज्ञासु नहीं होते। जेरूसलम में अक्सर विदेशियों के आने-जाने से उनकी अभिरुचि वैसे भी कम हो जाती है। तिस पर हम भारतीयों का रूप-रंग उनसे बहुत भिन्न नहीं होता। अन्यथा टूरिस्ट समझकर ही कुछ मुनाफा मारने की गरज से दिलचस्पी दिखाते। अब तो साथ में कैमरा भी नहीं था कि वे मुझे विदेशी या कम से कम टूरिस्ट होने का अनुमान लगाते। सो अपने राम कई मिनट तक निश्चिन्त होकर उस व्यस्त सड़क के किनारे चट्टान पर निरालेपन के साथ बैठे रहे। इतने में देखा कि पास ही एक टैक्सी आकर रुकी। ड्राइवर मेरी ओर देखकर कार में बैठे बोला—"महरबा (हलो या नमस्ते के अर्थ में अरबी का शब्द)!" और चुप हो कर मेरी ओर देखता हुआ बैठा रहा, मानो मेरी प्रतीक्षा कर रहा हो। मैंने भी 'मरहबा' कह कर अंग्रेजी में पूछा—"कहिए, क्या बात है?" सुनते ही उसने आश्चर्य से आँखें फाड़ीं और 'अल इल्लाह' जैसा कुछ मुनमुना कर टैक्सी स्टार्ट की और चला गया। मैं मुँह बायें देखता रह गया। बहुत कोशिश की पर समझ न सका। बाद में होटल लौटने पर मैंने एक कर्मचारी से पूछा, तो उसने भी रहस्यमय ढंग से कुछ मुस्कराकर बात टाल दी। मेरी उत्सुकता बढ़ती ही गयी। मुझे यकीन था कि इसमें कोई रहस्य है और यहाँ के लोग जान-बूझकर छिपा रहे हैं। दूसरे सवेरे मैं काहिरा के लिए सीट रिजर्व कराने एक टूरिस्ट ब्यूरो में गया, तो एक लड़की ने मेरी विशेष मदद की। काफी मिलनसार लगी तो मुझे कल शाम वाली घटना याद आ गई। मैंने पूछ लिया। पहले तो वह शरारत से कुछ हँसी फिर गम्भीर हो कर बोली—"हमारे यहाँ इजराइल से हजारों शरणार्थियों के आ जाने से आर्थिक ही नहीं, कुछ नई सामाजिक समस्याएँ भी पैदा हो गयीं हैं। कुछ नौजवान औरतों ने—विशेषकर जिनके पति, पिता या भाई यहूदियों के साथ संघर्ष में मारे गये—विवश होकर शरीर तक बेचना शुरू कर दिया है; छिपे तौर पर। कुछ टैक्सी वालों के द्वारा वे अपना पेशा चलाती हैं। उनके पास जाने के इच्छुक व्यक्ति अक्सर किसी एकान्त या अलग स्थान में खड़े हो

जाते हैं, जहाँ वे टैक्सी वाले से निश्चित होकर सौदा कर सकें। इसीलिए आपको टैक्सी वाले ने समझने में भूल की। किन्तु इन औरतों में जातीय सम्मान या अभिमान कहें—भी इतना प्रबल है कि विदेशियों से भरसक दूर रहती हैं। टैक्सी वाले के अचानक भाग जाने का यही कारण था। उसने आपको पहले जोर्डनी समझा होगा। होटलवाले ने भी बताने से इंकार इसलिए किया कि वह अपने देश या देश की स्त्रियों को बदनाम नहीं करना चाहता था।"

यह कहते ही वह अचानक चुप हो गयी। मैं समझ गया कि उसमें अपराधी भाव आ गया है। मैंने सहानुभूति के स्वर में कहा—"मुझे दुःख है, मेरी वजह से आपको वह सब बताना पड़ा, जिसे आपका दिल नहीं चाहता था।"

"नहीं-नहीं। मैं इस मिथ्या जातीय सम्मान पर विश्वास नहीं करती। यह जरूर है कि पवित्र और धार्मिक स्थान होने के कारण जेरूसलम में बड़े शहरों की ये पाप-वृत्तियाँ नहीं होती थीं। पर परिस्थितियाँ बदल गयीं हैं तो, समाज और मनुष्य भी बदलेगा। दूसरे, मेरा यह भी ख्याल है कि वेश्यावृत्ति किसी-न-किसी रूप में फिलस्तीन-विभाजन के पहले भी थी। तब फिर आज भला यह पाखण्ड क्यों? हम हर चीज को इजराइल पर कब तक थोपते जायेंगे?"

मुसलमानी नारी-समाज के मानदण्ड से इस २४-२५ वर्षीया युवती का मानसिक विकास अत्यन्त सराहनीय था।

जिन दिनों १९४७ और १९४८ में हमारे देश में साम्प्रदायिक दंगों और पाकिस्तान से भागे हुए हिन्दू शरणार्थियों की जघन्य स्थिति थी, उन्हीं दिनों फिलस्तीन में यहूदियों और अरबों के बीच इसी काण्ड की भूमिका तैयार हो रही थी। दुनिया देख रही थी कि धार्मिक आधार पर देश को चीरने के कैसे पाशविक परिणाम होते हैं। फिर भी संयुक्त राष्ट्र अमरीका के द्वारा पश्चिम के लोकतन्त्री राजनीतिज्ञों ने फिलस्तीन वालों पर छुरी चलवा ही दी। इतना ही नहीं, भविष्य के उन शरणार्थी समस्या की कोई तैयारी तक नहीं की गयी। उन दस लाख अरबों का, जो अब यहूदी अर्थात् इजराइली क्षेत्र में पड़ गये थे, जीवन धर्ममूलक प्रतिहिंसा के अन्धड़ में तिनके की तरह हो गया। जोर्डन के सभी शहर और कस्बे शरणार्थियों के टिड्डी दल से भर गये। राजधानी अम्मान में वही दृश्य था, जो ४७-४८ में कलकत्ता, दिल्ली, अमृतसर वगैरह

में था। कैम्पों में नारकीय जीवन शुरू हो गया। गरीब जोर्डन अपने अभागे भाइयों को कहाँ तक अपना पेट काटकर खिलाता। राष्ट्रसंघ ने मदद करने की कोशिशें शुरू की। उसके मध्यस्थ काउण्ट बर्नाडोट ने शरणार्थियों के शान्तिपूर्ण लेन-देन की कोशिश की, तो आतंकवादियों ने उनकी भी हत्या कर दी। हजारों की संख्या में अरब शरणार्थी लुटे-पिटे, किसी प्रकार अपनी जानें बचाकर इजराइल से भागकर जोर्डन में आने लगे। उनकी भूमि, सम्पत्ति, धन वगैरह को सुरक्षित रखना दूर, बिना हरजाना दिये जबर्दस्ती छीनकर यहूदियों ने उन्हें नगे पहाड़ों और रेत की वीरान दुनियाँ में बेसहारा छोड़ दिया। हजारों को मौत के घाट उतार दिया। किसी देश के बँटवारे की लीला संसार देख चुका है। वह देर-सबेर निभ जाता है। प्रान्त का बँटवारा भी होता रहा है। पर किसी शहर का बँटवारा कितना हृदय विदारक और निर्मम हो सकता है, इसका बोध सबसे पहले बर्लिन में हुआ था और अब जेरूसलम में देख रहा था। देश का बँटवारा किसी मकान के बँटवारे के समान है। प्रान्त का बँटवारा भी एक कमरे के बँटवारे की तरह हो सकता है। किन्तु किसी शहर का विभाजन स्वयं मानव शरीर का विभाजन है, मानव हृदय का विभाजन है। एक सीमित छोटे-से क्षेत्र में पास-पड़ोस के रहने वालों को, पुराने मित्रों को, आत्मीय स्वजनों को एक दूसरे से अलग करके और आमने-सामने खड़ा करके बीच में लोहे के कँटीले तार की अलंघ्य दीवार खड़ी कर दी जाती है। वे दोनों एक दूसरे को और फिर लोहे के कांटों को देखते हैं, छटपटाते हैं, आपा खोकर आगे बढ़ते हैं और फिर कलेजे पर मुक्का मारकर रह जाते हैं। यह है स्थिति उस जेरूसलम की जहाँ एक दिन मानवता की जान बचाने की खातिर ईसा ने अपनी जान लगा दी थी, जहाँ इब्राहिम ने अपनी और अपने बेटे की बलि देकर नये युग का श्रीगणेश किया था, जहाँ ईसाई, यहूदी और इस्लाम धर्म का परम्परागत मिलन-स्थान है। क्या इसी धर्म का चित्र सूली पर चढ़े ईसा की कल्पना में था, जिसको साकार करने के लिए वह कब्र से उठकर फिर इस पृथ्वी पर आये? जेरूसलम के रोम-रोम से यह प्रश्न प्रतिबिम्बित हो रहा था। वही शाश्वत, सुपरिचित प्रश्न।

पुराने शहर के पश्चिमी प्राचीर के उस पार यहूदी-क्षेत्र पड़ता है और इस पार अरब-क्षेत्र। अरब-क्षेत्र में खड़ा मैं इमारतों, घरों, दूकानों, मस्जिदों

और गिरजों को देख रहा था और मेरी पीठ के पीछे दीवार के उस ओर एक भिन्न जीवन चल रहा था, जो वस्तुतः समान होते हुए भी कितना भिन्न था! जो वस्तुतः एकदम निकट होते हुए भी कितनी दूर था! दीवार के दोनों ओर रहने वाले लोग एक दूसरे को इतना जानते-पहचानते हैं कि वे एक दूसरे के दिल की धड़कन तक सुन सकते हैं। लेकिन वे एक दूसरे को छू नहीं सकते, एक दूसरे की ओर देख नहीं सकते, एक दूसरे से बात नहीं कर सकते। दमिश्क दरवाजे से कुछ ही गज की दूरी पर कुछ खाली नीची जगह थी, जिसके उस पार पश्चिम की ओर कुछ ऊँची इमारतें और चौड़ी सड़कें दिखायी दीं। किन्तु उधर कोई जाता नहीं दिखा। मैं कारण समझ गया। चुपचाप खड़ा सोच रहा था। पास ही चार-छह विदेशी एक गाइड के साथ खड़े थे, फोटो खींच रहे थे। मैंने गाइड को कहते सुना—"श्रीमन्, ये सामने जो सड़क और मकान देख रहे हैं, यहाँ से शायद दो सौ गज दूर हैं। पर दरअसल यह यहाँ से अनन्त दूरी पर हैं, जो हम कभी न पार कर सकेंगे। इन सड़कों पर मैं, मेरे पिता, उनके पिता और शायद उनके भी पिता चले-फिरे हैं। उन पेड़ों की छाया में हमने अपने पसीने से लथपथ शरीरों को शीतल किया है। मगर अब उनकी ओर देखने का भी मन नहीं करता।"

जेरूसलम से जब पूरी जान-पहचान हो गयी, तो एक दिन सवेरे बैथलेहेम, जो वहाँ से ११ मील है, जाने का कार्यक्रम बनाया। टैक्सी के लिए मोटर स्टैण्ड तक गया, तो देखा एक बस उसी समय बैथलेहेम के लिए छूट रही थी। टैक्सी में आराम होते हुए भी, सार्वजनिक बसों से यात्रा करना कई दृष्टियों से ज्ञान-वर्द्धक होता है। लोगों का आपसी बर्ताव, ड्राइवर का व्यवहार, मोटर सर्विस की व्यवस्था, पैसे का लेन-देन सम्बन्धी कई अनुभव मिलते हैं। आमतौर पर बस ड्राइवर विदेशी भाषाएँ नहीं जानते। सवारियों में अधिकांश गरीब या निम्न-मध्यम श्रेणी के व्यक्ति ही होते हैं, जो विदेशी भाषाएँ नहीं जानते। इससे भी कई विशिष्ट अनुभव होते हैं। उदाहरण के लिए जब मैंने रेजगारी से भरा हुआ हाथ ड्राइवर की ओर बढ़ाया, तो वह किसी तरह भी अपने हाथ से टिकट का दाम लेने को तैयार न हुआ। अन्त में एक सवारी को मदद करनी पड़ी।

बैथलेहेम जेरूसलम से बहुत छोटा है, लेकिन उतना ही अधिक साफ और

संसार का सबसे मशहूर जुआ-केन्द्र : मॉण्टेकार्लो

□ □ □
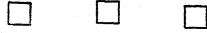
भूमध्य सागर के किनारे अविचल खड़ी ऊँची एक चट्टान पर से उस दिन हमारे गाइड ने दायें-बायें हाथ नचा कर जब यह कहा, "वह देखिए। उस झाड़ी से उस सड़क तक, उस पत्थर से उस होटल तक, उस मकान से उस दूकान तक मोनाको ही मोनाको है।" तो हम लोगों को हँसी आ गयी। मुझे छोड़ बाकी सब पर्यटक यूरोपियन थे। गाइड मेरी ओर मुखातिब होकर प्रसिद्ध फ्रेंच अदा से बोला, "श्रीमान्, आप तो भारत के हैं। वल्लाह कमाल है ! आपका देश हमारे लिए एक दुनिया के समान है। लेकिन मोनाको मोनाको ही है। छोटा है, पर देखिए क्या फिजां है ! क्या शान है ! क्या रंगीनी है ! वाह, वण्डरफुल !" कहकर स्वयं ही मुग्ध भाव से दूर धूप में चमकते हुए कासिनो और राजकुमार रैनियर के महल को देखने लगा। उसका रस भंग किया मेरे पास खड़े एक शोख अंग्रेज युवक ने, "अभी तो सूरज चमक रहा है। रंगीनी तो रात में आयेगी जब बिजली के जादुई प्रकाश में ट्रम्पेट बजेंगे, नर्तकियाँ थिरकेंगी, जुआरियों की जेबे खनखनायेंगी।"

मोनाको सचमुच रात्रि-लीला का देश है। कासिनो, जुआघर, नाइट-क्लबों, नाचघरों, बारों, रेस्तराँ और होटलों की आबादी का यह सूक्ष्म देश इनके वैभव, आमदनी और उपभोक्ताओं पर ही पलता है। पर मोनाको की इस रूप सज्जा को देखने के लिये अभी हमें कई घण्टों की प्रतीक्षा करनी थी। चार बजे हमारी टूरिस्ट बस सात मील दूर फ्रेंच रिवीरा की प्रमुख रंगस्थली नीस में हमें छोड़ देगी। वहीं से हमारी यात्रा प्रारम्भ हुई थी। शाम को जब अंधेरे का पर्दा समस्त मानव सभ्यता पर छा जाता है, हमें फिर मोनाको वापस आना था। रात में मोनाको को न देखना उसे बिल्कुल न देखने के समान है।

यदि कैथोलिक धर्माध्यक्ष पोप की राजधानी वैटीकन नगर को, जो रोम शहर में ही बसा है, राज्य न मानकर केवल नगर या नगर-राज्य माना जाये तो मोनाको संसार का सबसे छोटा राज्य है, जिसका क्षेत्रफल हमारे एक पंजाबी

मित्र के फार्म के बराबर केवल ३८८ एकड़ और आबादी दिल्ली के किसी मुहल्ले के बराबर केवल २०४२२ है, जिसमें विदेशी भी शामिल हैं। अन्य तीन नन्हें राज्य हैं, वैटीकन (क्षेत्रफल १०६ एकड़, आबादी १०००), सैन मारिनो (क्षेत्रफल ३८ वर्ग मील, आबादी १३७३०) और लाइकतेस्ताइन (क्षेत्रफल ६२ वर्ग मील, आबादी १४७५७)। स्वयं योरोप का क्षेत्रफल भारतीय उपमहाद्वीप से थोड़ा ही ज्यादा होगा। पर यह छोटा-सा महाद्वीप (पारिभाषिक दृष्टि से इसे वस्तुतः प्रायद्वीप ही कहा जाना चाहिये) ३१ टुकड़ों में बँटा हुआ है। इसमें ३१ बड़े-छोटे देश हैं। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व ३३ देश थे। राजनीतिक ही नहीं आर्थिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक और भाषाई दृष्टि से भी इतने छोटे भूखण्ड में जितनी विविधता और विषमता मिलेगी उतनी पृथ्वी के अन्य किसी भाग में नहीं। योरोप के भूगोल और जलवायु के कारण वहाँ के निवासियों की बनावट ऐसी अनोखी है कि प्रागैतिहासिक काल से ही छोटे-छोटे जनसमूहों में, छोटी-छोटी रियासतों में, छोटी-छोटी सम्प्रदायों में हमेशा से साधारण बातों पर कलह, कशमकश और युद्ध होते रहे हैं। किसी घाटी में बसने वाले ४-६ हजार लोगों के कबीले ने भी अपने को एक अलग देश और राष्ट्र माना। फलस्वरूप आज उसी योरोप में जहाँ से मानवता, स्वतन्त्रता, एकता, विश्वबन्धुत्व, विश्व राज्य आदि न जाने कितनी प्रकार की पुकारें सुनाई दे रही हैं, ढाई दर्जन छोटी-बड़ी राजनीतिक इकाइयाँ देश या राष्ट्र का गौरवपूर्ण पद अपने-अपने सीने से लगाये आत्ममग्न हैं। आज अन्तर्राष्ट्रीयता के युग में योरोप अनेकता, विभाजन और आत्मपरक राष्ट्रीयता का प्रतीक बन गया है। फ्रांस की दक्षिणी जल-सीमा पर स्थित नन्हा-मुन्ना राज्य मोनाको इस प्रतीक का बड़ा मनोरंजक प्रतिनिधित्व करता है।

वैधानिक रूप से प्रभुसत्तासम्पन्न होते हुए भी मोनाको व्यवहार में फ्रांस का एक अंग मात्र है। व्यापार, उद्योग, पानी, बिजली, परिवहन, पर्यटक और खाद्य सामग्री के लिये ही नहीं प्रतिरक्षा और वैदेशिक नीति के लिए भी वह फ्रांस के अधीन है। फ्रेंच भाषा तो चलती ही है, फ्रेंच सिक्का भी वहाँ चलता है। सन् १८६१ की सन्धि के अनुसार फ्रांस को मोनाको के वैदेशिक मामलों के अलावा घरेलू मामलों में भी हस्तक्षेप करने और उनका निरीक्षण करने का अधिकार प्राप्त है। यह किसी भ्रातृभावना के कारण नहीं, बल्कि मोनाको की

विवश भौगोलिक स्थिति के कारण है। एक तरफ जलमार्ग को छोड़ कर बाकी तीन तरफ से मोनाको फ्रांस से घिरा हुआ है। इतना-सा राज्य फ्रांस जैसे बड़े राज्य से घिरे रहने के बावजूद कैसे स्वतन्त्र रह सकता, खासतौर से उस औपनिवेशिक युग में जब फ्रांस की शक्ति की पताका एशिया और अफ्रीका में फहरा रही थी, यह प्रश्न अपने-आपका उत्तर है। प्रायः प्रत्येक प्रशासनिक कार्य के लिये उसे फ्रांस की अनुमति नहीं, तो सम्मति अवश्य माँगनी पड़ती है। सब मिलाकर इससे मोनाको को लाभ ही पहुँचता है। एक कस्वे के बराबर होते हुबे भी आज तक प्रभुसत्तासम्पन्न राज्य बना हुआ है, किसी बाहरी शक्ति ने गुलाम नहीं बनाया, इसका श्रेय भी फ्रांस को है। फ्रेंच आबोहवा के अतिरिक्त फ्रांस के धनी टूरिस्टों, बढ़िया शराबों, नाइट-क्लब के कलाकारों से मोनाको भरा रहता है। उसके लिये यह उद्योग बन गया है। व्यापार-सन्धि के अनुसार मोनाको में आयात होने वाली फ्रेंच उपभोक्ता वस्तुओं पर किसी प्रकार का कर नहीं लगाता या बहुत कम लगाता है। अतएव मोनाको को दैनन्दिन आवश्यकता की बहुत सारी चीजें कम दामों पर मिल जाती हैं जिससे मोनाको सरकार को प्रचुर राजस्व लाभ होता है। पाबन्दियाँ न होने से दोनों राज्यों के बीच कोई सीमा है, इसका अहसास भी नहीं होता। अधिकारी वर्ग भी इसकी चिन्ता नहीं करता।

दो साल पूर्व राजनीतिक कारणों से फ्रांस और मोनाको में कुछ खटपट हो गई। फ्रांस ने टैक्स-रहित निर्यात बन्द कर दिया। अतएव सीमा पर चुंगियाँ बैठाने के लिये जब सीमा-रेखा की खोज हुई तो देखा गया कि यह रेखा मोनाको के कहीं किसी होटल, कहीं किसी पार्क और कहीं किसी के बैठकखाने में होकर जाती है। दो देशों की अपनी व्यक्तिगत प्रभुसत्ता, स्वतन्त्रता और क्षेत्रीय विभाजन का अच्छा-खासा मजाक बन गया। फ्रेंच और मोनाको निवासियों के लिये ही नहीं, विदेशी यात्रियों के लिये दोनों राज्यों के बीच आवागमन बेरोकटोक है। नीस से माण्टेकार्लो जाते समय हमने किस समय मोनाको में प्रवेश किया इसका पता तभी लगा जब हम मोण्टेकार्लो में दाखिल हो गये। किसी वीसा या पासपोर्ट की जाँच नहीं, किसी अनुमति की जरूरत नहीं। इतना होने पर भी मोनाको का शासक अपने को भरपूर राजा समझता है। राजा की ही तरह उसकी शान-शौकत, तामझाम, दबदबा और

ऐशोआराम होते हैं। उसी दर्प और अधिकार की प्रतीति से वह आम चुनाव कराता है, अपने मन्त्रिमण्डल की नियुक्ति करता है और विधान-सभा से कानून बनवाकर पास करता है। लेकिन इन कानूनों का संशोधन, उल्लंघन या अतिक्रमण पेरिस का कोई उच्चाधिकारी कर सकता है। राष्ट्रपति दगाल तक बात जाने की नौबत ही नहीं आने देते। यहाँ तक कि मोनाको का प्रधानमन्त्री भी फ्रांसीसी होता है, जिसकी नियुक्ति पेरिस वाले करते हैं। इसलिए जब फ्रांस ने दो साल पूर्व अपनी पुरानी सन्धि को रद्द करने की घोषणा करके मोनाको पर घेरा डाल दिया तो बेचारे उस चींटी से देश में खलबली मच गई। लगा किसी भी दिन मोनाको संसार के मानचित्र से अन्तर्धान हो जायेगा।

पूरा मोनाको राज्य तीन भागों में बँटा है—माण्टे-कार्लो, मोनाको वील और ल कोण्डामिन। तीनों के बीच किसी फासले का प्रश्न ही नहीं उठता। सब एक दूसरे से मिले हैं। कोई टीले पर स्थित है तो कोई समुद्र तट से लगा हुआ है। इतनी छोटी-सी बस्ती को अत्यन्त सीमित साधनों में किस प्रकार सुन्दर, साफ और व्यवस्थित बनाया गया है यह देखते ही बनता है। पूरी बस्ती एक बड़े बगीचे के समान लगती है, जिसमें शौकीन लोगों ने मानो कुछ घर बनवा लिये हैं। दुनिया के अन्यान्य विख्यात, सुन्दर और कीमती फूल, पौधे, बेलें और घासें माण्टे-कार्लो के पार्कों में लगी है। कासिनो के सामने ही बड़े करीने से कटा-छँटा एक छोटा-सा बगीचा है। बगीचों, मकानों, होटलों और जुआघरों के बीच से होती हुई छोटी-छोटी, साफ, सुन्दर सड़कें। उनके दोनों ओर मद्धिम नीले रंग का प्रकाश। पार्कों में जगह-जगह झाड़ियों के बीच लगे बिजली के बल्ब। सामने कुछ नीचे की ओर समुद्र तट पर प्रकाश का पंक्तिबद्ध प्रतिबिम्ब, उनके इर्दगिर्द डेरा डाले पच्चीस-तीस नौकाएँ और जहाज। उसके सफेद रंग पर पड़ती हुई साँवले चमकीले पानी की लहरों की आभा और रह-रह कर दाएँ-बाएँ से झरती हुई संगीत की मधुर ध्वनि। इन सबसे मोनाको में वह फिजाँ तैयार होती है जिसकी कल्पना मात्र से खिचकर दूर-दूर के यात्री वहाँ बसने या कुछ दिन गुजारने चले आते हैं। मानव-निर्मित सौन्दर्य जो है सो है स्वयं प्रकृति ने मोनाको को अभूतपूर्व सौन्दर्य दिया है। एक ओर अगाध समुद्र का नीला विस्तार और तीन ओर विचित्र आकार-प्रकार की चट्टानों और पहाड़ियों से बनी नीलाकाश के साथ पृष्ठभूमि। क्षण भर के लिए नीरस से

नीरस व्यक्ति भी देखकर स्तब्ध रह जाता है। मौसम भी वहाँ का हर प्रकार से अनुकूल रहता है। न अधिक बरसात और न अधिक गर्मी। ठण्ड भी समुद्र तटीय प्रदेश की तरह प्रिय और शान्त। धूप भी दक्षिणी यूरोप के अनुरूप ही प्रचुर मिलती है। इसलिए उत्तरी योरोप, इंगलैण्ड, हालैण्ड, जर्मनी आदि देशों के लोगों, जिन्हें अपने देश में धूप का अकाल-सा रहता है, सुयोग मिलते ही मोनाको जैसे स्थानों को दो-चार सप्ताह के लिए चले जाते हैं। अन्य टूरिस्ट स्थानों और मोनाको में अन्तर यही है कि मोनाको में अधिकांश रईस लोग आते हैं, क्योंकि मोनाको फ्रेंच रिवीरा के परम्परागत वैभव, आभिजात्य, ऐश और रंगरेलियों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करने के कारण उसी तरह अत्यन्त खर्चीला है। साधारण से साधारण भोजन का दाम करीब ६ नये फ्रांक (१ नया फ्रांक = ९५ नये पैसे) और होटलों में एक रात के लिए प्रति व्यक्ति १५ या २० नये फ्रांक से कम नहीं लगते। अतएव हल्की जेब वाले सैलानी अक्सर नीस में रहते हैं, जहाँ अपेक्षाकृत सस्ते होटल और भोजन मिल जाते हैं। वहाँ से चाहे जब और जितनी बार मोनाको जा सकते हैं। नौ मील तो है ही।

अपराह्न चार बजे तक हमने मोनाको वील और ल कोण्डामिन के कुछ पुराने ऐतिहासिक-—अर्थात ३५०-४०० वर्ष पुराने स्थान देखे। मोनाको वील का भाग वस्तुतः सबसे पुरानी बस्ती है। इसी के नाम से सारे राज्य को पुकारा जाता है। इसकी पुरानी इमारतों में सेण्ट निकोलस का गिरजाघर विशेष महत्वपूर्ण और रोचक लगा। कुछ और भी छोटे-छोटे गिरजे हैं जो मध्ययुगीन रोमन निर्माण कला के सुन्दर उदाहरण हैं। मोनाको वील जिस पहाड़ी पर बसा है, उससे कुछ हटकर पश्चिम की ओर खाड़ी के पास मोनाको राज्य की कदाचित सबसे लाभदायक वस्तु है, समुद्र विज्ञान संग्रहालय (ओशियनोग्राफिक म्यूजियम)। सारी दुनियाँ में ऐसे संग्रहालय इने-गिने ही हैं। १९१० में मोनाको के सुयोग्य प्रशासक राजकुमार अल्बर्ट ने (जिसने अपने राज्य का प्रथम आधुनिक और स्वतन्त्र संविधान बनाया, उसको पास कराके लागू किया और मोनाको को सुदृढ़ आधारशिला दी) इस संग्रहालय की स्थापना की थी। आज यह योरोप भर में विख्यात है और दूर-दूर के विद्यार्थी और नाविक इसको देखने आते हैं। बाद में शाम को हमें जो भारतीय नौसैनिक मिले थे उन्होंने भी इसका उल्लेख किया और देखने का अनुरोध किया। माण्टे-कार्लो की शोभा

रात में ही निखरती है जब नृत्य, संगीत, जुआ और नाना प्रकार के मनोरंजन का दौर शुरू होता है। कासिनो, जिसका शाब्दिक अर्थ जुआघर या रात्रि का मनोरंजनघर (क्लब) होता है, दिन में प्रायः बन्द-सा रहता है। अतएव इस अनुभव के लिए हमें शाम तक प्रतीक्षा करनी थी। पाँच बजे हम नीस लौट आये।

अंधेरा होते ही मानो समस्त फ्रेंच रिवीरा ऊँघने से जाग उठा हो। चारों ओर एक नई चहल-पहल और उमंग फैल गई। शायद मेरी तरह दूसरे लोग भी शाम की प्रतीक्षा में व्यग्र हो रहे थे। नीस का रात्रिकालीन जीवन मैं दो दिन से देख रहा था। अब मन माण्टेकार्लो जाने के लिए उतावला हो रहा था। पास ही होटल के निकट बस स्टेण्ड था जहाँ से मोनाको के लिए बसें छूटती थीं। बस के पास पहुँचने पर देखा कि कई टूरिस्ट एजेन्सियों के एजेण्ट इधर-उधर शिकार की खोज में घूम रहे थे। एक ने मुझे साफ परदेसी देख कर कहा, "आप माण्टेकार्लो जाना चाहते हैं? क्यों न हमारी कम्पनी के बस टूर में शामिल हो जायें? ८ से १२—चार घण्टे की यात्रा होगी। दो नाइट क्लबों में मनोरंजन, मुफ्त शराब, विश्व-विख्यात कासिनो में एक घंटा, पूरे मोनाको रियासत का एक चक्कर, अंग्रेजी-भाषी गाइड की सेवाएँ इत्यादि इसमें शामिल हैं।"

ऐसे स्पेशल बस टूरों के विरुद्ध मेरी शिकायत बहुत पुरानी है। उनकी सुविधाओं और असुविधाओं दोनों से मैं भलीभाँति परिचित था। मैंने साफ इन्कार कर दिया। पर एजेण्ट थे कि छोड़ते ही न थे। एक को टरकाता, तो दूसरा आ जाता। उधर माण्टेकार्लो वाली बस में सवारियाँ चढ़ने लगी थीं। एजेण्टों से बात करते समय अचानक मेरी निगाह बस की खिड़की पर गई। काँच के भीतर से एक भारतीय जैसे दिखने वाले महाशय मुझे जिज्ञासापूर्ण दृष्टि से देख रहे थे। एजेण्ट फिर कुछ कहने लगा, तो मेरा ध्यान उधर से हट कर उसकी ओर लग गया। दुबारा खिड़की की ओर देखा तो वे महाशय हाथ हिलाकर मुझे अभिवादन कर रहे थे। स्पष्ट था वे मुझे भारतीय समझ रहे थे। अब गौर से देखा तो मालूम हुआ उनके साथ दो और साथी हैं और सभी नौसैना की वर्दी में हैं। टिकट लेकर भीतर पहुँचा, तो उन्होंने अपने पास बैठा लिया मानो मेरी प्रतीक्षा में हों। पूछ-ताछ हुई, परिचय हुआ। ये तीनों सैनिक भारतीय नौसेना के जहाज आई० एन० एस० 'बेतवा' के दल के थे जो

सद्भावना बढ़ाने हेतु विश्व-भ्रमण पर निकला था। उसी सिलसिले में उसने मोनाको के बन्दरगाह में लंगर डाल रखा था। शाम को कुछ समय घूमने को मिलता है, इसलिए ये सैनिक नीस देखने आये हुए थे। अब वापस अपने जहाज को जा रहे थे। 'बेतवा' नाम सुनते ही मन एक मधुर उदासी लेकर भर उठा। बुन्देलखण्ड में पला-पुसा हूँ। बुन्देलखण्ड की गंगा बेतवा की कछार में मेरे बचपन के कई महत्वपूर्ण वर्ष बीते थे। पर आज चार साल से इतनी दूर हूँ और ऐसी घुड़-दौड़ी जिन्दगी में हूँ कि ओरछा के जंगल की वे घटनाएँ स्मृतिपटल पर धूमिल-सी पड़ गई थीं। अतएव अचानक इस नाम के जलपोत को देश से हजारों मील दूर विदेश में आया जानकर पुलकित हो गया। कुछ सोचने लगा। अतीत की भूलभुलैया में कुछ खोजने लगा। ध्यान भंग हुआ, तो सोचा अचानक मिल गये देशवासियों से बात न करना अभद्रता होगी।

"कहिए माण्टेकार्लो कैसा लगा ?" मैंने औपचारिकता निभायी।

"कोई खास नहीं। छोटा-सा गाँव है, पर खर्च पेरिस से अधिक होता है। इसीलिये आज कुछ घण्टे नीस में गुजारे। वहाँ कुछ सस्ता है। बड़ा स्थान होने के कारण कई दिलचस्प चीजें हैं जिनमें से चुनाव करना भी सम्भव है।" उनमें से एक ने कहा। मुझे चेतावनी देने के लिये उसने एक मजेदार बात बतायी—

"माण्टेकार्लो में कई चीजों के दाम लोग बढ़ा देते हैं, विशेषकर भोजन, शराब इत्यादि शौक की चीजों के। नाइटक्लब, नाचघर वगैरह से भी दूर रहना भाई। जाना भी तो पहले से कीमत का इत्मीनान कर लेना। अन्यथा अनुमान से दुगुना-तिगुना बिल आयेगा।"

"जुआघरों की बात तो आपने बताई ही नहीं ?" मैंने पूछा।

"हमने उधर जाने का साहस ही नहीं किया। आपका साहस हो, तो जेब सम्भालकर एक बार हो आइएगा। शगल रहेगा।"

बस 'बेतवा' के पास से ही गुजरी, अतएव मैंने भी उसे देखा। प्रथानुसार उसे अच्छी तरह सजाया गया था। प्रकाश से जगमगा रहा था। आगे जाकर बस रुक गई और हमारे नाविक साथी उतर गये।

माण्टेकार्लो आज ही नहीं, बहुत पहले से अपने जुआघर कासिनो के लिए मशहूर है। पश्चिमी जगत में यह ऐसी वृत्तियों के लिये अनोखा केन्द्र-स्थल रहा है। पर अब अमरीका में लास वेगास कदाचित इससे भी आगे बढ़ गया

है । ऐसे धनी देश में जहाँ भी जैसा भी जुआ-केन्द्र खुलेगा अपने विस्तार और क्रियाशीलता में वह सब को मात कर देगा । दरअसल मोनाको की विशेषता अब उसकी अन्तर्राष्ट्रीयता में निहित है । पश्चिमी दुनिया के अनेक विख्यात व्यक्तित्व वर्ष में एकाधिक बार अपना भाग्य आजमाने यहाँ आते हैं । यूनानी उद्योगपति ओनासिस से लेकर अंग्रेज लेखक और राजनीतिज्ञ चर्चिल तक के लिये यह तीर्थस्थान बन गया है । चित्रकार पिकासो और कथाकार सामरसेट मॉम, गायिका मारिया कल्लास और राजकुमारी सोरामाँ के भी दर्शन वहाँ हो जाते हैं । मोनाको के वर्तमान शासक राजकुमार रैनियर के एक अमरीकी सिनेतारिका ग्रेस केली से विवाह करने के बाद, तो वहाँ की अन्तर्राष्ट्रीय 'सुषमा' में चार चाँद लग गये हैं । बहुत-से अमरीकी लखपति जो पहले माण्टे-कार्लो का नाम भी नहीं जानते थे और अपने ही 'माण्टे-कार्लो' लास वेगास से ही सन्तुष्ट थे अब मोनाको में अपनी रिश्तेदारी हो गई समझ कर खूब आने लगे हैं एवं प्रिंसेस ग्रेस (ग्रेस केली का समादृत शाही नाम) की उपस्थिति से गौरवान्वित माण्टेकार्लो की महिमा का विज्ञापन समस्त विलासी-जगत में करने लगे हैं ।

माण्टेकार्लो में जुआ कई प्रकार से खेला जाता है । हमारे देश में जैसे आज भी सर्वत्र कौड़ी, पाशा या ताश का प्रयोग किया जाता है, वैसा वहाँ अब नहीं होता । अधिकांश जुआ स्वचालित या अन्य प्रकार के यन्त्रों से खेला जाता है । इनमें से सबसे प्रमुख है 'आटोमैट' की ही तरह एक यन्त्र जिसे 'स्लाट मशीन' कहते हैं । इसमें एक सिक्का डाल कर किसी विशेष नम्बर पर लीवर दबा देने से यह बदले में या तो कई सिक्के उगल देती है या डाले हुए सिक्के को निगल लेती है । जिस खेल में लाखों की रकम देखते ही देखते एक जेब से दूसरी जेब में पहुँच जाती है, वह एक विशेष प्रकार की मेज पर खेला जाता है । इस पर खिलाड़ियों और संचालक के स्थान निर्धारित रहते हैं । खेल प्लास्टिक या लकड़ी के ठीकरों और कम्पास की तरह एक डिस्क से होता है । इन खेलों में नकद पैसे का विनिमय नहीं चलता । रुपये लेकर चलना धनी और प्रतिष्ठित व्यक्ति की हैसियत के प्रतिकूल है । जीते हुए ठीकरों को ही बाद में बैंकों में भुना लिया जाता है । ये प्राइवेट बैंक भी जुए के खिलाड़ियों की सुविधा के लिये विशेष प्रकार से चलाये जाते हैं । प्रायः सभी बड़े जुआरियों

का लेनदेन उसमे चलता है और उनकी जमा रकम के भीतर ही उन्हें फड़ पर दाँव लगाने दिया जाता है। अमीर से अमीर खिलाड़ी न रुपये लेकर भीतर जाता है और न लेकर बाहर आता है। कुछ बड़ी फड़ों पर तो लोग अपने बैंक के एजेण्टों को भी ले जाते हैं। वही सब जमा-खर्च करता रहता है। इस व्यवस्था के कई लाभ हैं। खेलने वालों को नकद पैसा नहीं ले जाना पड़ता। अतएव रास्ते में या जुआघर में चोरी-डकैती का भय नहीं रहता। रईसों की प्रतिष्ठा बनी रहती है। पैसों के लेन-देन और हिसाब की परेशानी उन्हें नहीं उठानी पड़ती। कोई बेईमानी नहीं कर पाता। कुछ लोग तो अपने साथी जुआरी से अधिक उसके बैंक-एजेण्ट पर विश्वास करते हैं।

लास वेगास में एक साथी ने मुझे एक रोचक घटना बताई थी। कैलीफोर्निया के प्रसिद्ध रईस क्रैमर ने एक बार रात भर जुआ खेला। थककर चार बजे सवेरे बाहर निकल रहे थे कि द्वार के पास उन्हें एक नई स्लॉट मशीन दिखाई दी। यों ही कैसे चलती है देखने के लिये जब उन्होंने डालर का एक सिक्का उसमें डालना चाहा तो देखा उनके पास एक भी पैसा नहीं है। बड़ी रकम होती तो क्लब के मैनेजर से माँग लेते। पर एक डालर उधार परिचारिकाओं को छोड़ और किससे माँगते! कहते हैं चार परिचारिकाओं ने इन्कार कर दिया। अन्त में पाँचवीं को 'दया' आ गई और उसने इस शर्त पर एक डालर उस करोड़पति को दे दिया कि यदि उस सिक्के से जीत हुई तो दसों डालर वह ले लेगी। तथापि माण्टेकार्लो के जुआघर में लेन-देन की निस्बत शायद ही कभी कोई वारदात हुई हो। प्रत्येक व्यक्ति को हारने-जीतने की जितनी अधिक आजादी है उतनी ही कम सम्भावना उनके बीच बेईमानी होने की है। जुआघर में ऐसी सुरक्षा का कारण केवल सम्पूर्ण व्यवस्था या अनुशासन नहीं है, वल्कि माण्टे-कार्लो की पुरानी परम्परा भी है। वर्षों तक वह, जब जर्मनी में राजाशाही थी, जर्मन शासकों और राजकुमारों की जुए की जागीर (गैम्बलिंग एस्टेट) रहा है। राजघराने और अभिजातीय कुल के शौकीन लोगों का वहाँ जमघट होता था। मुख्यतया वहीं परिवेश आज भी बना हुआ है। आधुनिक खिलाड़ियों में भी तमाम ड्यूक, बैरन, लार्ड, प्रिंस, कैजर इत्यादि की उपाधि वाले लोग होते हैं।

जुए जैसे अनैतिक काम का सार्वजनिक रूप में किया जाना भारतवासियों

के लिये अनहोनी-सी बात लग सकती है । विंस्टन चर्चिल जैसे सम्माननीय नेता भी निस्संकोच भाव से इसमें भाग लेते हैं । हमारे यहाँ कोई कल्पना ही नहीं कर सकता कि देश का वर्तमान या भूतपूर्व प्रधान मन्त्री किसी भी स्तर पर जुआ खेलेगा । यदि वह ऐसा करता भी है, तो उसके जीवनभर की प्रतिष्ठा और यश धूल में मिल जायेंगे । यह भेद पश्चिम और पूर्व के भिन्न दृष्टिकोण के कारण है । प्राचीन युग में चाहे जैसा रहा हो, आज भारतीय समाज में जुए को अनैतिक दृष्टि से देखा जाता है । जबकि पाश्चात्य समाज में इस पर ऐसा कोई नैतिक बन्धन नहीं होता । स्वयं बाइबिल में जुए का विशेष रूप से कोई निषेध नहीं है । कुछ देशों में अवश्य इसके हानिकर आर्थिक पहलू और उसके पारिवारिक एवं व्यक्तिगत परिणामों को ध्यान में रखकर इसको अवैध कर दिया था । पर उच्चवर्गीय लोगों में, जिनकी आर्थिक स्थिति प्रायः सुदृढ़ होती है, इसका खुल्लमखुल्ला प्रचार था । उनकी अन्यान्य शौक की चीजों में से यह भी एक थी । अमरीकी शहर लास वेगास के जुआघरों की कोई ऐतिहासिक परम्परा न होते हुए भी उसका वर्तमान रूप काफी अन्तर्राष्ट्रीय और स्वतन्त्र है । कई विदेशी व्यक्तियों के अलावा तमाम अमरीकी उद्योगपति, नेता, लेखक, कलाकार और पदाधिकारी भी वहाँ के जुआघरों में स्लाट मशीनों, डिस्कों और ठीकरों से उलझे दिखाई देंगे । स्लॉट मशीन पर भाग्य आजमाने वाले साधारण भक्तों के लिए तो दरवाजा हमेशा खुला रहता है । चाहे जब जायें । एक सिक्का डालें । बदले में खाली हाथ या भरी मुट्ठी लेकर बाहर निकल आयें । कई राहगीर यों ही अकारण समय काटने के लिये ही वहाँ पहुँच जाते हैं, मशीनें भी छोटी-बड़ी होती हैं जिनमें छोटे-बड़े दोनों प्रकार के सिक्कों से किस्मत परखी जा सकती है ।

'बेतवा' को देखकर हम आगे बढ़े । बस अपने अन्तिम स्टाप पर कासिनो के पास ही रुकी । इसलिये सोचा पहले इस जगत प्रसिद्ध जुआघर से ही परिचय किया जाये । सुन्दर बगीचे को पारकर द्वार पर पहुँचा । द्वारपाल ने लम्बी सलामी दी । भीतर गया । देखा तरह-तरह की स्लॉट मशीनें रखी हैं । तमाम स्त्री-पुरुष लीवर उठा और खींच रहे हैं । उस समय मुझे अचरज लगा था कि इतना जुआ एक ही स्थान पर खेला जा रहा है । पर उसके बाद लास वेगास में जुआरियों, जुआघरों और जुए की मशीनों की जो पूरी बस्ती की बस्ती देखी,

उसे आज यादकर लगता है, माण्टेकार्लो तो उसके मुकाबले संन्यासियों का नगर है। एक फ्रेंच फ्रांक का सिक्का निकाल कर मैं कुछ सोचता हुआ खड़ा था कि किस मशीन में डालूँ। इतने में सामने से एक असाधारण सुन्दर परिचारिका ने आकर कहा—"इतना पशोपेश क्यों? डाल दीजिये सिक्का। एक ही फ्रांक तो है।"

मैंने महज टरकाने के लिये कह दिया, "मैं इस मशीन को चलाना जानता ही नहीं। इसीलिये सोच........।" कासिनो की सुमुखी के पास भला इतना समय कहाँ था। उसने आव देखा न ताव। सिक्का मेरे हाथ से प्रायः छीन कर मशीन में डाल दिया। 'ऐसे करो....यह दबाओ—यह घुमाओ' आदि कह कर लीवर दबा दिया। भाग्य की बात, दस फ्रांक खरखरा कर गिर पड़े। मैं अभी तक मुग्ध भाव से उस अल्हड़ नारी के बेतकल्लुफ अन्दाजों का मजा ले रहा था। सिक्कों की आवाज ने ध्यान भंग किया। हम दोनों हँस पड़े। मैंने कहा—"तुम्हारे हाथ चूम लेने को जी करता है।"

'तो ये दसों फ्रांक मैं ले लूँ?' उसने संगमरमर जैसी श्वेत स्निग्ध अंगुलियों को नचाकर कहा। शरारत से मुस्करा दी सो अलग। मैं जीतकर भी हार गया। जब तक सिक्के समेटूँ, मेरी लक्ष्मी जैसी हठात प्रकट हुई थी वैसे ही अन्तर्धान हो गई।

दस में से एक अपना फ्रांक निकाल लिया। नौ में पाँच और अलग कर लिये। बाकी चार फ्रांक का जुआ खेलने के इरादे से आगे बढ़ा। पर जो भाग्य नारी के हाथों मिला था, वह स्वयं अपने हाथों कहाँ मिलता! चारों फ्रांक खोकर और पाँच फ्रांक का मुनाफा लेकर बाहर निकल रहा था कि देखा वही परिचारिका द्वारपाल से बातें कर रही है। वह भला टोकने से क्यों बाज आती!

"इतनी जल्दी चल दिये?"

"अपनी जितनी हैसियत थी खेल चुका।" मैंने कहा। उसने मुझे करुण दृष्टि से देखा। सोचती होगी बेचारा एक फ्रांक लेकर माण्टेकार्लो आया था। ऐसे मौकों पर सुन्दरियों को अधिक मौका नहीं देना चाहिये अन्यथा बड़े-बड़े विश्वामित्रों का हठ टूट जाता है। इसके पहले कि वह लुभावनी परिचारिका फिर मुस्कराये मैं 'बोंजुअ मदमुजैल' कहकरचल दिया।

आठ बज गये थे। समुद्र से ठण्डी हवा बहने लगी थी। रह-रहकर दूर किसी जहाज का भोंपू बज उठता। सड़क की बत्तियाँ पहाड़ियों पर ऊँचे-नीचे अंधेरे में मोतियों की लड़ियों-सी चमक रही थीं। क्लबों, रेस्तराँ, नाचघरों और दुकानों पर पेड़ों की छाया धीरे-धीरे डोल रही थी। चलते समय कभी दायीं, कभी बायीं ओर से आरकेस्ट्रा की ध्वनि सुनाई पड़ती। जगह-जगह फैश-नेबुल नवीनतम माडल की कारें आ-आकर रुकतीं। उनमें से सुन्दर रोबदार जोड़े निकलते। द्वारपाल की सलामी का मुस्करा कर या अनदेखाकर जवाब देते और अपने चारों ओर पेरिस के अन्यतम परफ्यूमों की महक एवं मिंक कोट की दमक छोड़ते हुए भीतर के मायावी प्रकाश में खो जाते। कासिनो के सामने की जगह अब सैदानों, कैडिलाकों और लिमुजिनों से भर गई थी। फ्रांस की दिशा से कभी-कभी कारों का काफिला-सा आ निकलता और देखते ही देखते उस नन्हें माण्टे-कार्लो की रूमानी दुनियाँ में अपने सवारों के साथ खो जाता। मैं धीरे-धीरे सिकुड़ा-सा पैण्ट की जेबों में हाथ डाले, पेड़ों की छाया में मानो छिपते-छिपते कभी फुटपाथों, कभी पार्कों का सर्वेक्षण करता हुआ घूम रहा था और सोच रहा था। सोच रहा था, क्या इस कार भरी दुनियाँ में मैं ही एक पद-यात्री हूँ ? नहीं, यदा-कदा किसी पेड़ की छाया से मेरे ही जैसा अकेला, एकाकी हमसफर कदाचित अपनी भी मुट्ठी में पाँच फ्रांक दबाये हुए अजीब कसैली दृष्टि से क्लबों, कासिनों के भीतर से आते हुये प्रकाश, गन्ध और ध्वनि को पहचानने का प्रयास करता हुआ आ निकला। हम एक-दूसरे को अंधेरे और प्रकाश के धुँधलके में देखते और मानो साहचर्य का मौन आश्वासन दे कर अपनी-अपनी दिशा में चले जाते।

घूमता ही रहा। किसी सड़क का बार-बार चक्कर लगाता। पार्कों की बैंचों पर बैठता। किसी फूल को पहचानने का प्रयत्न करता। दूर पहाड़ी पर किसी बड़ी इमारत को देखकर दिन में देखे हुए दृश्य का स्मरण करता। दस बज रहे थे। मन में थकान घर कर रही थी। अनिश्चित इरादे से फिर व्यस्त सड़कों की ओर चल पड़ा। चलते-चलते अचानक एक अधखुली खिड़की से देखा भीतर किसी स्पेनिश मण्डली द्वारा स्पेन के मोहक लोकगीतों और गिटार वादन का दौर चल रहा है। ऊपर दरवाजे पर फ्रेंच में किसी लम्बे नाम के साथ 'रेस्तराँ' शब्द लिखा था। सोचा यहाँ खाद्य और मनोरंजन दोनों मिलेंगे।

सजग पैरों से भीतर प्रवेश करने लगा कि अपने भारतीय नाविक मित्र की चेतावनी याद आई। क्षण भर को ठिठक गया। लौटने की सोच रहा था कि कहीं से नीग्रो द्वारपाल आ निकला। उसने आधा झुककर जो सलामी दी कि मैं चौक उठा। उसके बाद मेज के नम्बर का जब उसने टिकट मेरी ओर बढ़ाया तब तो मैं घबरा ही गया। मन ही मन कहा, "म्याँ, आज नीस पैदल ही जाना पड़ेगा। यहाँ २५-३० फ्रांक से कम का खेल नहीं है।" अपनी इतनी ही सारी पूँजी थी। अधिक संकोच से काम न चलता। बुर्जुआ सभ्यता का रोब कब तक बर्दाश्त करता! कुछ भौंहें चढ़ाकर मैं बोला—"तुमने यह कैसे सोचा मैं दस बजे रात यहाँ भोजन करने आया हूँ। यह कोई भोजन का समय है?"

पहले तो वह द्वारपाल अचकचा गया। पर उसने ऐसे कितने ग्राहक देखे थे। ३० फ्रांक का नहीं १० फ्रांक का ही चण्डूल फँस जाये। सफेद सुन्दर दाँतों के बीच चबाता हुआ-सा विचित्र अंग्रेजी में बोला, "तो जनाब हम आपके लिये एक मौके की मेज देंगे जिस पर आपकी सेवा में केवल ड्रिंक दिया जायेगा।"

"मैं इसी इच्छा से आया हूँ।"

कुर्सी पर बैठने के पहले ही मैंने मेनू की माँग की। उसमें देखा न्यूनतम कीमत के पेय का दाम पाँच फ्रांक है। चैन की साँस ली और आर्डर दे कर स्पेनिश संगीत की स्वर लहरी में कुछ खोने और कुछ पाने की चेष्टा करने लगा। घण्टे भर बाद घोषणा हुई—"मदाम एवं मुश्यू! रेस्तराँ कक्ष का हमारा आज का कार्यक्रम अब समाप्त होता है। अब हम आपको अपने मनोरंजन कक्ष में सम्मिलित होने का निमन्त्रण देते हैं जहाँ आप फ्लोर शो, बाल डांस आदि का आनन्द उठायेंगे।"

मैं समझ गया वहाँ मुझ जैसे 'मुश्यू' को निमन्त्रण नहीं है। जल्दी से छः फ्रांक का बिल चुका कर सड़क पर आ गया। पाँच फ्रांक जुए की कमाई के थे। एक फ्रांक ही टेंट से गया था। यह सोचकर मैं मुस्करा उठा मानो ऊपर लाल और हरे रंग की रोशनी में लिखे रेस्तराँ के नाम को एक बार फिर तिरस्कार से पढ़कर कह रहा होऊँ, "आखिर तुम मुझे ठग नहीं सके, प्यारे।"

मध्य रात्रि आ पहुँची थी। माण्टे-कार्लो का वास्तविक रूप और जीवन

अपने पूर्ण निखार पर था। पर हजार प्रकार की भावनाओं से आलोड़ित-विलोड़ित मेरा पौर्वात्य मन होटल लौट जाने को व्यग्र हो रहा था।

होटल के कमरे में लेटा था। अंधेरा था। नींद आना चाहती थी। बाहर बरामदे में कुछ स्त्री-पुरुष फ्रेंच में झगड़ रहे थे। स्त्रियाँ बीच-बीच में खिलखिला उठतीं। पुरुष शराब पिये थे। बहक रहे थे। ऊपर लकड़ी की छत चरचरा रही थी, शायद लोग आ-जा रहे थे। सीजन का समय था। होटल में पर्यटकों की भीड़ थी। पर मैं एकाग्र मन से माण्टे-कार्लो और फ्रेंच रिवीरा पर ही बार-बार सोचने लगता। माण्टे-कार्लो! आधुनिक योरोप की अभिजातीय समाज की राजधानी। फ्रेंच रिवीरा की आत्मा की साकार प्रतिमा! वासना की खोज में भटकते लोगों का तीर्थ-स्थल। एक ओर भारत के गाँव और अफ्रीका के जंगल हैं, जहाँ लोग धूप, वर्षा और ठण्ड में भी जान खपाकर पेट भर भोजन नहीं पाते। दूसरी ओर उसी पृथ्वी पर यह वैभव, यह विलासिता, यह ऐश! एक ही जगत् में यह कैसे दो जगत हैं जो परस्पर इतने भिन्न और अजनबी हैं? एक ही मानव-समाज के ये कैसे दो चहरे हैं, जो एक-दूसरे को पहचानते तक नहीं?

विलास और परमाणु बम की छाया में : लास वेगास

□ □ □
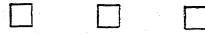
अगर मैं लास वेगास दिन में पहुँचा होता, तो शायद नहीं चौंकता। लेकिन उस जादूनगरी में मैं रात को आठ बजे पहुँचा। यही समय था कि वहाँ की निराली और चकाचौंध करने वाली रात्रिकालीन जिन्दगी अपनी पूरी रंगीन-रोशनी, गरमाहट, आवेग और स्वच्छन्दता के साथ क्लबों, होटलों, कासिनों, जुआघरों, यहाँ तक कि सड़कों पर भी बिखर गई थी। मैं ग्रेहाउण्ड बस द्वारा दिन भर की यात्रा करके फिनिक्स से वहाँ पहुँचा था। शहर में प्रवेश करने वाली सबसे लम्बी, चौड़ी और लकीर की तरह सीधी सड़क पार करके ही हमारी बस अपने अड्डे पर पहुँच सकती थी। इसी सड़क के चारों ओर लास वेगास की अद्भुत दुनिया दिखाई देती है।

बस से उतरने के पहले ही हमने इसकी एक झलक पा ली थी। लेकिन यह झलक वैसी नहीं थी, जिससे कुछ देख लेने की तृप्ति मिलती। यह वह झलक थी, जिसने क्षण भर के लिये आँखों के सामने अँधेरा छा दिया। यह अँधेरा था आधुनिक अमरीकी जीवन के उस पक्ष का, जिसक ाचरमोत्कर्ष इस रेगिस्तानी शहर में विलासिता और ऐश्वर्य के शिखर पर दिखाई दे रहा था। इतनी रोशनी, बिजली से इतनी सजावट, कि रात होने का विश्वास नहीं होता था। एक स्थान पर एक साथ इतना प्रकाश मैंने जीवन में पहली बार देखा। जिधर नजर दौड़ाता, यही लगता कि विवाह-गृह सजकर तैयार है और अब बारात पहुँचने ही वाली है। प्रतिदिन वहाँ के निवासी इतनी रोशनी का जोर आँखों पर कैसे बर्दाश्त कर पाते होंगे? क्या यहाँ के लोग अन्धकार या धुंधले-पन से डरते हैं? अथवा क्या यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति तेज-से-तेज रोशनी में अपने को प्रदर्शित करना चाहता है? शायद यह हो कि बिजली की चकाचौंध में मनुष्य को अन्धा बनाकर उसके अपने अस्तित्व को कुछ समय के लिये भुला देना ही सबसे बड़ा कारण हो। बिना अपने अस्तित्व को भूले कोई व्यक्ति

इस रूमानी दुनिया में न कुछ देख सकता है और न कुछ भोग सकता है। कुछ इसी विचारवीथी में भटकता हुआ बस अड्डे से मैं होटल पहुँचा।

अमरीका में पहली बार मैं किसी होटल में ठहरने जा रहा था। फिनिक्स से मेरे मेजबान ने फोन पर रिजर्वेशन करा दिया था। वे उस होटल में स्वयं ठहर आये थे। होटलवाला कुछ शिष्ट और कम अमरीकी था। मूलतः स्पेनिश होने के कारण उसकी अंग्रेजी का उच्चारण अब भी मैड्रिड के गाइडों जैसा था। फिनिक्स वाले मित्र ने बताया था कि इस होटल में टूरिस्टों को लूटा नहीं जाता। अन्यथा सभी होटलों में लास वेगास के नाम पर टूरिस्टों— विशेषकर नौजवानों की जेबें खाली करा ली जाती हैं। होटल वालों में यह कहावत ही प्रचलित हो गयी है कि बाहर से लाये हुए डालर लास वेगास से फिर वापस नहीं जाना चाहिये। केवल जुए में जीते हुए डालरों को ही कोई अपने साथ ले जा सके, तो ले जाये। कुछ होटलों में तो शराब पीना भी अनिवार्य है। आप न पीयें, तो भी आपके बिल में निर्धारित रकम जोड़ दी जायेगी। वैसे ऐसी नौबत वहाँ बहुत कम आती है। लास वेगास जाने वाले टूरिस्ट एक हजार में ९९९ ऐसे होते हैं, जिनको जुआ, सेक्स और शराब सबसे महत्वपूर्ण लगते हैं। वह तो दूर देश से आया हुआ मुझ जैसा एक निरामिष पत्रकार ही वहाँ अपवाद हो सकता था। यदि मेरे मित्र ने पहले से होटल की व्यवस्था न की होती, तो शायद मैं भी पानी पीकर शराब का बिल चुकाता।

बहरहाल होटल का मालिक नेक और मित्रवत् था। कमरे में सामान रखते ही उसने मुझ से गैर-व्यावसायिक ढंग से कहा, "आप यहाँ खाने-पीने में समय नष्ट न करें। एक दिन के लिये आए हैं, तो यह रात बाहर ही गुजारें। कहीं भी खा लीजियेगा। लास वेगास देखने का मतलब ही होता है रात में देखना। दिन में यहाँ कुछ नहीं रहता। कम से कम दोपहर को दो-तीन बजे तक तो सब बन्द और उजड़ा हुआ-सा दिखता है, क्योंकि रात भर जगे हुए होटलवाले, दूकानदार, नर्तकियाँ, आर्केस्ट्रा, यहाँ तक कि इनके ग्राहक भी दोपहर बारह बजे तक सोते रहते हैं।" मैंने तुरन्त कपड़े बदले और वापस उसी सड़क पर आ गया, जिससे आधा घण्टा पहले हमारी बस गुजरी थी। इसका नाम है फ्रीमोण्ट स्ट्रीट। इसे 'ग्लिटर गल्फ' (अर्थात चमकीली घाटी) भी कहते हैं।

कुछ लोगों का अनुमान है कि यह सड़क रात के नौ बजे से सवेरे पाँच

बजे तक दुनिया की सबसे व्यस्त सड़क हो जाती है। उस समय नौ ही बजे होंगे। सैलानी, ऐय्याश, रईस, मनचले छोकरे और धन की खोज में निकली हुई हर प्रकार की अर्थात् जवान, बूढ़ी, चालाक, मूर्ख, अमीर, गरीब लड़कियाँ और औरतें, सब कारों और टैक्सियों में लदे हुए न जाने कहाँ-कहाँ से पहुँचने लगे थे। सड़क के दोनों ओर एक-से-एक कीमती कारों की कतारें लगी थीं। शायद अमरीका की उस समय की प्रत्येक मॉडल की कार वहाँ रही होगी।

अब तक रेगिस्तानी हवा ठण्डी हो गयी थी। कुछ सिहरन महसूस हो रही थी। दिन की गर्मी देखकर मैं केवल एक हल्की-सी कमीज पहनकर बाहर निकला था। अब कुछ ठण्डक देखकर होटल वापस जाकर स्वेटर पहनने का विचार हुआ, लेकिन रात तेजी से भागी जा रही थी और मैं चूकना नहीं चाहता था। पैन्ट की जेब में हाथ डाले उस जगमगाती दुनिया के भीतर घुसता गया। फ्रीमोण्ट स्ट्रीट के और भीतर पहुँचने पर सचमुच ठण्डक गर्मी में बदल गयी। बिजली की रोशनी की उतनी गर्मी आखिर कहाँ जाती। फुटपाथ पर टहलते हुए मैं प्रत्येक दूकान, बार, रेस्तराँ और जुआघर को काँच की खिड़कियों और दरवाजों से देखता जाता। उनमें उन्मुक्त भाव से बिखरे हुए ग्लैमर और वैभव को देखकर सहसा भीतर जाने का साहस न होता। कुछ खिड़कियों के भीतर से आमन्त्रण के संकेत भी मिले, किन्तु मैंने एक बार इस पूरी सड़क को शुरू से आखिर तक बाहर से टहल कर ही देखने का विचार किया।

लास वेगास अमरीकी माण्टेकार्लो है। अमरीकियों ने यूरोप की हर प्रसिद्ध चीज का एक अपना अलग संस्करण तैयार किया है। न्यू आर्लियन्स उनका पेरिस है, तो बोस्टन उनका आक्सफोर्ड या कैम्ब्रिज। फिलाडेल्फिया को वे अपना रोम मानते हैं, तो लास एंजेल्स को मैनेचेस्टर। न्यूयार्क की तुलना लन्दन से प्रायः होती है। उसी प्रकार जुआ, नाइट क्लब और अपार ऐश्वर्य के केन्द्र माण्टेकार्लो को भी उन्होंने लास वेगास में बना लिया। दुर्भाग्य है, तो इतना ही कि माण्टेकार्लो की सुन्दर घाटियाँ, चट्टानें और मनमोहक समुद्र तट वहाँ नहीं हैं। इस प्राकृतिक सौन्दर्य के बदले वहाँ नेवादा की सपाट और झुलसाने वाली मरुभूमि है, जिस पर एक ओर लास वेगास की यह रंग-बिरंगी

जिन्दगी थिरकती है, तो दूसरी ओर इसी जिन्दगी को हमेशा के लिये नेस्त-नाबूद कर देने के लिये परमाणु बमों के परीक्षण होते हैं।

फिनिक्स में मेरे अमरीकी मेजबान ने लास वेगास की दुनिया के अद्भुत विरोधाभास को बड़े उच्छ्वास के साथ बताते हुए कहा था कि दरअसल लास वेगास में दिन के प्रकाश में भय लगता है। वहाँ की रात हमारे भविष्य, हमारी सभ्यता हमारी मानवता अथवा हमारी अब तक की आध्यात्मिक एवं भौतिक प्राप्तियों के प्रति निरन्तर उठ रहे सन्त्रास पर कुछ समय के लिए एक ऐसा भ्रामक आवरण डाल देती है, जो मायावी होते हुए भी परमाणु बम की छाया में मनुष्य को जीवित रखने के लिए आवश्यक है। रात के अँधेरे में हम दिन के अनेक भयावह यथार्थों को भूल जाना चाहते हैं। लास वेगास की रात आधुनिक मानव के लिए ऐसे ही वरदान का एक रूप है, जो वह धिक्कारते हुए भी छाती से लगा लेता है।

ग्यारह बज गये थे। मेरी पशोपेश की स्थिति अब समाप्त हो चुकी थी। फुटपाथ पर कई टूरिस्टों और क्लबों के द्वार पर खड़े हुए कुछ द्वारपालों से बातचीत कर ली थी। अमरीकी ऐश्वर्य का आतंक जाता रहा था और मैं एक कासिनो में घुस गया। कहने को वह कासिनो था, लेकिन उसमें जुआ, भोजन, शराब, संगीत, सेक्स, नाच सभी का पर्याप्त प्रबन्ध था। काँच के बड़े भारी रिवाल्विंग दरवाजे को ठेलकर भीतर पहुँचते ही गर्दन में सिगरेट, चाकलेट आदि से भरी हुई ट्रे लटकाये एक असाधारण सुन्दर युवती ने स्वागत करते हुए कहा, "मध्य रात्रि का समय है। आप जरूर भूखे होंगे। कृपया उस 'स्नैक कॉर्नर' में कुछ खाकर हमारे कासिनो के उपभोग का आरम्भ कीजिए। विश्वास करें, आपको लास वेगास का पूरा आनन्द इस कासिनो में ही मिल जायेगा'''' ।"

भरे हुए टेप रिकॉर्डर की तरह तेजी से बोलकर शायद इन्हीं वाक्यों को दुहराने के लिए वह दरवाजे की ओर लौट गयी, जहाँ दो-तीन नवागन्तुक आ पहुँचे थे। उसके चेहरे पर कोई भाव नहीं, कोई विकार नहीं। जो चमक थी, वह केवल गोरे रंग, मेकअप, लिपस्टिक, रेशमी बालों और अनोखे विद्युत-प्रकाश की ही थी। तिस पर हमेशा मुस्कराते रहना। खुले हुए होंठों के बीच पॉलिशदार सुन्दर, सफेद दन्त-पंक्तियाँ किसी टूथपेस्ट के अखबारी विज्ञापन

जैसी लग रही थीं। बड़ा भारी हॉल था, जिसमें हर चीज का एक अलग कार्नर बना था।

जुआ की विभिन्न प्रकार की मशीनों की आवाजें, घण्टियाँ, जुआ-संचालकों की घोषणाएँ, आर्केस्ट्रा की तूफानी लय और गति से भरा संगीत, स्टेज पर आधुनिक और जनाना ताण्डव करती हुई किशोरियों की चीखें, इन सबसे एक ऐसा जादुई माहौल बन गया था, जिसका काल्पनिक अनुभव भी प्राप्त करने के लिए सुदूर मध्य भारत के निवासी को फिर से जन्म लेना पड़ता। शाम को कुछ खाया नहीं था, इसलिए भूख लगी ही थी। 'स्नैक कॉर्नर' में एक ऊँचे स्टूल पर जा बैठा। जब तक चारों ओर निगाह दौड़ाकर देखूँ कि यहाँ खाने के लिए क्या-क्या मिलेगा और किस परिचारिका को बुलाऊँ, तब तक प्लास्टिक की गुड़िया की तरह मुस्कराती हुई, किन्तु सम्पूर्ण नारी की तरह इठलाती हुई एक परिचारिका आयी और एक बड़ी प्लेट में सात-आठ प्रकार की सैण्डविचें सामने रख कर बोली, "कौन-सी शराब ?" मैंने कहा, "शराब नहीं, हल्का रस, लेमन या कोकाकोला।" यह सुनकर उसकी निर्जीव मुस्कराहट से कहीं से जीवन की थोड़ी-सी उष्णता का एक फुहारा फूट पड़ा, मानो कह रही हो कि कोकाकोला ही पीना था, तो लास वेगास आने की क्या जरूरत थी।

मैंने सैण्डविचें देखीं, तो दो छोड़कर बाकी सब गोस्त, मछली या किसी अज्ञात चीज की थीं। दो से भला क्या होता! लेकिन दूसरी सैण्डविचें माँगकर अपने को निरामिष घोषित करने का साहस नहीं हुआ। परिचारिका की एक मुस्कराहट ने ही मुझे परास्त कर दिया था। उधर इसका भी डर था कि कहीं पूरी प्लेट का बिल न चुकाना पड़े। न मेनू मिला और न ही किसी ने मेरी पसन्द या नापसन्द की बात पूछी। तथापि वहाँ के अलमस्त वातावरण का ऐसा आतंक था कि पहले से दाम पूछकर ऑर्डर देने का साहस न होता। खैर गनीमत यह थी कि मैंने जितना खाया था, उतने का ही पैसा देना पड़ा।

इसके पहले मैं संसार का प्रसिद्ध जुआ-केन्द्र माण्टेकार्लो देख चुका था। जुआ खेलने की तरह-तरह की मशीनें और अन्य उपकरण यहाँ भी बहुत कुछ वैसे ही थे। लेकिन जिस पैमाने पर लास वेगास में जुआ खेला जाता है, वह माण्टेकार्लो में नहीं है। लास वेगास में एक नहीं अनेक कासिनो या रेस्तराँ

और बार जुआ की मशीनों से भरे हैं। कोई भी, किसी समय चला जाये और इच्छानुसार किसी मन्त्र या फड़ पर अपना दाँव लगा दे। इन जुआघरों में भीड़ भी उसी प्रकार की होती है। सभी के चेहरों पर बेफिक्री, मस्ती और सब कुछ लुटा देने का एक-सा भाव। वही ठहाका, चीख-चिल्लाहट। पता ही नहीं चलता, कौन हार रहा है। शायद सभी जीत रहे हैं। जबकि वास्तविकता यह है कि लास वेगास की एक रात में एक डालर से लेकर लाखों डालर हार जाने वाले लोग यहाँ आते हैं। अजीब होती हैं ऐसी जगहें, जहाँ सब कुछ पैसे पर निर्भर होते हुए भी पैसा ही सबसे अधिक उपेक्षित वस्तु होता है।

उन दिनों एक नये नाच 'शेक' का आविष्कार हुआ ही था। इस तरह की नयी चीजों का सर्वप्रथम प्रदर्शन और प्रचार लास वेगास जैसे विलास प्रधान स्थानों में ही होता है। जिस नाच के बारे में केवल अभी तक सुनता ही आया था, आज उसे सार्वजनिक मंच पर देख रहा था। लगभग अर्ध-नग्न अवस्था में पसीने से तर-बतर हाँफती हुई दो लड़कियाँ अजीब ढंग से अपने शरीर के समस्त जोड़ों को हिलाते हुए एक अजीब प्रकार का नाच कर रही थीं। बड़ी तेजी से बजते हुए आर्केस्ट्रा पर उनका शरीर तरह-तरह के तोड़-मरोड़ करता हुआ दर्शकों को हैरानी में डाले हुए था। चेहरे से लगता था कि दर्शकों और प्रदर्शकों दोनों में से किसी को उस नृत्य के बारे में कुछ नहीं मालूम था। वह अफ्रीका का जंगली नृत्य था, भारत का लोक-नृत्य या लैटिन अमरीका का कोई पर्व-नृत्य या इन सबका अमरीकी मिश्रण ? उस वातावरण में आवश्यकता थी केवल शोर, उत्तेजना और पागलपन की। 'शेक-नुत्य' में ये तीनों तत्व पर्याप्त मात्रा में थे। अतएव दर्शकगण कुछ समझ न सकते हुए भी उनके प्रभाव से पूरी तरह अभिभूत थे। बार-बार तालियाँ बजतीं, कुछ लोग किंचित अश्लील ढंग से दाद भी देते और मनचले नौजवान नर्तकियों की ओर अश्लील इशारे करते हुए सिसकारी भरते।

चीख-चिंघाड़ के इस परिवेश में घुसे हुए दो घण्टे हो चुके थे। सुनने और सोचने की शक्ति जाती रही थी। ऐसा लगता कि किसी ने एक खाली कनस्तर में मुझे बन्द करके दो घन्टे तक झकझोर दिया हो। चौंधियाया हुआ-सा बाहर निकल आया। नींद की याद आयी, तो लगा कि इस माहौल में मनुष्य की तरह निद्रा देवी आने की मूर्खता नहीं करेंगी। शायद दो बज चुके होंगे।

छोटी दूकानें बन्द हो चुकी थीं। कई विज्ञापनों की रोशनियाँ गुल हो चुकी थीं। दर्शकों में भी एक खास प्रकार के लोग ही बाकी रह गये थे—ऐसे लोग, जो गैर-पारिवारिक प्रकार और प्रकृति के थे। सामने चौराहे पर सेनफ्रान्सिस्को के प्रसिद्ध 'गोल्डेन-गेट-ब्रिज' के नाम पर रखा हुआ एक रेस्तरां और कासिनो अब भी लाल-नीली रोशनियों से दमक रहा था। ऊपर बिजली के जलते हुए ट्यूब-लैम्पों से 'गोल्डेन-गेट ब्रिज' बना हुआ था, जिसके ऊपर प्रकाश से ही, निर्मित अपनी 'टिपिकल' अक्खड़ मुद्रा में एक 'काऊब्वाय' खड़ा हुआ था। सड़क पर अब वे ही इने-गिने लोग चल रहे थे, जो घर जा रहे थे या एक कासिनो से ऊब कर दूसरे कासिनो में जाना चाहते थे। बाकी सभी लोग आदतन खिलाड़ियों की तरह या तो जुआ के फड़ पर जमे हुए थे या शराब, संगीत और नाच में मदमस्त थे। चार घण्टे पहले वाली उनकी उच्छृंखलता, फुर्ती और वाचालता थककर शान्त हो चुकी थी। अब प्रायः सभी लोग कुर्सियों में लटके हुए से रात्रिकालीन जीवन के उत्तरार्ध का आलस्यपूर्ण आनन्द ले रहे थे। कांच की खिड़कियों से निहारता हुआ मैं अपने होटल की ओर चल दिया।

रोशनियों का आलम खत्म होते ही ठण्डक महसूस हुई। इच्छा हुई कि दौड़ लगाऊँ। आगे-पीछे देखा, लेकिन साहस न हुआ। न जाने कोई चोर समझ बैठे। रात के इस समय ऐसे परिवेश से दौड़ता हुआ व्यक्ति या तो पागल होगा या चोर। फ्रीमोण्ट स्ट्रीट अपनी रोशनी, अपनी गमक, अपनी जगमगाहट और अपनी पुकार के साथ काफी पीछे छूट गयी थी। मेरा होटल सामने ही दीख रहा था। अंधेरे में लगा—शरीर के साथ मन में भी एक कम्पन व्यापता जा रहा है—वह कम्पन, जो मनुष्य के भविष्य और वर्तमान को एक आँख से देखने पर प्रायः हो जाया करता है। मैं आज भी लास वेगास की उस रात को याद करके यही सोचता हूँ कि हमें अतीत, वर्तमान और भविष्य को एक आँख से देखना चाहिए या तीन आँखों से। लास वेगास की तरह यह भी अभी मेरे लिए प्रश्न ही बना है। ●

पुलिस, कला, नृत्य और साँड़ों का मिलन स्थान मैड्रिड

□ □ □

ट्रेन एक झटके से खड़ी हो गई। उनींदी आँखों से देखा तो हम मैड्रिड के एक उप-नगर के छोटे-से स्टेशन पर पहुँच गये थे। खिड़की से चारों ओर नजर दौड़ाई, तो प्रसिद्ध स्पेनिश चित्रकार गोया और एल ग्रेको के चित्रों की याद आ गई। सुबह की सुनहली धूप, नारंगी रंग जैसी पठारी ऊसर भूमि, दूर तक फैले मैदान में लाल रंग के नये मकानों की लम्बी पंक्तियाँ, हर चीज पर रंग, प्रकाश और चमक की सजीव आभा फैल रही थी। उत्तरी योरोप के धूमिल परिवेश से आये यात्री के लिए यह उत्तेजक तब्दीली थी। जिन प्रसिद्ध स्पेनश रंगों और प्रकाशों ने गोया और एल ग्रेको को विश्व की अनुपम कलाकृतियाँ बनाने की प्रेरणा दी थी उनसे भला हम लोग कैसे अप्रभावित रहते! डिब्बे के हम पाँच-छह विदेशी नौजवान यात्री किलक कर उठ खड़े हुए और मैड्रिड में उतरने की तैयारी करने लगे।

स्पेन की यह मेरी पहली यात्रा थी। तीन दिन समुद्र-तटीय शहर सैन सेवासचियन में था। अब देश की राजधानी मैड्रिड में पहुँचा था। अतएव स्टेशन पर जब ठीक डिब्बे के सामने दो पुलिस वालों को अपनी ओर ध्यान से निरखते पाया, तो आश्चर्य नहीं हुआ। प्लेट फार्म से होती हुई उनकी जासूसी दृष्टि टैक्सी तक हमारा पीछा करती रही। टैक्सी चल दी, तो वे वापस स्टेशन में चले गये। हमारी मण्डली की एक अक्खड़ दक्षिण अफ्रीकी लड़की ने उनकी ओर घूंसा दिखाकर टैक्सी ड्राइवर को अच्छी तरह सुनाकर एक भद्दी गाली दी, "स्पेन की स्पेनियत तो बनी रहेगी! पर शैतान फ्रैंको के पियादे उसे नष्ट करने पर तुले हैं।" उसके यहूदी साथी ने संशोधन पेश किया, "पियादे क्यों, स्वयं शैतान ही।" मुझे चुहल सूझी। दोनों को लक्ष्य करके कहा, "कह लो, कह लो। फ्रैंको बेचारे को जो कहना है कह लो। ड्राइवर अंग्रेजी थोड़े ही

जानता होगा !" और ड्राइवर की ओर मुखातिब होकर कहा, "क्यों भाई ? है न ? तुम तो हमारी बात नहीं समझ रहे हो ?"

ड्राइवर को हँसी आ गयी। उसने कहा, "मैं अंग्रेजी भली-भाँति जानता हूँ। लेकिन मैं शैतान का पियादा नहीं हूँ। निश्चिन्त होकर गाली दें उसे।" और एक बार फिर मैंने मन-ही-मन यह मानने से इन्कार कर दिया कि स्पेन की वर्तमान सरकार को जनता का समर्थन या सहानुभूति प्राप्त है। होटल पहुँचने के पहले कई ऐसे पुलिस वाले गश्त लगाते हुए दिखायी दिये, जो गौरव-पूर्ण प्रभात-वेला में दाल में मूसरचन्द की तरह लग रहे थे।

एक दक्षिण अफ्रीकी, एक यहूदी, एक फ्रेंच, एक डच और एक भारतीय का पचरंगी दल लेकर स्पेनिश ड्राइवर जब होटल पहुँचा, तो होटल का मालिक मिला अमरीकी, जिसने शादी की थी एक स्पेनिश महिला से और काउण्टर के पास ही सोफे पर बैठे तीन व्यक्तियों में से एक थे सरदारजी और बाकी दो चीनी-जापानी से दिख रहे थे। सबके मुँह से एक साथ 'हलो' निकल गया। सरदारजी की मूँछें फड़क उठीं। चिहुकते हुए-से बोल उठे, "संयुक्त राष्ट्र संघ कहें तो इसे कहें।" अमरीकी बन्धु को प्रजातन्त्र का ध्यान आया, "लेकिन यह संघ स्पेन में है। इसलिए बहुमत स्पेनियों का है, जो उचित ही है।" होटल मालकिन के लाल पुते होंठों के बीच सफेद दांत झांककर फिर छिप गये। उमंग से भरा हुआ मैं सरदारजी की ओर मुखातिब हुआ। पहल उन्होंने की, "मैंने आपको ट्रेन से उतरते हुए देखा था। चाहा था कि कहूँ, चलिए हम दोनों एक ही जगह ठहरें।...."

मैंने टोक कर कहा, "तो इसको कहते हैं टेलीपैथी। आपने चाहा और मैं आपके पीछे हो लिया।" और फिर शरारत से हंसकर जोड़ दिया, "स्पेनी पुलिस की तरह।" सरदारजी ने ठहाका लगाया। संभल-कर बोले, "यहाँ एक जने और हैं जो हिन्दी समझते हैं।" मैंने मुड़कर देखा तो पास ही सोफे पर बैठे एक चीनी सूरत लिये जनाब हमारे वार्तालाप का मुस्कराते हुए आनन्द ले रहे थे। परिचय हुए, "आप हैं मिस्टर....मलाया के। आप हैं मिस्टर....भारत के।" मलायी सज्जन चीनी व्युत्पत्ति के थे। भाषा भी वे मलायी कम और चीनी ज्यादा जानते थे। क्वालालम्पुर में भारतीयों के सम्पर्क में अधिक रहने के कारण हिन्दी भी काफी-कुछ सीख ली थी। इसी

सिलसिले में मालूम हुआ कि सरदार थानीसिंह भी भारत के नहीं, मलाया के ही हैं। उनके दादा रोजगार खोजते-बढ़ाते पंजाब से क्वालालम्पुर जा पहुँचे थे। अब पंजाबी भूल-से गये थे, किन्तु मलायी भाषी देश में बसे भारतीयों की सामान्य बोलचाल की भाषा हिन्दी की उपयोगिता देख स्कूल और घर में हिन्दी सीखी। तब से लाड़ में हिन्दी को ही अपनी मातृ भाषा कहते हैं। फिलहाल इंग्लैण्ड में शिक्षक हैं और अपने दो अन्य देशवासियों के साथ योरोप की यात्रा पर निकले हैं।

नहा-धोकर बाहर निकलते-निकलते नौ बज गये। मार्च का अन्तिम दिन था—योरोप में जाड़े का मौसम। फिर भी धूप की तेजी से जून का आभास होता था। ईसाइयों का पवित्र पर्व ईस्टर शुरू हो गया था। रोमन कैथलिक देशों के अनुरूप ही स्पेन में धार्मिक गतिविधि काफी रहती है। ईस्टर का सम्बन्ध ईसा की शहादत और पुनर्जीवन (कब्र से निकल आने की कथा) से है। इसलिए यह शोक और हर्ष दोनों का अवसर होता है। अतएव प्रायः लोग काली पोशाक पहनकर शोक-प्रदर्शन के साथ आनन्द भी मानते हैं। मैड्रिड की चौड़ी-सीधी सड़कों पर चारों ओर चमकती धूप में काली-ही-काली पोशाकें दिखायी दे रही थीं। विचित्र-सा लग रहा था। गनीमत थी कि स्त्रियाँ काली पोशाक के साथ सिर पर दूध जैसे सफेद रंग के काफी ऊँचे मौर की तरह कुछ पहने थीं। काले कपड़े, सफेद मौर और काले स्निग्ध केशों से घिरे उनके गौर वर्ण के मांसल स्वस्थ चेहरे पर धूप ने अपनी गर्मी से अतिरिक्त लालिमा पैदा कर दी थी। पुरुष उनकी अपेक्षा गौण प्रतीत होते थे। लगता था जैसे हमारे देश में बाल दिवस पर बच्चे प्रफुल्लता और सजावट के पुतले बने झुण्ड के झुण्ड घूमते रहते हैं, वैसे आज यहाँ भी कोई 'नारी दिवस' मनाया जा रहा है। अलग-बगल से खिलखिलाते हुए नारी झुण्ड निकल जाते। कुछ अपने पति या मंगेतर के साथ हाथ-में-हाथ लिये भीड़ में नागिन की तरह लोचदार-लहराती देह बचाती-छिपाती चली जा रही थीं। कोई मित्र उन्हें रास्ते में ही अचानक रोककर फोटो खींच लेता। मेरा हाथ कैमरे पर जाता, लेकिन मन मारकर रह जाता। स्पेन योरोप के अन्य देशों की अपेक्षा बहुत अनुदार है, यह ध्यान आते ही मन में कहता—काश ! यह स्कैण्डिनेविया होता ! कैमरा थक जाता, पर मैं न थकता।

मैड्रिड की प्रमुख सड़क और नागरिक जीवन व्यापार का केन्द्र काल-देल-अलकाला और पोर्टो-देल-सोल पर उस दिन बड़ी गर्दी थी। रास्ता चलना मुश्किल था। रात को ईस्टर का विशाल जुलूस निकलता था, जिसकी तैयारियाँ अभी से शुरू हो गयी थीं। फुटपाथों पर दोनों ओर हजारों कुर्सिय़ाँ लगायी जा रही थीं। उन पर नम्बर लगाये जा रहे थे। मानो किसी नाटकघर में व्यवस्था की जा रही हो। नम्बर-डली कुर्सियों पर बैठकर फुटपाथ से जुलूस देखने की परिकल्पना—वह भी तीन घण्टे लम्बा जुलूस—मेरे लिए बिल्कुल नयी थी। एक खोमचे वाले ने पूछने पर पता चला, कि इन कुर्सियों का रिजर्वेशन भी होता है। चाहूँ तो अविलम्ब अपने होटल वाले से कह दूँ, अन्यथा बारह बजे तक सब बुक हो जायेंगी। स्पेनी जीवट, परम्परा और धैर्य की दाद देनी ही पड़ी। इतने बड़े पैमाने पर सार्वजनिक प्रदर्शन का ऐसा वृहत् आयोजन मैंने जीवन में पहली बार उस रात को देखा। सवेरे तानाशाही स्पेनी सरकार का मजाक उड़ा रहा था। अब इस अनुशासन का लोहा मान रहा था।

पार्टो-देल-सोलपर जुलूस दस बजे रात को पहुँचने वाला था पर छह बजे से ही लोग सीटों पर आ जमे थे। भक्ति, कुतूहल, भोलापन, अन्धविश्वास, तटस्थ परम्परावाद इत्यादि के भावों से चित्रित चेहरे एकत्र होने लगे। नौ बजे हम भी धानीसिंह, मलाया के दोनों मित्र और मैं—अपनी कुर्सियों पर जा लगे। जुलूस क्या था, ईसा मसीह के पूरे जीवन की झांकी थी। जन्म से लेकर सूली-आरोहण तक की घटनाओं का प्रदर्शन जीवित स्त्री-पुरुषों और बालक-बालिकाओं ने यथासम्भव प्रचलित मान्यताओं के अनुसार अपने भक्तिमय अभिनय से किया था। ईसा के जीवन की कुछ विशेष मार्मिक घटनाओं को भावोद्रेक के लिए दोहराया या तिहराया भी गया था। सूली पर कील से ठोंक दिये गये ईसा को दिखाने के लिए हूबहू उन्हीं की तरह सजे एक व्यक्ति को अंग्रेजी की 'टी' के आकार के 'क्रास' पर हाथ पैर तानकर फिटकर दिया गया था। यह व्यक्ति शायद आठ बजे शाम से पाँच बजे सवेरे तक ऐसे ही बंधा रहता है। सैकड़ों लोग, जो कभी नंगे पैर से धरती न छूते होंगे, इस रात को घण्टों सड़कों पर नंगे पैर जुलूस के साथ चलते हैं। कुछ लोग स्वेच्छा से शारीरिक यातना भोगते हुए इस जुलूस में योगदान करना अपना सौभाग्य समझते हैं। हमने देखा, जिस प्रकार ईसा मसीह सिपाहियों के कोड़ों की मार

और ठोकरें खाते हुए अपना भारी 'क्रॉस' स्वयं पहाड़ तक खींचकर ले गये थे, उसी प्रकार ये भक्तजन भी पसीने से लथपथ शरीर से एक विशाल 'क्रॉस' खींच रहे थे। चेहरे पर वही पीड़ा, करुणा, सहिष्णुता का आध्यात्मिक भाव। इस दृश्य के सामने आते ही दर्शकगण भाव विह्वल हो उठे। स्त्रियों के रूमाल आँखों पर जा पहुँचे। पुरुषों के गले में थूक अटक गया। बच्चे आतंकित हो माँ की ओर देखने लगे। क्षण भर को लगा, यह बीसवीं सदी के मैड्रिड नहीं, दो हजार वर्ष पूर्वके जेरूसलम की सड़क है। दो बजे तक प्रत्येक दृश्य को रुक-रुककर दिखाता हुआ यह जुलूस हमारे सामने से गुजरता रहा और फिर पूरा गुजर गया। होश आया तो अपने चारों ओर नजर दौड़ायी। दर्शकों के चेहरों पर उतार शुरू हो गया था। एक महाशय मेरी ओर आश्चर्य भरी करुणा से देख रहे थे, कि इस 'वाटरप्रूफ' पर हमारी अश्रु वर्षा का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। लेकिन जबतक मेरे मन में किसी गीत की धुन झनझना उठी थी। कोशिश की तो याद आ गया। स्पष्ट स्वरों में सरदारजी को सुना दिया, "कारवां गुजर गया, गुबार देखते रहे।" मुहर्रम के दिन मुसलमानों का 'या अली, हुसैन' चिल्लाते हुए लोहे की मोटी जंजीर से अपने को पीटना और जगन्नाथपुरी की रथ यात्रा में भक्तों का गरम, गन्दी और कठोर पथरीली सड़क पर लेट-लेट जाना इन दोनों दृश्यों की तुलना कैथलिक ईसाइयों की इस धार्मिक 'क्रॉस-यात्रा' से करते हुए हम रात के दो बजे होटल की ओर चल दिये। मित्रों को जंभायी आने लगी थी। मैं दूर से आती हुई जुलूस की आवाज और रोशनी को देखता हुआ अपने अन्तर्यामी से पूछ रहा था, "अन्ध विश्वास, धार्मिक कट्टरता, पाखण्ड और मिथ्याडम्बर से मुक्त बीसवीं सदी का योरोप कहाँ है ? क्या उसे देखने के लिए सचमुच 'लोहे की दीवार' के उस ओर ही जाना होगा ?" प्रोटेस्टैण्ट ईसाई धर्माडम्बर के लिए कैथलिको को प्रसिद्धि देते हैं। यह ठीक भी है, एक सीमा तक। पर बेल्जियम, लुक्जेमबर्ग, फ्रांस,इटली और स्पेन प्रमुखतया कैथलिक देश हैं, जो पश्चिमी योरोप के आधे हैं। पश्चिम की औद्योगिक-क्रान्ति, बौद्धिक, पुनर्जागरण, मार्क्सवाद और फ्रायडवाद की प्रेतात्माएँ ही उस समय मुझे मैड्रिड की उन सूनी अंधेरी सड़कों पर नजर आ रही थीं।

मैड्रिड शहर की कहानी दसवीं सदी के अन्त से प्रारम्भ होती है जब स्पेन के मूर (अरब) विजेताओं ने मध्य स्पेन के एक रेतीले, २३७३ फीट ऊँचे,

पठार पर बसे एक छोटे-से कस्बे को 'मजरित' कहकर पुकारा। बाद में यह मदरिद—अंग्रेजी में मैड्रिड—बन गया। बाद में मूरों ने इस पर अधिकार कर लिया। तत्कालीन स्पेनी राजा रामीरो ने इसे छुड़ाने की कोशिश की। लेकिन वह हारकर दूर दक्षिण में भाग गया। अरबों के साथ युद्ध के दौरान मैड्रिड का महत्व बढ़ गया। देश के प्रायः केन्द्र में होने के कारण सन् १३०९ में स्पेन के राजा ने पार्लियामेण्ट की बैठक यहीं बुलायी। फिर तो अन्य शासकों ने भी यदाकदा पार्लियामेण्ट की बैठकें मैड्रिड में बुलायीं। अन्ततोगत्व सत्रहवीं सदी में राजा फिलिप तृतीय स्थायी रूप से यहाँ आ गया। तभी से मैड्रिड राजधानी बन गयी। इस प्रकार स्पेन जैसे ऐतिहासिक प्राचीन देश में मैड्रिड अपेक्षाकृत आधुनिक शहर ही है। उन्नीसवीं सदी में नेपोलियान के आक्रमण के समय मैड्रिड ने अपूर्व वीरता, संगठन और देश भक्ति का परिचय दिया जिससे प्रसन्न होकर फरडिनैण्ड सप्तम ने उसे 'वीरनगर' की स्थायी उपाधि दे दी। आज भी मैड्रिड के पुराने और नये दोनों लोगों के मुँह से बार-बार इस प्रसंग का उल्लेख सुनने को मिलता है।

दूर से देखने पर मैड्रिड मैदान में बसा हुआ दिखायी देता है। पर दर-असल यह योरोप की राजधानियों में सबसे अधिक ऊँचाई पर बसी राजधानी है। स्वस्थ पठारी मैदान में विस्तार के साथ बसे होने के कारण इसकी जलवायु बहुत सुखद और स्वस्थ है। जुलाई, अगस्त छोड़कर बाकी समय यहाँ न अधिक गर्मी पड़ती है और न अधिक सर्दी। लोग उन्मुक्त भाव से हल्के कपड़े पहने बाहर के कामकाज करते रह सकते हैं। शायद यह एक महत्वपूर्ण कारण हो जिसने बारसिलोना जैसे औद्योगिक-व्यापारिक केन्द्र और ऐतिहासिक-सांस्कृतिक शहर के होते हुए भी मैड्रिड देश की राजधानी बने रहने दिया।

मैड्रिडवासियों का अपने नगर के बारे में यह कथन है कि प्रथम साक्षात-कार में उसे कोई नहीं समझ सकता। प्रायः लोगों को उसके बारे में गलत-फहमी ही हो जाती है। जो वहाँ कुछ दिन रहकर बारीकी से देखें, अनुभव करें और समझें तो पायेंगे कि मैड्रिड एक स्वस्थ और सुहावना शहर ही नहीं है, बल्कि वहाँ के लोग भी बड़े सुसंस्कृत, विनोदी, मेहमानवाज और आधुनिक हैं। यह बात एक हद तक सही भी है। मैड्रिड में मेरा अपना प्रथम दिन भी बहुत मनहूस और अरुचिकर रहा। चारों ओर लोगों के अन्यमनस्क और

बहुधा विकारहीन चेहरे ही थे, जो केवल परिचित व्यक्ति को देखकर ही मुस्कराना जानते हैं। लेकिन बाकी चार दिनों में मेरा मत बदल गया। लगा मैड्रिडवासी अनावश्यक रूप से बालकों की तरह जिज्ञासु भले न हों, जीवन और जगत मे उनकी रुचि काफी है। इस किंचित भ्रमास्पद स्वभाव का कारण शायद यह हो कि कई सदियों से मैड्रिड देश के प्रशासन और शक्ति का केन्द्र रहा है, जहाँ अभिजात तत्वों को पोषण मिलता रहा। यह तो सन् १९०० में कहीं जाकर वहाँ नये उद्योग-धन्धे शुरू हुए, जिससे उसका सामाजिक रूप बदलना शुरू हुआ। सत्रहवीं सदी में राजा के वल्लदोलिद चले जाने पर मैड्रिड की प्रतिष्ठा और गौरव में व्याघात होने पर भी पुराने रईस और राजघराने के लोग मैड्रिड में ही बने रहे। अन्यत्र कहीं रहना उनके अभिजात मन को स्वीकार न हुआ। आज भी आधुनिकता में लिपटी हुई मैड्रिड की प्राचीन अभिजातीय परम्पराओं के चिह्न मिलते हैं। ईस्टर के दिन चारों ओर काली पोशाक का बाहुल्य देखकर चकित नहीं हुआ था, लेकिन बाकी दिनों में भी स्त्री-पुरुषों की काले रंग की पसन्दगी देखकर अवश्य विचारमग्न हो गया क्या यह स्पेनियों का प्रिय रंग है? या किसी धार्मिक कारण से इस रंग का व्यापक प्रयोग होता है? वस्तुत: स्पेनी लोग काले के बजाय अन्य चटकीले रंग ही पसन्द करते हैं, जैसे लाल, नारंगी और नीला, जो उनके देश में प्रचुर सुलभ और धूप और नीले आकाश में खास तौर से फबते हैं। लाल रंग के लम्बे घाघरे में फ्लामिंको नाच नाचती हुई स्पेनिश स्त्री का चित्र दुनियाँ के कोने-कोने में दिखायी देता है। इसे तो एक प्रकार से स्पेनी सभ्यता, लोक संस्कृति, स्वभाव और मिजाज का प्रतीक मान लिया जाता है। अपनी शंका का समाधान मिला अपने होटल में एक स्पेनी युवती से, जो रोज शाम को एक क्लब में फ्लामिंको नाचने जाया करती थी। दिन भर होटल में काम करके कुछ जीविका उससे भी कमा लेती थी।

उस दिन कुछ थका-सा मैं जल्दी ही, शायद दस बजे होटल लौट आया था। मेज पर पैर चढ़ाये डायरी भर रहा था। दरवाजे पर दस्तक सुनकर मैंने 'आ जाइए' कह दिया। बेझिझक हाथों से दरवाजा खोलकर भीतर आये अतिथि को देखकर मैं क्षण भर के लिए चौंक उठा। वही लड़की, जिसने शाम को हमें खाना खिलाया था, हाथ में नयी सिगरेट लिये हाथ के इशारे से दियासलाई

माँग रही थी । वह अंग्रेजी यथेष्ट जानती थी, इसलिए उसके अभिनयात्मक
अन्दाजों को देखकर मैं हँस पड़ा । वैसे मुझे इससे विस्मित ही होना चाहिए
था क्योंकि योरोपीय मानदण्ड से स्पेन पुरातनवादी देश है, जहाँ की स्त्रियों को
किसी अजनबी के कमरे में जाने की आजादी नहीं रहती। बहरहाल, मैंने
इन्कार में सिर हिलाकर कहा, "मैं सिगरेट नहीं पीता। मेरे पास दियासलाई
का क्या काम !"

"अरे, तुम जैसे आधुनिक और स्मार्ट नौजवान सिगरेट नहीं पीते ? क्या
भारत में तुम जैसे 'साधु' लोग बहुत हैं ?" और फिर बात चल पड़ी । स्पेन
और स्पेनी लड़कियाँ, उनकी पोशाक, स्वभाव और नृत्य-संगीत का जिक्र आया
तो मैंने अपनी शंका उसके सामने रखी । तब उसने बताया कि मैड्रिड में अब
भी पहले के राजा-रईस और उनके सम्बन्धी काफी बड़ी संख्या में हैं । ये
अक्सर बाहर निकलते समय प्रतिष्ठा की खातिर औपचारिक पोशाक पहन
लेते हैं, जिसमें काले और सफेद का प्राधान्य रहता है । स्त्रियों में लम्बे काले
गाउन या स्कर्ट और पुरुषों में काले सूट नहीं तो काली टाई का प्रचलन है ।
मैंने जब उन दो रंगों का सम्बन्ध कैथलिक धर्म के साथ जोड़ना चाहा, तो
युवती ने हल्का प्रतिवाद किया, "हम स्पेनी लोग काफी धार्मिक है, पुरातन-
वादी हैं और कैथलिक चर्चावलम्बी हैं । लेकिन इस हद तक नहीं कि अपने
दैनन्दिन जीवन में रंग और स्वाद को भी धर्म पर न्यौछावर कर दिया हो ।"

मैंने निरुत्तर रहना चाहा और रहा । नृत्यांगना को विदाकर मैं दूसरे
विचारों में डूब गया । डायरी खुली रह गयी थी । पिछली कुछ पंक्तियों को
काटा और अपने निष्कर्ष को सुधारा ।........वस्तुतः आधुनिक स्पेन का इतिहास
ही निराला है: भ्रम, दुविधा, विरोधाभास आदि से भरा हुआ । मध्य-युग में
अपनी प्रचण्ड नौशक्ति से सारी दुनियाँ को ललकारने वाला स्पेनी साम्राज्य
उन्नति के शिखर पर था । जनता, धर्म और राजा तीनों प्रगतिगामी दिशा में
एक साथ चल रहे थे । दक्षिणी अमरीका और अफ्रीका में स्पेनी उपनिवेशों की
भरमार थी, उत्तरी अमरीका, दक्षिणी योरोप और उत्तरी अफ्रीका पर स्पेनी
कला, संगीत, नृत्य, साहित्य और भाषा का प्रभाव निखरता जा रहा था ।
दक्षिणी अमरीका तो मानो स्पेनी अमरीका ही बन गया था । शौर्य, साहस,
एडवेंचर, अन्वेषण और प्रसार की दुर्दम्य भावना से अनुप्राणित स्पेनी जाति

अपने आप में एक संस्था, एक विशेषण और एक उदाहरण बन गयी थी। लेकिन साम्राज्य का पतन हुआ। स्पेन की राष्ट्रीय एकता और जातीय गुण अक्षुण्ण रहते हुए भी बिखर गये। समाजवाद की आँधी आयी। स्पेन ने भी थपेड़े खाये। क्रान्ति हुई। राजतन्त्र गया, जनतन्त्र आया। लेकिन देश इसे पचा न सका। विद्रोह हुआ। गृह-युद्ध हुआ। पुराना स्पेन जीता और स्पेनी राष्ट्र-स्पेनी जनता—हार गया। तानाशाही सरकार के आगे नये युग ने घुटने टेक दिये। अरबी घोड़े की तरह तेजस्वी स्पेन फौजियों का खच्चर बन गया। आज्ञाकारी टट्टू की तरह तानशाही की जंघों में फंसा हिनहिनाने लगा। पच्चीस बरस हो गये। तानशाह फ्रेंको का फौलादी पंजा स्पेन की आत्मा और शरीर दोनों पर जकड़ा है। इतना ही नहीं राजशाही के मुर्दे को कब्र से निकालकर फिर से सिंहासनारूढ़ करने का प्रयत्न किया जा रहा है। नये स्पेन के प्रतिष्ठापन की खातिर गृह-युद्ध में जो दस लाख वीर स्पेनी शहीद हुए वह व्यर्थ जाता सा लग रहा है। यदि राजतन्त्रवाद स्पेन में जीत गया, तो वह कदाचित् दुनिया में इतने शहीदों की सामूहिक हार की सबसे बड़ी मिसाल होगी। नये युग को तब स्पेन कौन-सा मुँह दिखायेगा।

मैं सवेरे देर से उठने का आदी हूं। पर उस दिन जल्दी उठ गया, उठना पड़ा। प्रादो संग्रहालय, विश्वविद्यालय, राजमहल और साँड़-युद्ध देखने थे। स्पेन में सामान्यतया होटलों में ठहरना और खाना दोनों शामिल होते हैं। फिर भी कभी-कभी विशेष कारणवश बिना भोजन के भी ठहरने के लिए कमरा मिल जाता है। रेस्तराँ की अपेक्षा होटल में खाना सस्ता भी पड़ता था, इसलिए कई असुविधाओं के बावजूद मुझे होटल में ही खाना पड़ता था। दिन भर का कार्यक्रम है, यह सोचकर मैंने होटल वाले से कहा, "मैं दोपहर को भोजन नहीं करूँगा, मेरे हिसाब से उतने पैसे काट देना।" पर वह राजी न हुआ। बहस गरम हो गयी। शोरगुल सुनकर उसकी स्थूलबदना पत्नी भी आ गयी। शरीर भारी था, लेकिन उसका मन कोमल था। मुझे देखकर अपने पति को फटकारा—"कैसे हो जी, ये बेचारे विदेशी लड़के (उसका अभिप्राय स्कूल के लड़के से था) ईस्टर की छुट्टियों में घूमने निकले हैं तो कोई तिजोरी थोड़े ही साथ में लेकर चले हैं। दो रुपये से क्या फर्क पड़ेगा हम पर ?" समझ में नहीं आया मैं गुस्सा करूँ या रोऊँ, क्या सोचूँ और क्या कहूँ।

अपनी लड़कोरी शकलपुर खिसियाकर महिला को धन्यवाद देना ही पड़ा। डॉक्टरेट मिलने में अभी कई महीनों की देरी थी। अन्यथा नाम के साथ 'डॉक्टर' की पूँछ जोड़ कर बेचारा न कहलवाता।

मूड खराब हो गया था। खिन्न मन से बाहर निकला। लेकिन काल-देल-अलकाला की भव्य इमारतों की छाया से आधा घण्टा चलकर जब एक असाधारण इमारत के सामने खड़ा हुआ तो मन हल्का होने लगा। यह इमारत थी जगत विख्यात कला संग्रहालय 'प्रादो'। पेरिस के 'लूवर', लेनिनग्राद के 'हर-मिटाज', न्यूयार्क के मैट्रोपालिटन म्युजियम और लन्दन के ब्रिटिश म्यूजियम को छोड़कर अन्य किसी एक स्थान पर संग्रहीत कला की इतनी विशाल और अमूल्य निधि मैंने अन्यत्र कहीं नहीं देखी थी। प्रादो संग्रहालय क्या है, पिछले चार सदियों के इतिहास का कलात्मक प्रदर्शन या कला का ऐतिहासिक प्रद-र्शन है। विश्व के सर्वश्रेष्ठ शिल्पियों की अनेकानेक महत्वपूर्ण कृतियाँ तो इसमें हैं ही, स्पेनी शैली के सभी दर्शकों को सुलभ हैं। इस शैली का इससे बड़ा संग्रह अन्यत्र कहीं नहीं है। गोया, एल ग्रेको और वेलास्केज जैसे आचार्यों के अधिकांश चित्र केवल इस एक संग्रहालय में हैं। इस अगाध निधि के निर्माण का श्रेय स्पेन के शासकों को है, जो चार सौ बरसों से निरन्तर जमा करते रहे और अपने समकालीन चित्रकारों से विशेष रूप से बनवाकर संग्रह करते रहे। डच शैली के आचार्य रून्वेस और रैम्ब्राण्ट एवं वेनिस शैली के तीशियन ने स्वयं स्पेनी राजाओं और रानियों के लिए चित्र बनवाकर दिये। चार सदियों में शायद एक भी ऐसा स्पेनी राजा या रानी न होगी, जिसने अपने दरबारी चित्रकार से चित्र बनवाकर संग्रहालय को न दिये हों। कला-संग्रह का ऐसा अटूट प्रयास और सहयोग शायद किसी देश में नहीं मिलेगा।

संग्रहालय से निकला तो एक बज गया था। बाहर धूप के साथ भीतर मेरी भूख भी तेज हो गयी थी। सोचा कुछ खा लूँ तो विश्वविद्यालय जाऊँ। स्पेनी लोग शायद मांस, मछली वगैरह ज्यादा खाते हैं या उनके पकाने का तरीका या स्थान ही ऐसा दोषपूर्ण होता होगा कि चार-पाँव रेस्तराओं के दरवाजे से ही लौट आया। अजीब दुर्गन्ध आती देख भीतर जाने का मन नहीं हुआ। वस्तुतः इन देशों में मछली ही नहीं, पानी में रहने वाले अन्य जीव खाये जाते हैं—सीप, घोंघा, कछुआ, सभी। ये सब मिलाकर ऐसी सामूहिक गन्ध की

सृष्टि करते कि हिन्दू रसोइयों का आदी मन विद्रोह कर उठता। आधा मील चलने के बाद अन्त में एक साफ और उतना ही खर्चीला रेस्तरां मिला। भीतर देखा तो खचाखच भरा था। अंग्रेजी, फ्रेंच और जर्मन भाषाओं के शब्द कान से आ टकराये। सोचा भीड़ सही। चलो अन्तरराष्ट्रीय समाज को अन्तर महाद्वीपीय बनाया जाये। बड़ी देर में खाना आया। मेरी सीट काउण्टर के नीचे थी। खाते-खाते दो-तीन बार सुना कि काउण्टर वाला व्यक्ति फोन पर बार-बार 'ओइगा' कहता है। शब्द बड़ा मधुर लगा। स्पेनिश भाषा के स्वरों और लहजों में कहा गया यह शब्द और भी संगीतमय लगता था। उत्सुकता रोक न सका। बैठे-बैठे ही पूछा, यह 'ओइगा' क्या है ?" "हम स्पेनिश में 'हलो' के स्थान पर 'ओइगा' कहते हैं।" जवाब मिला। 'हलो' का कोई पर्याय मैंने यह पहली बार सुना। अन्यथा इसे मैं अब तक सबसे अधिक अन्तर्राष्ट्रीय शब्द मानता आया था। उसी प्रकार स्पेनी लोग एक दूसरे से मिलने पर अभिवादन के बतौर 'हलो' के स्थान पर 'ओला' कहते हैं। दोनों शब्दों का संगीत मानो, 'हलो' के कर्कश स्वरों को चुनौती हो, जो दूसरे भाषा भाषी अभी तक नहीं दे पाये थे। संयोग की बात तो यह है कि 'ओइगा' और 'ओला' दोनों शब्द हिन्दी के से जान पड़ते हैं। लेकिन जिस भाषा को केवल लेने की आदत हो, उससे ऐसी आशा करना अपना उपहास कराना है।

सांड़-युद्ध स्पेन की कदाचित सबसे प्रसिद्ध और विशिष्ट चीज है। स्पेन की कल्पना करते ही क्रोध से फुंफकारते हुए एक साँड़ का चित्र सामने खिच जाता है। स्पेनी संस्कृति, साहित्य और समाज के साथ इसका सम्बन्ध इतना अभिन्न है कि स्पेन पर लिखने वाले कथाकारों को स्पेनी समाज के पहले सांड़ और सांड़-युद्ध का अवलोकन और अध्ययन करना पड़ा। अन्य मानव समाजों की तरह स्पेनी समाज के भी विभिन्न मानवीय पक्ष होंगे, इसमें सन्देह नहीं। पर टिपिकल स्पेन के टिपिकल प्रतिनिधि क्षेत्र में कहीं-न-कहीं सांड़ और उसकी खूंख्वार आंखें दिखायी देने ही लगती है। इनके बिना इस क्षेत्र का चित्रण यथार्थ भले हो, पूर्ण नहीं हो सकता। प्रसिद्ध अमरीकी उपन्यासकार हमिंग्वे ने अपने स्पेनी जीवन का एक बड़ा भाग 'रिंग' (स्टेडियम जिसमें सांड़-युद्ध होते हैं) में गुजरा था। उसके अधिकांश उपन्यासों और कहानियों में मानव-समाज और मानव-हृदय में छिपे प्रचण्ड हिंसा के उद्घाटन की प्रेरणा उसे 'रिंग' में

हीं मिलती थी। 'दि सन आलसो राइजेज' और 'दि डेथ इन दि आफ्टरनून' पढ़कर जो व्यक्ति स्पेन जायेगा यह रिंग की तीर्थयात्रा किये बिना नहीं लौट सकता, जबकि मुझे तो स्पेन यात्रा की प्रेरणा ही हेमिंग्वे के उपन्यासों से मिली थी। दरअसल, दुनिया में किसी देश का सम्बन्ध एक पशु से इतना अधिक और इतना व्यापक नहीं है जितना स्पेन का सांड़ से है। मार्के की बात यह भी है कि इस सम्बन्ध में केवल पशु ही साझीदार नहीं है, मनुष्य भी है, क्योंकि सांड़-युद्ध केवल दो या अधिक सांड़ों का युद्ध नहीं अपितु एक सांड़ की कई मनुष्यों से लड़ाई है।

'रिंग' पर दर्शकों की भीड़ देखकर अपने छोटे-से कस्बे में पहली बार आये सर्कस पर टूट पड़ी भीड़ की याद आ गयी। चिल-चिलाती धूप में हजारों स्त्री-पुरुष 'रिंग' की सीढ़ियों पर बैठे थे। सबकी आँखें बीचों-बीच बने अखाड़े पर लगी थीं। मातादोर (प्रमुख लड़ाका) अपने भाले-तलवार से लैस साथियों के साथ निर्धारित स्थान पर खड़ा था। दूसरी ओर कठघरे से एक काला जवान, स्फूर्तिमय और बहुत ही सुन्दर सांड़ निकला और धूल उड़ाता हुआ अखाड़े के बीचों-बीच आकर खड़ा हो गया। दर्शक सांस साधे आगे की घटना की प्रतीक्षा करने लगे। कुछ सहायक मातादारों ने रंगीन कपड़े दिखा-दिखाकर सांड़ को चिढ़ाना, उत्तेजित करना और थकाना शुरू किया। उसके बाद घोड़े पर सवार एक व्यक्ति, जिसे पिकादोर कहते हैं, हाथ में एक बड़ा बांस लिये उसमें बंधी एक नुकीली लोहे की कील से सांड़ को कोंचने लगा। घुड़सवार और उसके साथी एवं सांड़ में आक्रमण-प्रत्याक्रमण होने लगे। साँड़ को क्रुद्ध करके लड़ने को उभारना ही इस क्रिया का अभिप्राय होता है। पूरा युद्ध मुख्यतया तीन सोपानों में लड़ा जाता है। अभी तक पहला सोपान चल रहा था। दूसरे सोपान में मातादोर एक या दो साथियों के साथ जमीन पर ही साँड़ को रंगीन कपड़े दिखाकर चिढ़ाता और उत्तेजित करता है एवं मौका पाते ही हाथ से उसकी पीठ पर चार-छह लोहे के नुकीले तीर चुभा देता है। इस कार्य में मातादोर की तीव्र गति, शारीरिक स्फूर्ति, पैंतरेबाजी, हाथ-पैर की कुशलता जिससे वह सांड़ को बार-बार अपने पास बुलाकर स्वयं हट जाता है और उसे चकमा देता है एवं सर्वोपरि उसका अद्‌भुत साहस देखते ही बनते हैं। बलवान पशु आहतावस्था में पीठ और गर्दन से खून की पिचकारियाँ फेंकता हुआ अखाड़े में इधर-

उधर क्रोधोन्मत्त होकर दौड़ता फिरता है। गिरता है, फिर व्याकुल स्वाभिमान के साथ उठकर दुगने वेग से मातादोर पर टूटता है। लेकिन इस बार युद्ध के अन्तिम सोपान में मातादोर के हाथ में चमकती हुई दोधारी तलवार होती है। अधमरा, विक्षिप्त और निहत्था पशु अपने सुसज्जित यमराज का भला क्या बिगाड़ सकता है! लम्बी तीक्ष्ण तलवार उसकी पीठ को चीरती हुई हृदय को बेध जाती है। कुछ समय पहले की शक्ति, स्फूर्ति और शान की जीवित प्रतिमा-सा श्यामल पशुराज सींगों के बल माथा जमीन पर गड़ाकर लोट जाता है। इधर दर्शकों की दीर्घा में हैट, रूमाल, चाकलेट और वैनिटी बेग हवा में उछल पड़े, मातादोर की प्रशंसा में चीखें निकल गयी और उधर सांड़ ने तड़प-तड़प कर चारों पैर ऊपर उठाकर प्राण दे दिये, मानो ऊपर वाले को अन्तिम बार हाथ जोड़कर कह रहा हो—'देखो, इन हत्यारों की यह लीला।'

पहला सांड़ धराशायी हुआ, तो मेरे रोंगटे खड़े हो गये। हेमिंग्वे के उपन्यासों में सांड़-युद्ध के कलात्मक, गौरवान्वित चित्रण ही देखे थे। इसकी जघन्य यथार्थता का एहसास प्रत्यक्ष देखने से हुआ। लगा हेमिंग्वे ने निश्चय ही अपनी कलम के जोर से सांड़ को महिमा-मण्डित करते-करते मनुष्य को भी जो गौरव दे दिया है, वह उनकी अपनी नस्ल के साथ स्पष्ट पक्षपात था। वस्तुतः जिस छल, क्रूरता, पाखण्ड, प्रदर्शन और कृत्रिम शौर्य के साथ सांड़ को धीरे-धीरे छेद-छेदकर, तड़पा-तड़पाकर, थका-थकाकर अपमानित कर-करके मारा जाता है, उसे शायद मनुष्य की आदिमवृत्ति भी नहीं स्वीकार करेगी। यह सचमुच सांड़-युद्ध क्या, कोई भी युद्ध नहीं है। यह साफ-साफ सांड़ की बेरहम हत्या का मनोरंजक प्रदर्शन है। छह हजार वर्ष पुरानी सभ्यता का दम्भ भरने वाला मनुष्य आज भी कितना बर्बर है, इसका मानो ब्योरा स्पेन के उस तेजोमय सूर्य और नीले आकाश के नीचे लिखा जा रहा हो। हॉकी, फुटबॉल या क्रिकेट के खेल तक तो अपनी कल्पना जाती है। पर किसी जीते-जागते निर्दोष प्राणी को गेंद के स्थान पर रखकर खेल रचने की प्रथा प्राचीन युग के ग्रन्थों में पढ़ता रहा हूँ। एक घण्टे में एक के बाद एक तीन सांड़ खेल डाले गये। तीन और बाकी थे, उस दिन के कोटा में। प्रत्येक बार मनु की सन्तानें बुद्ध, ईसा और गांधी की छाती पर मूंग दलकर खड़ी होतीं, सीटियाँ बजातीं, शाबाश-शाबाश का जयनाद करतीं और अगला 'स्कोर' करने

की माँग करतीं। मैं हैरानी, ग्लानि और वितृष्णा से उनके चेहरे देखता और मन-ही-मन कहता "हिटलर मरा कहाँ है? वह तो लोगों के दिलों में आज भी बैठा है। दरअसल मनुष्यों की इस दुनिया में हर साल विश्व-युद्ध का ताण्डव हो तो आश्चर्य क्या!" आदिकाल से मनुष्य पशुओं का शिकार खेलता आया है। युद्ध रचाता आया है। लोभ, क्रोध या द्वेष में हत्याएँ भी करता आया है। लेकिन मनोरंजन की खातिर, खेलने और समय काटने के लिए देशव्यापी स्तर पर, सार्वजनिक रूप में, पेशेवर तौर पर, राष्ट्रीय 'पास्टाइम' के नाम पर इस निर्ममता से एक मूक प्राणी की हत्या कर सकता है, इसकी मैंने अभी तक औपन्यासिक प्रतीति ही महसूस की थी। अब वह 'खेल' सामने देखकर मुझे लगा, मानो सारा मानव-समाज उन सांड़ों का बैरी था। सुन्दर, कीमती वस्त्रों में लिपटे नर-नारियों को देखकर बार-बार मुझे यही लगता कि ये किसी के मित्र नहीं हो सकते। बरबस आँखें डबडबा आयीं। लोग धूप का चश्मा उतार रहे थे, मैंने लगा लिया और तेजी से भीड़ को धकेलता हुआ "रिंग' के बाहर आ गया। भीगा चश्मा पोंछ रहा था कि भीतर से फिर सीटियाँ और चीखें सुनायी दीं। नया 'स्कोर' अपना उत्तराधिकार पाने के लिए अखाड़े में आ गया था। मैं दूर भागता जा रहा था। पर 'रिंग' का शोर मेरा पीछा ही न छोड़ता था।

झुटपुटा-सा हो गया था। बाथरूम में ठण्डे पानी के फव्वारे के नीचे बैठा सिर-दर्द की प्राकृतिक चिकित्सा कर रहा था और आज के दो परस्पर विरोधी अनुभवों की तुलना कर रहा था। प्रादो का कला संग्रहालय और 'बुलरिंग' के समानान्तर अस्तित्व इस जगत के दो स्थिर सत्य बन गये हैं, जिन्हें मनुष्य अपनी अहम् शक्ति से अपने दोनों बाहु पाशों में बाँधे चूम रहा है। इनमें से एक विषकन्या हो सकता है, इसका विश्वास वह अभी नहीं करना चाहता।

धीरे-धीरे अंधेरा घिर आया। संभले मन से एक बार फिर सभ्यता के बीच आकर टहल रहा था। विश्वविद्यालय जाने का मन नहीं हुआ। जोन्स अष्टोनिओ एवेन्यू, इण्डिपेण्डिसिया स्क्वायर, प्रादो एवेन्यू आदि की चौड़ी फैशनेबुल सड़कों की चकाचौंध में भटकता हुआ अनायास ही एक नाचघर के सामने जा पहुँचा। बड़े-बड़े पोस्टरों पर फ्लामिंको नृत्य की मोहक मुद्राएँ और भंगिमाएँ छपी थीं। स्पेन का यह मशहूर नृत्य मैं कई बार देख चुका था। पर

स्पेन में—वह भी राजधानी मैड्रिड में—उसको देख आने का गर्व करना चाहता था। नाचघर की सजावट, टिकट दर, विज्ञापन और व्यवस्था को देखकर स्पष्ट था कि यहाँ शुद्ध कला की दृष्टि से श्रेष्ठ जाति का नृत्य होता होगा। नक्शे में देखा होटल बहुत दूर नहीं था। टैक्सी से शायद २० पेसेता (२.१० रुपये के करीब) लगेंगे। अतएव एकदम खा-पीकर नौ बजे तक आना ठीक होगा।

निटकर होटल से निकला तो सामने हिन्दी वाले मलार्थी महाशय मिल गये। "कहो भाई, आज सवेरे से ही लापता थे! क्या-क्या देखा?" उन्होंने एक साँस में कह डाला।

"मैं तो आज यहीं घूमता रहा। प्रादो और 'बुलफाइट' देखे। अब फ्लामिंको नाच देखने जा रहा हूँ। टोलेडो कल जाऊंगा।"

"अरे, तब तो मैं भी फ्लामिंको देख आऊँ। जरा रुकेंगे? मैं गरम कोट लेता आऊँ। रात को ठण्ड बढ़ जाती है।"

हमारी मेज के ठीक सामने रंगीन काँचों से जड़े हुए फर्श पर काली जूतियों की तालबद्ध ठाप देती हुई और दोनों हाथों से टिटकारी बजाती हुई एक सुडौल युवती नाच रही थी। गिटार, वायलिन और हल्के ड्रमों के संगीत के साथ उत्साही दर्शक तालियाँ भी बजाते जाते। आर्केस्ट्रा के लोग बीच-बीच में उत्साहवर्द्धक चीख लगाते। अचानक वायलिन वादक के हाथ रुक गये। चारों ओर सन्नाटा छा गया। नर्तकी अपने पुष्ट वक्ष-स्थल के पूरे उभार को उठाये हुए भागने को तैयार चकित हिरनी की तरह पंजों पर खड़ी मुस्करा उठी। लाल होंठ जरा और काँपे। तना शरीर, कुछ और सीधा हुआ। दोनों हाथ ऊपर चन्द्राकार मुद्रा में उठ गये। एक तड़ाका-सा हुआ। चुस्त पोशाक में कसी गठीली देह को धनुष की तरह पीछे खींचे एक युवक उछलकर युवती की ओर झुका। पैर की प्रचण्ड ठाप दी। दोनों ने अपने-अपने सीने उछाले। एक साथ पैर की ठाप दी। युवती ने अपने रक्त वर्ण के लाल लहंगे को बायें से दायें झटकारा और अकल्पनीय द्रुत लय में दोनों के ठाप-ठपाठप-ठपाठप, ठप-ठपाठप-ठप-ठपा फर्श पर पड़ने लगे। बीस सेकण्ड ही हुए होंगे कि युवक ने संकेत किया। युवती मूर्तिवत् खड़ी हो गयी। वायलिन वादक ने आँखों में, मानो अपने मन का सारा मद उतारा और फिर उन्हें बन्द कर एक प्रेमगीत की

आलाप छेड़ दी। लोग विभोर हो उठे। नर्तकी और नर्तक ने भाव-मग्न होकर एक दूसरे की ओर देखा और झूम उठे। पैर उठे, गिरे और फिर उठे। हाथ की टिटकारी टिकटिका उठी। बाजे झनझना उठे। ड्रमों पर थाप जा गिरी। पूरा नृत्य आधे घण्टे तक चला। बन्द हुआ तो लगा अपने को खोकर फिर पा लिया हो। देर से बँधी साँस खींचकर मलायी मित्र की ओर देखा। साफ था वे बेचारे निराश-से थे। अब मैं समझा वे फ्लामिको को कुछ और समझकर आये थे। योरोप के दूसरे देशों में कई व्यवसायी लोग फ्लामिको के नाम पर अश्लील देह-प्रदर्शन ही कराते हैं। कहीं-कहीं तो एकदम 'स्ट्रिपटीज' या नग्न मांसल-नृत्य ही इसका पर्याय हो गये हैं। मैं मलायी मित्र की ओर देखकर हँस पड़ा। वे शायद समझ गये। बोले, "संगीत है तो जोरदार, मगर शोर बहुत होता है। मैं अब जाऊँगा।"

ग्यारह अभी नहीं बजे थे। मैं होटल लौट रहा था। शहर के लिए यह बहुत देर नहीं थी। सड़कों पर तमाम लोग आ-जा रहे थे। हल्की गुलाबी ठण्ड थी। अच्छा लग रहा था। सोचा होटल पैदल ही चल दूँ। अतएव धीरे-धीरे फुटपाथों पर चहल-क़दमी करता हुआ चला जा रहा था। एक चौराहे के पास अचानक देखा कि दो पुलिस के सिपाही मेरी ओर काफी गौर से देख रहे थे। तीन दिन के प्रवास में अब इसका आदी हो गया था। अतएव उन्हें अनदेखा कर मैं अपनी राह चला गया। लेकिन देखता हूँ कि अब दोनों सिपाही मेरे पीछे-पीछे चलने लगे। लगभग पच्चीस गज की दूरी पर वे एक फर्लांग तक मेरे पीछे चले होंगे कि मुझे लगा कि मैं होटल का रास्ता भूल रहा हूँ। एक मोड़ पर कुछ क्षण दुविधा में खड़ा रहा। इतने में बगल के एक मकान से एक बुढ़िया निकल पड़ी। मैंने हाथ के इशारे से उससे होटल का रास्ता पूछा। उसने हाथ के ही इशारे से बताया कि चिन्ता मत करो, पास ही है। ऐसे-ऐसे चले जाओ। मैं आगे बढ़ गया। तब तक दोनों पुलिस वाले बुढ़िया के पास आकर बातें करने लगे। स्पष्ट था, वे मेरे बारे में जाँच-पड़ताल करना चाहते थे। लेकिन विदेशी होने के कारण मुझे वे बिना किसी पूर्व भूमिका के रास्ते में रोककर शायद पूछताछ नहीं कर सकते थे। बुढ़िया से पूछकर फिर वे मेरे पीछे लग गये। अब मैंने इस नाटक को समाप्त कर देने का निश्चय कर लिया। एक क्षण सोचा और लौट पड़ा। होटल का रास्ता जानते हुए भी मैंने दोनों

पुलिस वालों से अंग्रेजी में ही कहा, "आप पुलिस के हैं। शायद अंग्रेजी जानते हों। मैं फलाँ होटल जाना चाहता हूँ। उस वृद्ध महिला ने इशारे से बताया जरूर था पर मैं ठीक-ठीक समझ नहीं सका। क्या आप लोग मेरी मदद करेंगे ?" मेरी 'सीधी कार्य-वाही' काम कर गई। दोनों थोड़ी अंग्रेजी जानते थे। कुछ अचकचा-से गये। लेकिन थे तो पुलिसराज के सिपाही। पुलिसोचित अभिमान से बोले, "जरूर। आप ऐसे जाकर ऐसे मुड़ जायें और फिर ऐसे....।" बताकर वे दोनों खड़े रह गये। और स्पष्ट कर देने के लिए कि अब मेरे पीछे आने की क्या जरूरत है, मैंने जोर से 'गुडनाइट' कहा और होटल की ओर चल दिया। मोड़ पर पहुँच कर मैंने पीछे मुड़कर देखा। दोनों पुलिस वाले वापस जा रहे थे।

गोया, फ्लामिंको, साँड़ और पुलिस। इसको कहते हैं मेड्रिड। स्पेन की वीरांगना राजधानी। प्राचीन की अर्वाचीन पर विजय का स्मारक। इतिहास और समय को जेब में रख लेने वाले तानाशाह का कार्य केन्द्र। सचमुच मैड्रिड। होटल दिखाई दिया। मैं अभी मैड्रिड में ही हूँ। रात है। लेकिन सुबह भी होगी—मैड्रिड है तो क्या हुआ ! प्रकाशपुञ्ज पश्चिम से पूरब में आयेगा ही। तानाशाहों की जेबों में उसे रखने का स्थान नहीं है।

दो महाद्वीपों में बसा शहर : इस्ताम्बूल

□ □ □

टर्की में एक कहावत है कि किसी होटल वाले से अपना रास्ता कभी न पूछें। उस दिन की भीगी रात में जब हमारा विमान उतरने के लिए इस्ताम्बूल शहर का चक्कर लगा रहा था तो यह कहावत बरबस याद आ जाती और मैं मुस्करा उठता। नीचे शहर की बत्तियाँ अब स्पष्ट दिखने लगी थीं। बादल अब हमारे नीचे नहीं, ऊपर थे। सोच रहा था श्री वाइले को यदि मेरा पत्र समय पर न मिला होगा तो आधी रात को फजीहत होगी। कभी-कभी अप्रत्याशित आशंका सत्य का दूत होती है। श्री वाइले का कहीं पता न था। हवाई अड्डे के सूचना दफ्तर ने लाउड स्पीकर पर कई बार उन्हें पुकारा। उनका फोन नम्बर भी नहीं था। निरुपाय होटल वालों से ही 'रास्ता' पूछना पड़ा। सब ने अपने-अपने मन के दाम लगाये। एक रात के लिए २५ रुपए, २२ रुपए, २० रुपए। एक ने मेहरबानी दिखाई—"अच्छा १९ रुपए ही दीजिए। आइए!" अपने अन्तिम कृपालु को सूटकेस सौंपने ही वाला था कि सूचनालय की तन्वंगी सहायिका दौड़ती आई।

"जनाब, टर्किश एयरलाइंस की बस अभी छूट रही है। शहर चले जाइए। कहीं न कहीं सस्ता होटल मिल जाएगा। इनसे पिण्ड छुड़ाइये।" कहकर मेरा कैमरा वाला थैला उठाने लगी। होटल एजेण्टों ने प्रतिवाद के स्वर में कुछ कहा जो मैं समझ नहीं सका। लेकिन मेरी कल्याणीया ने आँख के एक ऐसे झटके से और मुस्कराकर उन सब को जवाब दिया कि क्षण भर में ही उनके चेहरे खिल उठे। सबकी दृष्टि मुस्कराने वाली की बेखबर काया पर अटक गई थीं, जो मेरा थैला झिझक के साथ दो उंगलियों में उठाये तेजी के साथ द्वार पर खड़ी बस की ओर दौड़ने ही वाली थी। मैंने सोचा बस चली ही जाती तो क्या बुरा था। गुमराह बटोही बने रहने में क्या कम लुत्फ है! पूछ सका तो केवल इतना ही, "आप इस अड्डे पर कब से काम कर रही हैं?"

"करीब एक साल से," जवाब मिला।

एक साल से इस रूपसी से रोज मिलते रहने के बावजूद उसके सौन्दर्य

का यह जादू ! टर्किश मर्दों की कद्रदानी की मन ही मन प्रशंसा करता हुआ बस में चढ़ गया । इच्छा थी, पूछता, "तीन दिन बाद आगे की यात्रा के लिए फिर यहीं आऊँगा । आपके दर्शन होंगे ही ।" किन्तु टर्किश रूपसियों के स्वभाव से अभी तक अनभिज्ञ था । खतरे में कौन पड़ता । संयोगवश बस में विमान कम्पनी का एक कर्मचारी भी था जिससे युवती ने मेरा परिचय कराते हुए कहा, "ये सज्जन कई होटलों को जानते हैं । आपका समुचित प्रबन्ध कर देंगे ।"

हवाई अड्डों पर इतने निजी तौर पर सामान्यतः किसी यात्री को मदद नहीं दी जाती । लेकिन मेरी कठिनाई और रात में अधिक यात्री न होने के कारण मुझे यह सुविधा मिल गई ।

सबेरे मेरे अमरीकी मित्र श्री वाइले मिले । मालूम हुआ कि वे मध्य रात्रि तक अड्डे के बजाय शहर के हवाई टरमिनल पर मेरी प्रतीक्षा करते रहे थे, क्योंकि उन्हें बताया गया था कि विमान से आने वाले सब यात्रियों को होटल भेजने के पहले वहीं लाया जाता है । लेकिन चूँकि अड्डे के कर्मचारी ने मुझे टरमिनल के पहले ही एक होटल पर उतरवा लिया था, मैं उनके लिए या तो इस्ताम्बूल पहुँचा ही नहीं था या गायब था । इस प्रकार करीब १३ घण्टों के बाद १२ बजे दोपहर को कहीं जाकर मेरे 'ठिकाने लगने' की प्रक्रिया समाप्त हुई ।

वेनिस अपनी नहरों के लिए, आगरा अपने ताजमहल के लिए, न्यूयार्क अपनी गगनचुम्बी इमारतों के लिए, लेनिनग्राद अपने पुलों और बगीचों के लिए विख्यात हैं । इतिहास और भूगोल दोनों ने इस शहर को वह विलक्षणता प्रदान की है जो संसार के शायद ही किसी और शहर को प्राप्त हो । इसका प्राचीन नाम कुस्तुनतुनिया था, जो सदियों तक इस्लामी सभ्यता का प्रमुख केन्द्र था । बहुत पहले नहीं सन् १९२२ में आधुनिक टर्की के क्रान्तिकारी पिता कमाल अतातुर्क ने कुस्तुनतुनिया के खलीफा को पदच्युत कर टर्किश राज्य को धर्मनिरपेक्ष घोषित कर दिया । तब से इस्लामी सभ्यता का केन्द्र धीरे-धीरे भूमध्यसागर को पार कर मिश्र की राजधानी काहिरा में स्थापित होने लगा है । सांस्कृतिक गढ़ के अलावा कुस्तुनतुनिया टर्की की राजधानी भी थी । किन्तु जनसत्तात्मक क्रान्ति का प्रमुख केन्द्र अंकारा में होने के कारण अब

अंकारा ही देश की राजधानी है। आधुनिक युग में इतने परिवर्तन होने के बावजूद भी इस्ताम्बूल आज टर्की के जीवन-व्यापार का कई दृष्टियों से सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र है। प्रमुख शिक्षा संस्थाएँ, औद्योगिक कम्पनियाँ, अनाज मण्डियाँ, स्वदेशी बाजार, आयात-निर्यात की एजेन्सियाँ इत्यादि १६ लाख आबादी की इस महानगरी में ही है। टर्की का सबसे बड़ा शहर होने के अनुरूप ही यहाँ की भीड़ और सार्वजनिक जीवन भी है। लेकिन इस्ताम्बूल की सबसे विलक्षण विशेषता है इसकी भौगोलिक स्थिति। दुनिया का यही एक मात्र शहर है जो दो महाद्वीपों पर स्थित है। शहर का पश्चिमी भाग यूरोप और पूर्वी भाग एशिया में पड़ता है। दोनों भागों को अलग करती हुई एक छोटी सी खाड़ी बहती है, जो कृष्णसागर को मारमरा सागर से जोड़ती है। इस नदी जैसी दिखने वाली खाड़ी को किसी नाम विशेष से नहीं केबल बॉसफोरस कह कर पुकारा जाता है, इसका अर्थ ही खाड़ी होता है।

वस्तुत: टर्की देश भी इन दो महाद्वीपों में बँटा है। इस्ताम्बूल से पश्चिम का सारा प्रदेश यूरोप में ही है जिसकी सीमाएँ बल्गेरिया और यूनान से मिलती हैं। यूरोप और एशिया को अलग करने वाले प्रसिद्ध यूराल पर्वत को यदि हम छोड़ दें तो इस्ताम्बूल में वॉसफोरस पर बने ये पुल ही हैं जो इन महाद्वीपों को स्थल मार्ग से जोड़ते हैं। दूसरे दिन सवेरे जब इस जलपथ से गुजरते एक जहाज को निहारता हुआ खड़ा था, तो मन में एक अजीब-सी अनुभूति हो रही थी। यूरोप में खड़ा होकर पानी के उस पार एशिया को देख रहा था। दो महाद्वीपों को एक साथ गले लगाये इस्ताम्बूल शहर पहाड़ियों में, घाटियों में और बॉसफोरस के इर्दगिर्द सुनहली धूप में चिलक रहा था। दो भिन्न संस्कृतियों, समाजों और जीवनशैलियों का मिलन प्रत्यक्ष सामने था एक शहर में, एक बड़े परिवार में। प्राचीन और नवीन एक सड़क से कन्धे घिसते हुए चल रहे थे। इस्ताम्बूल एक महान् कल्पना का स्वाभाविक प्रतीक बन गया-सा लगता था।

भाग्यवश सवेरे मौसम साफ था। धूप रह-रह कर निकल पड़ती थी। शहर की भाग-दौड़ शहर जैसी ही थी। श्री वाइले 'वर्ल्ड काउन्सिल ऑव चर्चेज' के शरणार्थी विभाग में काम करते थे। कई जगह फोन करने के बाद आखिरकार उन्हें पकड़ पाया। उन्होंने बताया कि मेरे ठहरने की व्यवस्था डच दूता-

वास में उन्होंने पहले से ही कर रखी थी। सो होटल छोड़ कर उनके दफ्तर आ जाऊँ।

उनके दफ्तर टैक्सी से जाना था। होटल का बिल चुका कर बाहर आया तो दो टैक्सियाँ खड़ी थीं। दोनों को गलती से मेरे लिए ही बुलाया गया था। इन मामलों में इस्ताम्बूल यूरोप से अधिक एशिया था। दोनों टैक्सी वाले कई मिनट तक चोंचें लड़ाते रहे। मैं मन ही मन इस जबानी रस्साकसी का रस ले रहा था। एक के हाथ में मेरा सूटकेस था, दूसरे हाथ में अटैची। होटल का द्वारपाल डर रहा था, मैं कहीं नाखुश न हो जाऊँ, जिससे उसकी बख्शीश मारी जाये। हुकूमत के स्वर में वह बोला : "तुम दोनों जाओ चूल्हे में। मैं साहब के लिए दूसरी टैक्सी लाता हूँ।"

पर मैंने बनावटी गम्भीरता से कहा, "नहीं, नहीं ! एक में तो मैं बैठा जाता हूँ। दूसरे में रख दो मेरा सामान। भाड़ा ये दोनों बाँट लेंगे।" यह सुनते ही तीनों अपना-अपना पेट भूल कर हँस पड़े। उनमें से बूढ़े टैक्सी वाले के दाँत कुछ इस प्रकार से टूटे थे कि उसे देखकर होटल के बैठकखाने से अभी तक इस दृश्य का चुपचाप मजा लेती एक महिला ऐसी खिलखिलायीं कि कदाचित खिड़कियों के काँच में मुझे हल्का-सा कम्पन दिखाई दिया। जीत इस अनजाने विदूषक की हुई। पर सबसे अप्रिय निराशा मिली द्वारपाल को। टैक्सी रवाना हो जाने के बाद उसे एहसास हुआ कि मैं बख्शीश देने का कट्टर विरोधी हूँ।

इस प्रकार दो गरीबों का सबेरे-सबेरे अपशकुन कर मैं अपने मित्र के दफ्तर पहुँचा। वहाँ से डच दूतावास में सामान आदि रखकर हम दोनों भोजन के लिए उनके घर गये। अमरीकी घर और शिष्टाचार से अब तक मेरा पूर्ण परिचय हो चुका था। सहज भाव से उस वृद्ध दम्पत्ति से नाना विषयों पर चर्चा होती रही। श्री वाइले ईसाई मिशनरी होने के नाते धर्म में विशेष रुचि रखते थे। मुँह में उस समय पुडिंग का टुकड़ा डाल रहा था कि वे बाले, "डॉ॰ जायसवाल, आपने हमें हिन्दू-धर्म पर इतना बता दिया जितना हमें कई पुस्तकों में भी नहीं मिलता—वह भी ऐसे संक्षेप में। लेकिन मुझे आश्चर्य है हिन्दू-धर्म ईसा के बिना क्या करता होगा।"

पुडिंग का टुकड़ा मेरी चम्मच से गिरते-गिरते बचा। अपने पाँच वर्ष के

प्रवास में आज तक ऐसा सीधा और भोला प्रश्न मैंने कभी नहीं सुना था। समझ में नहीं आया अपने पितामह स्वरूप मित्र को कैसा उत्तर दूँ। अधिक पशोपेश में रहने में भी क्या तुक थी। मेरे मुँह से निकला, "वही जो ईसाई धर्म बिना कृष्ण या बुद्ध के करता होगा।" उत्तर प्रश्न का कुछ ऐसा रूपान्तर-सा था कि हम तीनों अनायास ही मुस्करा उठे। श्री वाइले को दो बजे फिर दफ्तर पहुँचना था। हमारे पास लगभग बीस मिनट और थे। मैंने इसका पूरा फायदा उठाया। हमारी चर्चा अब केवल हिन्दू-धर्म पर होती रही। अन्त में उठते हुए उन्होंने इतना ही कहा, "हिन्दू विचारधारा हमारे लिए इतनी दुरूह है, इतनी विचित्र है कि सहसा कुछ पूछते संकोच होता है।" यह सुन कर मैंने कुछ अपराधी का-सा भाव महसूस किया। पर वृद्ध आँखों में देखा, तो आश्वस्त होने में देर न लगी। उनमें कोई शिकायत या खीझ नहीं थी। केवल शान्त दुर्बोधता का सहज भाव था।

एक हमारे गान्धीजी थे, जो सब धर्मों को मूलगत एक ही मानते थे। उनके लिए यह कठिन नहीं था, क्योंकि उनकी दृष्टि धर्मों के भावात्मक अथवा आस्थामूलक पक्ष पर पहले जाती थी। उनके बौद्धिक और दार्शनिक पक्षों से टकराने की न उनकी इच्छा थी और न ही योग्यता। दुर्भाग्यवश या सौभाग्य वशहिन्दू धर्म का यही पक्ष है जिसकी बीहड़ता में पश्चिमी ही नहीं भारतीय विचारक भी खोये बिना नहीं रहते। भारतीय बुद्धि ऐसे जंगल में खोने की आदी है। किन्तु पाश्चात्य बुद्धि विज्ञान प्रिय है। वह जल्दी ही ऊब जाती है। फलस्वरूप उनके लिए हिन्दू धर्म और संस्कृति एक ऐसे बीहड़ वन के समान है जो जितना ही रोमाण्टिक है उतना ही अथाह और दुर्भेद्य। वाइले जी का प्रश्न इसी पर आधारित था। वह यही कहना चाहते थे कि ईसा का उपदेश सीधा सरल और सुग्राह्य है। ऐसे निर्द्वन्द मसीहा के बिना हिन्दू धर्म में कैसे जीवन विद्यमान है, यही उनके आश्चर्य का कारण था। इतना सब कह चुकने के बाद भी मैं सन्तुष्ट नहीं था। उनकी जर्मन फोल्कसवागन में हम शहर की और जा रहे थे। सड़क पर यातायात पूरा एशियायी था जो चाहे जहाँ से सड़क पार कर सकता था। धीरे-धीरे, चाहे दौड़कर। अगल-बगल देखकर चाहे नाक गर्दन में डाले, हाथ जेब में लटकाये, चाहे कन्धे पर हलाल होने वाली भेड़ को रखे। अतएव उनकी बातों में लगा खतरा नहीं बढ़ाना चाहता था।

कार का दरवाजा खोलते हुए मैंने कहा, "मेरे ख्याल से यूरोपीय लोगों में प्रतियोगिता की भावना इतनी प्रबल है कि वे केवल यह जानना चाहते हैं कि उनका धर्म किसी से छोटा तो नहीं है। अतएव यह तुलना करने की आदत और उससे उत्पन्न हुई बौद्धिक पीड़ा !"

उनसे विदा लेकर के. यल. यम. विमान कम्पनी के दफ्तर की ओर चला तो लगा मुझसे गुस्ताखी तो नहीं हो गयी। वे लगभग ७० साल के थे। मैं उनके सामने बच्चा। लेकिन यूरोप में व्यक्तिवादी सभ्यता होने के कारण उसकी छोटाई-बड़ाई का हौवा ऐसा नहीं है जैसे भारत में। भारत में कुतर्की दकियानूस पुरखे प्रायः यह कहते सुने जाते हैं, "बेटा आज तुम चाहे जो हो गये हो। पर तुम्हारे पिताजी को नाक पोंछना मैंने ही सिखाया था।" वार्तालाप का ऐसा समारम्भ सुनकर भला उस पनपते हुए 'बेटे' का मुंह क्या खुलेगा! पश्चिम के वैयक्तिक समाज में अहम् भाव ने बहुत पोषण पाया है, यह सच है। किन्तु ऐसी सभ्यता में विकसनशील व्यक्ति को स्वतः विकास के लिए बहुत प्रेरणा, आजादी और प्रसार मिलता है।

हमेशा की तरह कुछ इसी उधेड़ बुन में लगा था कि के. यल. यम. का दफ्तर आ गया। वहाँ मुझे आगे की यात्रा के लिए विमानों में अपनी जगह सुरक्षित करानी थी। वहाँ से निकला तो अब केवल घूमना ही घूमना था। तीन बज रहा था। सूरज की गर्मी रफा हो रही थी। सोचा सर्दी बढ़ने के पहले ही बासफोरस के इर्दगिर्द का क्षेत्र, जहाँ हमेशा हवा बहती रहती है, पहले देख आऊँ। कुछ लम्बे डग भरता हुआ जा रहा था कि बगल से आवाज आयी, स्वच्छ हिन्दी में, "आप भारत के हैं या पाकिस्तान के ?"

"भारत का।"

"आह ! क्या कहने हैं, साहब ! मेरा भी यही ख्याल था।" ये थे एक टर्किश युवक शिरीन ! भारत और भारत की हर चीज पर आशिक। उम्र २०-२२ साल की। भारतीय फिल्मों, गानों और मित्रों से ही इन्होंने इतनी हिन्दी सीख डाली थी। इसके अलावा इस्ताम्बूल स्थित भारतीय कॉन्सलेट में इन्होंने दो वर्ष काम किया था, जहाँ उन्होंने अपने काम से अधिक हिन्दी सीखने का ही काम किया। और अब अनिवार्य सैनिक प्रशिक्षण के लिए जाने के पहले जो थोड़ा-सा अवकाश का समय मिला है, उसमें शहर की सड़कों पर भारतीयों

को अन्दाजन टोक-टोक कर खोजते फिरते हैं। तो भला हिन्दी और मैं उनसे बचकर निकलते कैसे ? बड़े उत्साह, तेजी और लहजे से बोलते। वे बात-बात पर अरबी-फारसी के शब्दों के बदले शुद्ध हिन्दी के शब्द पूछते। साथ ही उच्चारण और स्वराघात की बात भी न भूलते। ऐसा लगा सड़क पर चलते हुए हिन्दी की कक्षा ले रहा हूँ, वह भी विदेशियों को पांच साल हिन्दी पढ़ाने के बाद। आप सोच ही सकते हैं मेरी करुणावस्था। बॉसफोरस के आसपास के स्थान देखकर उन्होंने पुराने शहर की ओर चलने का संकेत किया तो मैंने सोचा यदि ये कहीं एक घण्टा मेरे साथ और चिपके रहे तो सिर तनाव के कारण फट जायेगा। और शिरीन साहब थे कि बार-बार पैंतरा बदलते हुए मेरे सामने आते और उसी बाल-सुलभ स्फूर्ति से पूछते जाते, "तकिया को हिन्दी में क्या कहते हैं।" कोई साधारण शब्द की हिन्दी पूछते तो झट बताकर छुटकारा मिलता।

अन्त में इस संकट से उबरने के लिए मैंने उन्हीं का अस्त्र चलाया। उनसे प्रश्न पर प्रश्न पूछना शुरू कर दिया। एक का उत्तर खत्म होने के पहले ही दूसरा प्रश्न पूछ बैठता। एक बार अचानक जब कोई प्रश्न न सूझा तो पूछ बैठा, "अरे, ये भद्दी टाँगोंवाली औरतें भला इतनी ऊँची स्कर्ट क्यों पहनती हैं ?"

शिरीन कुछ संजीदे स्वभाव के व्यक्ति थे। मुस्कराते हुए कुछ कहने को सोचने लगे। उनकी संजीदगी देखकर मुझे थोड़ा आराम जरूर मिला। हाथ से उनका कन्धा दबा कर खुद ही बोला, "भद्दी हों तो हों। हैं तो औरत की ही।"

हमारे टर्किश दोस्त पहली बार खिलखिलाये। बड़ा अच्छा लगा। फिर भी जिस उद्देश्य से अपना 'मूड' बदला था वह पूरा न हुआ। शिरीन की कैंची चलती रही। आखिर मेरे प्रश्नों के उत्तर भी तो हिन्दी में दे रहे थे।

वाराणसी, कलकत्ता और कानपुर की गलियाँ देख चुका था। अतएव इस्ताम्बूल की गलियाँ देखकर चौंका नहीं। बहुत से अमरीकी यात्री, जो चौड़ी सड़कों के आदी होते हैं, इस्ताम्बूल को गलियों के लिए विशेष उल्लेखनीय मानते हैं। जो भी हो, गन्दगी, दुर्गन्ध, अंधेरा, अव्यवस्था और भीड़ बाकायदा थी। कहीं-कहीं तो इनका करुण समन्वय भारतीयों के लिए भी उल्लेखनीय था। शहर के नये भाग में बने हिल्टन होटल जैसी अट्टालिकाएँ अभी अभी देख

चुका था। पर बॉसफोरस के किनारे-किनारे शहर की ओर जाते समय दाहिनी ओर के ऊँचे टीलों पर बसी बस्ती, एशियायी और पुराना इस्ताम्बूल 'कॉसमोपोलीटन' शब्द की सामाजिक अभिव्यक्ति से अधिक आर्थिक अभिव्यक्ति की ही प्रतीति कराता था। सारा क्षेत्र घर-घरौंदो जैसे मकानों का, जिन पर नदी का पानी उतर गया हो, एक ढेर मात्र था, जिसमें मनुष्यों के दल के दल मधुमक्खियों की तरह छाये से दिखते थे। रास्ते तंग, ऊबड़-खाबड़, उतार-चढ़ाव वाले और मोड़ों से भरे हुए। भीड़ का आदि अन्त नहीं। इस पर मजे की बात यह है कि बड़े-बड़े ट्रकों को छोड़कर प्रायः सभी प्रकार की सवारियाँ इनमें से होकर चली जाती थीं। यूरोप की चौड़ी और सुव्यवस्थित सड़कों को भूला नहीं था। इन खतरनाक गलियों से मोटरों को उतरते-चढ़ते और कठिन नुक्कड़ों पर मुड़ने देखता तो आशंका से एक ओर खड़ा होकर देखने लग जाता। कहीं किसी की यहीं कपाल क्रिया न हो जाये। पर जैसे चालक वैसे ही राहगीर। बड़ी कुशलता से एक दूसरे से कतरा कर निकल जाते थे। ऐसी ही गलियों में टकराते-लुढ़कते हम लोग आखिरकार एक बड़ी भारी मण्डी में पहुँचे, जिसे 'बड़ा बाजार' कहते हैं। इसमें सब दूकानें और सड़कें मकानों में छतों के नीचे हैं। इसलिए बरसात और ठण्ड में भी लोग इतमीनान से सौदा कर सकते हैं। इस प्रकार के बाजार पूर्वी देशों की विशेषता हैं। बम्बई, दिल्ली, मद्रास प्रभति शहरों में भी कुछ छोटी-छोटी ऐसी मण्डियाँ हैं।

'ग्रैण्ड बाजार' से हम बाहर निकले तो सड़कों पर बत्तियां जल गयी थीं। शिरीन भाई और मैं एक ही बस से अपने-अपने स्थानों के लिए चले। संयोग कहूं या क्या, शिरीन के पास किराये के पैसे ही नहीं थे। मैंने दोनों का किराया चुकाया। उन्होंने पैसा दूसरे दिन वापिस करने का वादा किया। मन ही मन उन्हें बड़ी लज्जा आ रही थी कि एक परदेशी मेहमान से उधार लेना पड़ा। मानो उसके परिमार्जनार्थ, उन्होंने अचानक कहा, "आइए, अभी ही मेरे घर चलें। दूर नहीं है। मेरे पिता और बहन आपसे मिलकर बड़े खुश होंगे। माँ इस समय जरूर नहीं होंगी। किसी रिश्तेदार के यहाँ गयी है।" मेरे बार-बार प्रतिवाद करने पर भी वे नहीं माने। शीघ्रातिशीघ्र पैसा लौटाना चाहते थे।

शिरीन परिवार टर्की के निम्न मध्यवर्गीय परिवार का ठेठ उदाहरण था।

रहन-सहन सादा और अभावपूर्ण । फिर भी सन्तोष का अभाव नहीं भारतीय गरीबों की याद बरबस आ जाती थी । पिता कपड़े की दूकान में कार्य करते थे । माँ घर का काम काज देखती थी । और बहन विवाह की प्रतीक्षा में माँ का हाथ बंटाती है । लेकिन मेरे लिए इस परिवार में जो सबसे अनोखी बात थी वह था उसका भारत के प्रति सहज अनुराग । भाई ने स्वयं हिन्दी सीखी ही, बहन (नाम था गुलैर) को भी तमाम हिन्दी के शब्द सिखा दिये । अक्सर उनकी टर्किश में हिन्दी के शब्द आ जाते जिनका दोनों रस लेते । गुलैर तो भारतीयता के प्रदर्शन में इतनी वह गयीं कि दस मिनट अन्तर्धान होने के बाद अचानक वे मेरे सामने जब आ खड़ी हुई तो मैं चौंक-सा उठा । स्कर्ट और तंग ब्लाउज में टर्किश युवती नहीं, टिकुली और साड़ी में सजी हाथ जोड़े कोई भारतीय नारी थी । अपना सौन्दर्य कुछ कम था नहीं । उस पर भारतीय पोशाक की सौम्यता । थोड़ी देर के लिए मैं भी फिसल पड़ा । यूरोप में औरतों के मुँह पर ही उनके रूप का बखान करना सीख लिया था । भारतीयता भूल-कर यही कर रहा था कि देखा शिरीन तो हँस रहे हैं पर गुलैर के गाल सुर्ख हो रहे हैं । टर्किश भारतीयता के सामने अपनी अभारतीयता का ख्याल कर चुप हो गया ।

टर्की की प्रसिद्ध काफी आयी—सुन्दर छोटे-छोटे प्यालों में । फिर भोजन का बुलावा । फिर काफी । फिर मिठाई । उसके बाद चाय । कहाँ आकस्मिक ही वहाँ जा पहुँचा था, कहाँ अब यह आवभगत और प्रेम । तीन घण्टे से अधिक बैठ चुका था । उनके वृद्ध पिता काम पर से लौटे थे, थके थे । चलने लगा तो सबने बार-बार यही कहा, "आप जब अपने देश लौटें तो सबसे यही कहें कि टर्की के लोग हिन्दुस्तान, वहाँ के लोगों और संस्कृति की बड़ी कद्र, इज्जत और प्रेम करते हैं । हमारा यह सन्देश हमेशा के लिए है ।"

अब पानी खूब बरसने लगा था । शिरीन मुझे डच दूतावास तक छोड़ने आये । रात हो गयी थी । थका था ही । भीगा मौसम था । ठण्ड भी बढ़ गयी थी । धीरे-धीरे हवा भी बहने लगी थी । गरम बिस्तरे में लेटकर चुपचाप चिन्तन करने का उत्तम वातावरण था । पड़ा-पड़ा शिरीन और उनके परिवार की बातें सोच रहा था । शायद एक बज गया था । तब तक तो इस्ताम्बूल जैसा शरीर भी हार कर सो गया था ।

योरोप में अन्तिम दिन

□ □ □

योरोप में यह मेरा अन्तिम दिन था। और मैं योरोप के अन्तिम शहर में था। योरोप का अन्तिम शहर एशिया का प्रथम शहर भी था। इस्ताम्बूल एशिया और योरोप के भौगोलिक मिलन की ऐतिहासिक भूमि है। मैं शहर के योरोपियन भाग में ठहरा था। मेरे मित्र और मेजबान के घर भी वहीं थे। इसलिये एशिया को घूमकर और देखकर ऐसा लगता था कि योरोप से विदा ले रहा हूँ। अभी विशाल एशिया महाद्वीप नापने को पड़ा था। इस्ताम्बूल में रहते हुए भी मैं वहाँ पहुँच चुका था। पर योरोप में वह निश्चित रूप से अन्तिम दिन था।

इस्ताम्बूल को आँख भर देखने के लिए जैसे मौसम की जरूरत थी वह उस बरसाती रात के बाद भी नहीं मिला। सबेरे नौ बजे के लगभग मेरे तुर्की मित्र शिरीन भाई और मैं जब घूमने के इरादे से बाहर निकले तो कुछ निराशा सी महसूस हुई। बादल घिरे ही रहे। लगता था अब बरसे, अब बरसे। दुविधा में पोर्टिको में खड़े थे कि मेरे बुजुर्ग अमेरिकी मित्र श्री वाइले का सन्देश मिला—

"राबर्ट कालेज में आज एक उत्सव मनाया जा रहा है। यदि मन करे तो हमारे यहाँ आ जाएँ। नाश्ता करके वहाँ चल सकते हैं। कालेज देखने के साथ ही साथ उत्सव देखने का मजा मिलेगा।" सुझाव अच्छा था। शिरीन से क्षमा माँग कर वाइले जी के घर पहुँचा। राबर्ट कालेज इस्ताम्बूल के एक उपनगर बेबेक में कालासागर की ही दिशा में लगभग चार मील दूर था। पादरी दम्पत्ति और मैं उनकी सुपरिचित फाल्क्सवागेन में सवार हो दस बजे तक वहाँ पहुँच गये।

राबर्ट कालेज एक अमेरिकी कालेज है जिसकी स्थापना सन् १८६३ में राबर्ट नामक किसी ईसाई पादरी ने की थी। इस्ताम्बूल में और भी कई विदेशी शिक्षा संस्थाएँ हैं, जिनमें से अधिकांश पश्चिमी देशों की हैं। राबर्ट

कालेज इन सबसे पुराना और प्रसिद्ध है। पिछले सौ वर्षों में अन्य पाश्चात्य देशों की भाँति अमेरिका ने भी अपनी सभ्यता, शिक्षा, भाषा और धर्म के प्रचार में बड़ी फुर्ती दिखाई है। चीन और जापान में जिस तेजी से अमेरिकी शिक्षा और साम्प्रदायिक चर्चों का प्रसार हुआ है, वह सर्वविदित है। इस्लामी देशों में धार्मिक कारणों से यह काम अपेक्षाकृत कम हुआ है। फिर भी मध्य-पूर्व के कई देशों में, जहाँ पहले किसी प्रकार का अमेरिकी प्रभाव नहीं था, आज कई अमेरिकी मिशन, कालेज, अस्पताल और अन्य संस्थाएँ कायम हैं। लेबनान की राजधानी बैरूत का अमेरिकी विश्वविद्यालय तो विश्वविख्यात है। पाश्चात्य शिक्षा की इतनी ठोस, सम्पूर्ण और बड़ी संस्था पश्चिम को छोड़ और कहीं नहीं है। इन संस्थाओं का मूल अभिप्राय यह है कि उन देश में रहने वाले अमेरिकी लड़के-लड़कियों को—उसी प्रकार जर्मन, अंग्रेज या फ्रांसीसी लड़के-लड़कियों को भी—अपने ही देश की सभ्यता और धर्म के अनुरूप शिक्षा मिले। पर कालान्तर में ये संस्थाएँ पाश्चात्य तत्वों, मूल्यों, चाल-चलन, फैशन, भाषा, लहजे और जीवन शैली के प्रचार के केन्द्र बन जाती हैं। कई स्वाभिमानी देशों में इसकी प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था। चीन में, जिसने साम्यवाद जैसी घोर राष्ट्रवाद-विरोधी व्यवस्था को अपनाया है, आज भी जो राष्ट्रवाद और पश्चिम के प्रति घृणा का बोलबाला है उसका मुख्य कारण अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में ऐसी शिक्षा संस्थाएँ ही हैं जिन्होंने मानवता, समाज सेवा, धर्म और अन्तर्राष्ट्रीयता की ओट में प्राचीन चीनी सभ्यता को कुचलकर देश का पश्चिमीकरण करना चाहा था। जापान में वे एक अंश तक सफल भी हो गये हैं। भारत को भी सांस्कृतिक संकट का सामना करना पड़ा है और अब भी करना पड़ रहा है।

इसलिये राबर्ट कालेज में मैंने जो देखा और निरखा, उससे मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। उत्सव क्या था। केवल दो बड़े कमरों में विद्यार्थियों ने कुछ दुकानें खोल रखी थीं जिनमें खिलौने, शौक और सजने की चीजें, केक, मिठाई आदि हलकी फुलकी वस्तुएँ बिक रही थीं। कमरे ठसाठस भरे थे। सीधा चलना मुश्किल था। घुटन-सी थी। अचानक मुझे लगा कि अमेरिकी कालेज होते हुए भी, चारों ओर अंग्रेजी ही सुनाई देते हुए भी और 'ब्ल्यू जीन' में कसे लड़के-लड़कियों के मांसल नितम्बों की परस्पर निःशब्द ठहराहट का समा

योरोप में अन्तिम दिन

□ □ □

योरोप में यह मेरा अन्तिम दिन था। और मैं योरोप के अन्तिम शहर में था। योरोप का अन्तिम शहर एशिया का प्रथम शहर भी था। इस्ताम्बूल एशिया और योरोप के भौगोलिक मिलन की ऐतिहासिक भूमि है। मैं शहर के योरोपियन भाग में ठहरा था। मेरे मित्र और मेजबान के घर भी वहीं थे। इसलिये एशिया को घूमकर और देखकर ऐसा लगता था कि योरोप से विदा ले रहा हूँ। अभी विशाल एशिया महाद्वीप नापने को पड़ा था। इस्ताम्बूल में रहते हुए भी मैं वहाँ पहुँच चुका था। पर योरोप में वह निश्चित रूप से अन्तिम दिन था।

इस्ताम्बूल को आँख भर देखने के लिए जैसे मौसम की जरूरत थी वह उस बरसाती रात के बाद भी नहीं मिला। सबेरे नौ बजे के लगभग मेरे तुर्की मित्र शिरीन भाई और मैं जब घूमने के इरादे से बाहर निकले तो कुछ निराशा सी महसूस हुई। बादल घिरे ही रहे। लगता था अब बरसे, अब बरसे। दुविधा में पोर्टिको में खड़े थे कि मेरे बुजुर्ग अमेरिकी मित्र श्री वाइले का सन्देश मिला—

"राबर्ट कालेज में आज एक उत्सव मनाया जा रहा है। यदि मन करे तो हमारे यहाँ आ जाएँ। नाश्ता करके वहाँ चल सकते हैं। कालेज देखने के साथ ही साथ उत्सव देखने का मजा मिलेगा।" सुझाव अच्छा था। शिरीन से क्षमा माँग कर वाइले जी के घर पहुँचा। राबर्ट कालेज इस्ताम्बूल के एक उपनगर बेबेक में कालासागर की ही दिशा में लगभग चार मील दूर था। पादरी दम्पत्ति और मैं उनकी सुपरिचित फाल्क्सवागेन में सवार हो दस बजे तक वहाँ पहुँच गये।

राबर्ट कालेज एक अमेरिकी कालेज है जिसकी स्थापना सन् १८६३ में राबर्ट नामक किसी ईसाई पादरी ने की थी। इस्ताम्बूल में और भी कई विदेशी शिक्षा संस्थाएँ हैं, जिनमें से अधिकांश पश्चिमी देशों की हैं। राबर्ट

कालेज इन सबसे पुराना और प्रसिद्ध है। पिछले सौ वर्षों में अन्य पाश्चात्य देशों की भाँति अमेरिका ने भी अपनी सभ्यता, शिक्षा, भाषा और धर्म के प्रचार में बड़ी फुर्ती दिखाई है। चीन और जापान में जिस तेजी से अमेरिकी शिक्षा और साम्प्रदायिक चर्चों का प्रसार हुआ है, वह सर्वविदित है। इस्लामी देशों में धार्मिक कारणों से यह काम अपेक्षाकृत कम हुआ है। फिर भी मध्य-पूर्व के कई देशों में, जहाँ पहले किसी प्रकार का अमेरिकी प्रभाव नहीं था, आज कई अमेरिकी मिशन, कालेज, अस्पताल और अन्य संस्थाएँ कायम हैं। लेबनान की राजधानी बैरूत का अमेरिकी विश्वविद्यालय तो विश्वविख्यात है। पाश्चात्य शिक्षा की इतनी ठोस, सम्पूर्ण और बड़ी संस्था पश्चिम को छोड़ और कहीं नहीं है। इन संस्थाओं का मूल अभिप्राय यह है कि उस देश में रहने वाले अमेरिकी लड़के-लड़कियों को—उसी प्रकार जर्मन, अंग्रेज या फ्रांसीसी लड़के-लड़कियों को भी—अपने ही देश की सभ्यता और धर्म के अनुरूप शिक्षा मिले। पर कालान्तर में ये संस्थाएँ पाश्चात्य तत्वों, मूल्यों, चाल-चलन, फैशन, भाषा, लहजे और जीवन शैली के प्रचार के केन्द्र बन जाती हैं। कई स्वाभिमानी देशों में इसकी प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था। चीन में, जिसने साम्यवाद जैसी घोर राष्ट्रवाद-विरोधी व्यवस्था को अपनाया है, आज भी जो राष्ट्रवाद और पश्चिम के प्रति घृणा का बोलबाला है उसका मुख्य कारण अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में ऐसी शिक्षा संस्थाएँ ही हैं जिन्होंने मानवता, समाज सेवा, धर्म और अन्तर्राष्ट्रीयता की ओट में प्राचीन चीनी सभ्यता को कुचलकर देश का पश्चिमीकरण करना चाहा था। जापान में वे एक अंश तक सफल भी हो गये हैं। भारत को भी सांस्कृतिक संकट का सामना करना पड़ा है और अब भी करना पड़ रहा है।

इसलिये राबर्ट कालेज में मैंने जो देखा और निरखा, उससे मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। उत्सव क्या था। केवल दो बड़े कमरों में विद्यार्थियों ने कुछ दुकानें खोल रखी थीं जिनमें खिलौने, शौक और सजने की चीजें, केक, मिठाई आदि हल्की फुल्की वस्तुएँ बिक रही थीं। कमरे ठसाठस भरे थे। सीधा चलना मुश्किल था। घुटन-सी थी। अचानक मुझे लगा कि अमेरिकी कालेज होते हुए भी, चारों ओर अंग्रेजी ही सुनाई देते हुए भी और 'ब्ल्यू जीन' में कसे लड़के-लड़कियों के मांसल नितम्बों की परस्पर निःशब्द टकराहट का समा

उपस्थित होते हुए भी अधिकांश लोग तुर्की हैं। मैंने श्री बाइले से इसकी चर्चा की, तो उन्होंने बताया कि कालेज में भी अधिकांश विद्यार्थी तुर्की ही हैं। हमारी बहस शुरू होने वाली थी कि उन्हें खयाल आया कि इस कालेज के नाई अच्छे बाल काटते हैं। और वे बाल कटाने चले गए।

वयोवृद्ध श्रीमती बाइले से मैंने कहा—"आप इस भीड़ में कहाँ तक धक्के खाएँगी। वैसे भी आपके लिए यह कोई नई जगह नहीं है। आप तो कहीं बैठ जाएँ और अपनी शक्ति अनुसार धीरे-धीरे टहल कर देखें मैं तब तक अपने ढंग से इस जमघट का अध्ययन कर डालूँ।" वह मेरा आशय समझ गई और मुस्कराकर मुझे रिहा कर दिया।

थोड़ी देर घूमने के बाद देखा कि एक गोल-मटोल तुर्की से दिखने वाले सज्जन केक-पेस्ट्री के खोमचे के सामने खड़े आँखों से कुछ नाप जोख रहे हैं। चेहरे से भी वैसे ही मधुर दिखे तो मैंने मुस्करा कर 'हैलो' कहा। तपाक से आपने हाथ उठाकर तुर्की में अभिवादन किया। मैंने उनका भ्रम दूर किया—"मैं तुर्की नहीं भारतीय हूँ। मुझे खेद है मैं आपकी भाषा नहीं बोल सकता।"

—"अच्छा, अच्छा। तो आप भारतीय हैं।"—इस बार उन्होंने अंग्रेजी में कहा। फिर हम दोस्त बन गए। हमारा वार्तालाप शुरू हो गया। मुझे ऐसे ही व्यक्ति की जरूरत थी। अच्छी तरह देर तक बातें हो सकें, यह सोचकर मैंने उन्हें केक खाने का निमन्त्रण दिया।

—"नहीं, धन्यवाद। मैं मधुमेह का शिकार हूँ। चीनी छोड़ दी है आप लीजिए, मेरी ओर से। आप मेरे देश में हैं तो मेरे मेहमान हुए।"

अब समझा वे बेचारे क्यों ऐसी हसरत भरी आँखों से मिठाइयों के रंग-रूप का सर्वे कर रहे थे। किसी जमाने में वे अवश्य इनके असाधारण गुणग्राही और ग्राहक रहे होंगे।

मेरे इस नये मित्र अजराफी मिरक्रीश का घर पास ही नीचे वाली सड़क के किनारे था। शहर में जूतों का बड़ा व्यवसाय था। उनके जूतों के कई ग्राहक राबर्ट कालेज के ही लोग थे। इस नाते उनका भी इस कालेज में आवागमन रहता था। तिस पर आज उत्सव का दिन। क्यों न आते। दूकान जाते समय कार बाहर छोड़ कर कुछ समय के लिए भीतर आ गए थे। मुझसे कहा कि यदि मैं शहर जाना चाहूँ, तो उनके साथ जा सकता हूँ। मैंने उन्हें

धन्यवाद देते हुए कहा—मैं अपने अमेरिकी दोस्त के साथ हूँ।....इस कालेज से आपका परिचय पुराना प्रतीत होता है। पड़ोसी भी हैं। यदि आपके पास समय हो तो क्या मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछ सकता हूँ?

—हाँ, हाँ। शौक से। मेरी दुकान पर चार आदमी काम करते हैं। चिन्ता न करें।

मैंने उनसे इस अमेरिकी कालेज की उपयोगिता, पाश्चात्य शिक्षा का वर्तमान पीढ़ी पर प्रभाव आदि पर प्रश्न पूछे। चालीस के करीब होते हुए भी वे मुझे काफी आधुनिक विचारों के व्यक्ति लगे। वे पश्चिमी या अमेरिकी सभ्यता की छूत से भयभीत नहीं मालूम हुए। उनकी बातों से यही लगा कि योरोपियन (या अमेरिकन) कालेजों का अपना एक विशेष स्तर होता है। शिक्षा प्रणाली, अनुशासन, सफाई, व्यवस्था आदि में वे तुर्की कालेजों से कहीं अधिक श्रेष्ठ होते हैं। इसीलिए बड़े घर के लोग अपने बच्चों को वहीं भेजते हैं। जिस शिष्टाचार, आभिजात्य और आधुनिकता की इन बच्चों को चाह और सामाजिक जरूरत रहती है वह उन्हें स्वदेशी विद्यालयों में नहीं मिलती इस प्रकार यह अमेरिकी कालेज धीरे-धीरे तुर्की विद्यार्थियों से भर गया। एक तरह से यह संस्थापकों के अपरोक्ष उद्देश्य की पूर्ति ही है। श्री मिरक्रीश के मतानुसार ऐसे विद्यालयों से तुर्की विद्यालयों को भी लाभ पहुँचा है। शहर के स्कूलों और कालेजों में एक नया वातावरण पैदा हो गया है। दूसरी ओर यह भी सच है कि ऐसी विदेशी संस्थाएँ राष्ट्रवादिता और स्वदेशी तत्वों के विरुद्ध भी—चाहे वह अनजाने ही हो—काम करती हैं। आजकल अन्तर्राष्ट्रीयता की मौसमी हवा कुछ ऐसी बह रही है कि विदेशी संस्थाओं की आलोचना करना अंध देशभक्ति, पिछड़ापन, कट्टरता, संकीर्ण मनोवृत्ति और अनुदारता का द्योतक माना जाता है। स्वयं भारत में ऐसी कई संस्थाएँ हैं, जो शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण काम कर रही हैं। परन्तु क्या यही पुनीत काम, जिसकी सदाशयता से प्रेरित होकर ईसा के हजारों अनुयायी दुनिया भर में भटकते फिरते हैं, उसी देश की भाषा और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में नहीं किया जा सकता? यदि अमेरिकी या फ्रांसीसी शिक्षाविद तुर्की स्कूलों के सुधार में योगदान दें तो कदाचित वह उनका अधिक रचनात्मक एवं उपकारी काम होगा।

उधर टर्की के विदेशी विद्यालयों में एक नई चीज दिखाई देने लगी है। पहले तुर्की विद्यार्थियों में से प्रायः सभी अमीर घराने के होते थे, क्योंकि शिक्षा का खर्च असाधारण होता था। अब यथेष्ट छात्रवृत्तियों के द्वारा साधारण श्रेणी के विद्यार्थियों को भी आकृष्ट किया जाता है। फलस्वरूप विदेशी सभ्यता की महामारी सरल और अपनी सभ्यता पर आस्था रखने-वाले परिवारों में भी फैलने लगी है। अन्त में श्री मिरक्रीश बोले —"असली बात तो यह है, जनाब कि हृदय से अन्तर्राष्ट्रीय कोई है ही नहीं। सब अपनी सभ्यता, भाषा और धर्म को इतना प्यार करते हैं कि वे मौका पाते ही दूसरों पर लाद देने का लोभ संवरण नहीं कर पाते। मैं किसी अमेरिकी या अंग्रेज को दोष नहीं देता। यह तो मानव स्वभाव बन गया है।"

"अगर ऐसी ही बात है," मैंने कहा—"तो आप लोग भी उसी स्वभाव के अनुरूप अपनी सभ्यता, भाषा और धर्म के मूल तत्वों की रक्षा करने की चेष्टा क्यों नहीं करते ? ऐसे स्वभाव का वह बेहतर प्रदर्शन होगा।" पर मेरा यह प्रश्न आधुनिक तुर्की के इतिहास से था। उत्तर भी मुझे उसी में ढूँढ़ना चाहिए।

तुर्की के आधुनिकीकरण को, जो वहाँ के लिए पश्चिमीकरण का पर्याय बन गया है, इतिहास का समर्थन प्राप्त है। आज चालीस वर्ष से तुर्की सरकार की नीति के अन्तर्गत सम्पूर्ण राष्ट्र की प्रवृत्ति और गति पश्चिम अर्थात् योरोप और अमेरिका की ओर ही रही है, यद्यपि तुर्की की भौगोलिक स्थिति, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक चेतना पूर्ण रूप से पौर्वात्य चाहे भले न हो, पौर्वात्य और पाश्चात्य के बीच की कड़ी की तरह अवश्य रही है। सन् १९२३ में तुर्की में क्रांति हुई। साढ़े छह सौ साल पुरानी औटोमन सल्तनत का अन्त हो गया। उसके स्थान पर गणराज्य की स्थापना हुई जिसके प्रथम अध्यक्ष कमाल पाशा अतातुर्क हुए। उनकी कल्पना में एक ऐसे तुर्की का चित्र था जो पश्चिमी राष्ट्र समाज का एक पूर्ण सदस्य, उतना ही नया, शक्तिशाली और आधुनिक था। साहस और विश्वास से उन्होंने अपने देश की परंपरागत सभ्यता की चीर-फाड़ शुरू की। अपने शासन-काल के मात्र पन्द्रह वर्षों में उन्होंने तुर्की समाज की हुलिया ही बदल दी। औरतें अपने सदियों पुराने बुरकों को फेंक पहली बार खुले आसमान के नीचे खुली हवा में निकलीं। इसके अलावा कई सामाजिक

सुधार और परिवर्तन हुए। अरबी, फारसी और फ्रेंच के स्थान पर केवल अंग्रेजी को वैकल्पिक विदेशी भाषा के रूप में मान्यता दी गई। अरबी लिपि को हटाकर रोमन लिपि का उपयोग अनिवार्य कर दिया गया। महान नेता के नेतृत्व में पश्चिम की हर चीज का स्वागत हुआ। राबर्ट कालेज जैसी संस्थाओं को पूरा प्रोत्साहन मिला। विरोध का, आलोचना का वहाँ प्रश्न ही नहीं उठा। धीरे-धीरे सर्वसाधारण के लिए भी पश्चिमी बातों को अपनाना स्वाभाविक हो गया।

श्री मिरक्रीश का मैंने बहुत समय ले लिया था। बोलते-बोलते वे कुछ थके से भी दिखाई देने लगे। शीघ्र ही मैंने उनसे विदा लेने के इरादे से कहा—आपसे आज बहुत सीखा। कष्ट के लिए क्षमा करेंगे। और मेजबान को मेहमान बना लेने का धन्यवाद।

उस सुन्दर पहाड़ी से हम लोग धीरे-धीरे नीचे उतर रहे थे। मेरी निगाह एक बार फिर चारों ओर बिखरे शहर पर दौड़ गई, बादल फटने लगे थे। देखा मस्जिदों की अनगिनत मीनारें चारों ओर बिखरी पड़ी हैं। उन्हें देख कर कानपुर और ग्लासगो (स्काटलैंड) में कारखानों की चिमनियाँ याद आ गईं। मन ही मन तय किया कि आज यहाँ की कुछ प्रसिद्ध मस्जिदों को देखूँगा। तभी श्रीमती बाइले की आवाज आई—देखो देखो। इस समय कालासागर साफ दिखाई दे रहा है। वहीं बासफोरस का अन्त है। और उसके बाद है एक अजीबो-गरीब दुनिया जिसे हम कभी भी न समझ पायेंगे। उनका इशारा सोवियत संघ की ओर था। इससे पहले कि मैं कुछ कहूँ श्री बाइले बोले—'तुम्हारी समझ में न आता होगा। डॉ० जायसवाल तो वहाँ हो आए हैं।" बात मजाकिया लहजे में कही गयी थी और मैंने उसे मजाक में ही खत्म हो जाने दिया।

गलाता पुल के चौराहे पर जब हम पहुँचे तो ग्यारह भी नहीं बजे थे। नाश्ता दोहरा हो गया था। अतएव भोजन की भी इच्छा नहीं थी। सोचा शिरीन भाई को भी साथ ले लूँ। बुजुर्ग साथियों को अभिवादन कर आगे बढ़ गया। पर अचानक मन में आया कि आज अकेला ही घूमूँ। दो दिन से हमेशा कोई न कोई साथ रहता है। मैं तो अकेला रहने और घूमने का ही आदी हूँ। शिरीन भाई घर पर अवश्य प्रतीक्षा कर रहे होंगे। पर देखा जायेगा। मन जोर मार रहा था कि अकेला, अजनबी की तरह कहीं भीड़ में

खो जाऊँ। किसी से बात न करूँ। केवल देखूँ, सोचूँ और लौट-लौटकर देखूँ और फिर सोचूँ। लोगों से टकराऊँ, कुछ भटकूँ, कुछ बहकूँ और कुछ भूलूँ। शिरीन जैसे संजीदे व्यक्ति के साथ यह संभव न होता। अन्त में स्वार्थी मन की जीत हुई। दो पुड़िया मूँगफली खरीदी और खाता हुआ कभी धीरे, कभी तेज, ऊपर नीचे, उतरता, चढ़ता, दुरबीन और कैमरों के भारी थैलों को कंधे से गर्दन में और गर्दन से बाजुओं में और फिर कंधे पर घुमा घुमाकर झुलाता हुआ नक्शे में रास्ता खोजता हुआ इस्ताम्बूल की विख्यात नीली मस्जिद जा पहुँचा।

इस्ताम्बूल को अक्सर 'पाँच सौ मस्जिदों का शहर' कहा जाता है। यह कहना तो मुश्किल है कि वहाँ इतनी सारी मस्जिदें हैं। पर उनकी संख्या इतनी अधिक है कि सैंकड़ों का भान होता ही है। ये सभी औटोमन शासन काल में बनवायी गयी थीं। इन्हीं में 'नीली मस्जिद' है जिसे सन् १६१६ में सुल्तान अहमद प्रथम ने बनवाया था। परन्तु नीले चमकदार पत्थरों से बनी होने के कारण सामान्यतया इसे 'नीली मस्जिद' कहा जाता है। कहते हैं इसके निर्माण में पूरे सात वर्ष लगे थे। संसार में केवल यही एक मस्जिद है जिसकी छै मीनारें हैं।

शहर की अधिकांश मस्जिदें सत्रहवीं, अठारहवीं सदियों की बनी हुई हैं और पुराने शहर के चहारदीवारों में बनायी गयी हैं। इबादतखाने को उन्नत स्थान मिलना ही चाहिए। अतः ये ऊंचे स्थान पर ही बनायी गयी हैं। बाद में इनके चारों ओर बस्तियाँ, स्कूल, अस्पताल, हमाम, फव्वारे, बाजार आदि बनते गये। इसी से आज भी शहर के सभी घनी आबादी वाले हिस्से बड़ी मस्जिदों के इर्दगिर्द ही हैं। १६६० में बनी मस्जिद, जिसे पता नहीं किस स क के कारण आज भी नयी मस्जिद कहा जाता है, शहर के बीचों-बीच गलाता पुल के चौराहे पर रेलवे स्टेशन के बगल में स्थित है। ऐसी ही अन्य कई मस्जिदें शहर के अत्यन्त व्यस्त मार्गों में हैं। तुर्की मस्जिदें आमतौर पर बहुत बड़ी नहीं होतीं। पर उनका आकार-प्रकार, भीतरी सजावट और स्थापत्य विशेष रूप से आकर्षक होते हैं। सत्रहवीं सदी तक तो इनकी वास्तु कला अरबी-फारसी मस्जिद निर्माण शैली से ही विकसित विशुद्ध तुर्की कला थी जिसे बाद में औटोमन शैली कहा जाने लगा था। लेकिन अठारहवीं सदी से इस

पर पाश्चात्य शैलियों का भी प्रभाव पड़ने लगा। भीतरी सजावट और कक्षों का निर्माण तो कुछ मस्जिदों में बिल्कुल इतालवी (रोमन) और गोथिक शैलियों पर आधारित है।

नयी मस्जिद के पास ही सुलेमानिए मस्जिद भी बनी है जो शहर की सबसे बड़ी और आलीशान मस्जिद है। यह सोलहवीं सदी में बनी थी और इसके भी बनवाने में सात बरस लगे थे। इसकी स्थिति इतनी विशिष्ट है कि शहर के प्रायः हर भाग से यह दिखाई देती है। इसकी दो-तीन परिक्रमाएँ लगाकर बाहर निकला तो सोचा इस्ताम्बूल विश्वविद्यालय भी देखता चलूँ। नक्शे में रास्ता खोजने में गलती होने के कारण पंद्रह-बीस मिनट चलने के बाद भी विश्वविद्यालय नहीं पहुँच सका। उल्टे नीली मस्जिद के पड़ोस में फिर जा पहुँचा। फुटपाथ पर खड़े होकर फिर अपने पथ का अनुसंधान करने लगा। देखा कि सुविख्यात 'सेंट गालियो' संग्रहालय वहाँ से मुश्किल से एक फर्लांग होगा। तो उसी को पहले क्यों न देख लिया जाये।

दो बज चुके थे। धूप निकलती दिखाई दे रही थी। भूख लग आयी थी। गले और कंधों पर झूलते हुए कैमरों और दुरबीन का बोझ अब अखरने लगा था। तथापि सोचा कि संग्रहालय में यदि दो घंटे भी न बितायें तो जाने से फायदा ही क्या! भोजन और विश्राम का विचार स्थगित कर मैं 'शेरगलियो' की ओर चला गया।

'शेरगलियो' वस्तुतः संग्रहालय में ही है। यह पुराने औटोमन सुल्तानों का महल है जहाँ से विशाल तुर्की साम्राज्य पर सदियों तक हुकूमत चलती रही थी। इसके अहाते में सिंहासन कक्ष, खजाना, बगदाद महल, पुस्तकालय, शाह इस्माइल का स्वर्ण सिंहासन, सुल्तानों के तमाम सिंहासन इत्यादि महत्व-पूर्ण वस्तुयें स्थायी रूप से प्रदर्शन के लिए रख दी गयी हैं। लेकिन इन सबसे अभूतपूर्व बात जो मुझे देखने को मिली वह थी ६००० चीनी पोर्सलीनों का संग्रह। ये पोर्सलीन चीन के सुंग और इवान राजवंशों के समय के हैं जिसका काल नौवीं से चौदहवीं सदी तक माना जाता है। संग्रहालय के कर्मचारियों से मालूम हुआ कि चीन के बाहर दुनिया के अन्य किसी देश में पोर्सलीनों का ऐसा विविध, प्राचीन और बड़ा संग्रह नहीं है।

गलियो से लगा हुआ एक पुरातत्व संग्रहालय है। इस्ताम्बूल जैसे प्राचीन

ऐतिहासिक नगरी के पुरातत्व संग्रहालय की विशेषता और महत्व स्वयसिद्ध थे। इसलिए उस ओर भी मुड़ पड़ा। भीतर पहुँचा ही था कि एक सज्जन ने आगे बढ़कर मेरा रास्ता रोकते हुए बड़े अदब से झुककर मुझे सलामी दी। उनके चेहरे पर ऐसा भाव था मानों वे मुझे वर्षों से जानते हों। मैंने प्रश्न भरी दृष्टि से उनकी ओर देखा तो साफ हिन्दी में बोले—आप जरूर हिन्दुस्तान के होंगे।

—मैं पाकिस्तान का भी हो सकता हूँ। मैंने कहा।

—हमारे लिए हिन्दुस्तान, पाकिस्तान में कोई फर्क नहीं है। दो शरीर एक दिल हैं—कहकर उन्होंने अपनी बात आगे चलायी।

—मेरा नाम इब्राहीम है। मैं यहाँ गाइड का काम करता हूँ। आठ भाषाएँ बोलता हूँ। तुर्की, अंग्रजी, अरबी, फारसी, इतालवी,फ्रैंच, जर्मन, और हिन्दी आप सुन ही रहे हैं·······।

—मैंने टोका—एक उर्दू भी। हिन्दी, अरबी और फारसी जानने वाला उर्दू खुद-ब-खुद बोलने लगता है।

—सो तो आप ठीक कहते हैं। पर हिन्दुस्तान, पाकिस्तान की तरह हिन्दी, उर्दू को भी मैं एक मानता हूँ।·······

जाहिर था इब्राहीम महाशय उस मसाले के बने थे जिससे तर्क की दो पहिया गाड़ी टकराने के पहले ही खड़ी हो जाती है। उनकी तकरीर की मैंने मुस्कराकर हामी भरी तो वह फिर कहने लगे—कहें तो संग्रहालय की एक-एक चीज का इतिहास सुनाते हुए आपको चारों ओर घुमा दूँ। अधिक खर्च नहीं पड़ेगा।

इसके साथ ही उन्होंने पता नहीं कितने भारतीयों और पाकिस्तानियों के रटे हुए नाम गिना दिये जिन्होंने उनकी लम्बी सलामी और लाजवाब तकरीरों का प्रतिदान उनकी सेवाएँ स्वीकार करके दिया था।

—इब्राहीम भाई, बात यह है कि चार बज गये हैं। मुश्किल से घण्टा भर बाकी है। इसमें आपकी इतिहास-चर्चा सुनूँगा या संग्रहीत वस्तुओं का निरीक्षण करूँगा? मैं यहाँ पहली बार और कौन जाने अन्तिम बार आया हूँ। इसलिये भरसक जितना हो सके देख जाना चाहता हूँ। अन्यथा आपके ऐसे खूबसूरत अन्दाजों से कौन मुँह फेर सकता है? पर यह तो बताइये आपने ऐसी साफ हिन्दी सीखी कहाँ से? क्या आप कभी भारत गए हैं?

—जी नहीं, मैं तुर्की के बाहर कभी नहीं गया। आठों भाषाएँ मैंने केवल पुस्तकों से सीखी हैं। दोस्तों और फिल्मों ने भी मदद की। संग्रहालय के काम से कुछ ऐसी आशनाई है कि बिना भाषाएँ सीखे पेट नहीं पलता। यात्री लोग परदेश में अपनी भाषा सुनकर खुश हो जाते हैं। उनकी खुशी से हमें भी खुशी हासिल होती है।—यहाँ यह कह दूँ कि इब्राहीम महाशय उर्दू नहीं सच-मुच ही हिन्दी बोलते थे। चलते समय जब मैंने आदाब अर्ज किया तो उन्होंने 'नमस्ते' कहकर उत्तर दिया और बोले—यहीं हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का फर्क मालूम होता है।

—नहीं, यह फर्क हिन्दू मुसलमान का है। भारत में अब भी चार करोड़ मुसलमान रहते हैं। भोपाल, लखनऊ और रामपुर जैसे शहरों में आपको नमस्ते से आदाब अर्ज की आवाज कम नहीं सुनाई पड़ेगी।—और फिर मैं आगे बढ़ गया। पीछे सुनाई पड़ा इब्राहीम भाई किसी को इताल्वी में अब वही रागिनी सुना रहे थे। मैं सोच रहा था यदि मैंने अपने को पाकिस्तानी कहा होता, तो क्या-क्या सुनने को मिलता।

संग्रहालय से निकला तो भूख के मारे पैर डगमगा रहे थे। देखा कि सामने ही एक ठेले वाला 'चैस्टनट' भूँज-भूँज कर बेच रहा है। पिछले चार साल से यह मेरी प्रिय चीज रही है। पहली बार इससे पेरिस में परिचय हुआ था। हालैण्ड में, जहाँ मेरा स्थाई निवास था, यह उपलब्ध न होने के कारण बाहर अधिक मात्रा में जब भी यह मिलता छक कर खाता। जो इस फल को जानते हैं, वे यह भी जानते हैं कि इसे छील कर और कुचल कर खाने में समय लगता है।

उधर मुझे शिरीन के घर पहुँचने की भी जल्दी थी। पता नहीं वे मेरे बारे में क्या सोच रहे होंगे। इधर ओवरकोट भी नहीं पहने था जिसकी थैलों जैसी जेबों में बहुत सारे भर लेता और खाता हुआ चलता जाता। मैं इसी पशोपेश में खड़ा ठेले वाले को देख रहा था कि वह मुस्करा कर दो-तीन चैस्टनट उठा कर अंग्रेजी में बोला—दिस गुड, वेरी गुड। यू लाइक ?—उसके अनुरोध ने मुझे तत्काल निर्णय करने की प्रेरणा दी। बैग में से कैमरे निकाल कर गले में डाल लिये और चमड़े की वह 'झोली' उसकी ओर बढ़ा कर मैंने कहा—भर दो इसे—मुश्किल से वह समझ पाया कि मैं इतने सारे चैस्टनट चाहता हूँ। आस-

पास खड़े चार-छः लोगों के लिये, जिन्हें मैं अभी संग्रहालय में देख आया था, यह अच्छा तमाशा बन गया। उन्होंने तुर्की में या शायद अरबी में कुछ कहा जो मैं समझ न सका। खोमचे वाले ने अंग्रेजी उपर्युक्त पाँच शब्दों से अधिक नहीं सीखी थी जो मुझे समझा सकता। वे लोग शायद यह पूछना चाहते होंगे, मैंने सोचा कि इतने तमाम चैस्टनट मैं खाने के लिये ले जा रहा हूँ या कहीं बेचने के लिए। यह तो शिरीन के घर, जो वहाँ से करीब आधा घंटे पैदल का रास्ता था, पहुँचने पर मुझे एहसास हुआ कि मैंने पूरा खोमचा खरीद डाला था। ... अब भी आधा भरा था।

पहुँचते ही शिरीन भाई से क्षमा माँगी। पर वे कुछ गम्भीर ही बने रहे। डर था कहीं नाखुश न हों। पर बाद में मालुम हुआ कि वह मेरे बारे में आवश्यकता से अधिक चिन्ता करते रहे। दो बार मेरे अड्डे पर भी हो आये थे। उन्हें डर था कहीं मैं खो न गया होऊँ। बेचारे सहज स्नेहवश मेरे अभिभावक बन बैठे थे। वह भी इतने निष्ठावान कि उन्हें इसका खयाल ही न रहा कि मैं पिछले पाँच वर्ष से योरोप और अमेरिका के कौने-कौने की खाक छानता रहा हूँ। खोकर जाऊँगा कहाँ।

अंधेरा होने जा रहा था। मैंने प्रस्ताव किया कि बाहर 'अतातुर्क बुलेवार्ड' की ओर चला जाए। वहीं कहीं खाना भी खा लिया जाएगा। गली छोड़ हम लोग सड़क पर आए, तो पैदल चलने वालों से सड़क खचाखच भरी थी। दिन भर का काम समाप्त कर लोग घर जा रहे थे। बहुत कम लोग बस, टैक्सी या साइकिल पर दिखाई दिए। शिरीन से मैंने कहा—मुझे लगता है कि तुर्की लोग पैदल चलने के शौकीन होते हैं। ये तमाम लोग काम पर से लौट रहे हैं। फिर भी किसी में घर पहुँचने की बेताबी नहीं है।

—आपका अन्दाजा ठीक है। हम लोग वाकई मटरगस्ती पसन्द लोग हैं। इनमें से तमाम लोग यहाँ से दो-तीन मील दूर रहते होंगे। पर कोई हर्ज नहीं सात-आठ बजे तक पहुँच ही जाएँगे। ········मेरे खयाल से इसका एक कारण यह भी है कि आधुनिक तुर्की लोग परिवारपरस्त नहीं होते। वैसे भी इस्ताम्बूल में जगह की इतनी तंगी है कि हजारों लोग गन्दे, शिकस्त और अंधेरे घरों में रहते हैं। गरीबी है सो अलग। इसलिए घर लौटने के पहले यदि दो-एक घण्टे बाजार की रंगीनी में गुजार लिए जाएँ तो क्या बुरा है।

हमारे नवयुवक तुर्की मित्र इन शब्दों में अपनी ही भावनाओं को व्यक्त कर रहे थे। गरीब देश के बड़े शहरों में यह समस्या कहाँ नहीं है। कलकत्ता, दिल्ली और कानपुर की सड़कों पर बारह-एक बजे तक लोगों का पान, सिगरेट और चाय के लिए मँडराते रहना और सिनेमा के दूसरे शो में हमेशा भीड़ रहना भी इसी समस्या की ओर संकेत करते हैं। पारिवारिक जीवन और गरीबी से हमारी चर्चा फिसल कर न जाने कैसे साम्यवाद पर आ अटकी। क्यूबा, चीन-भारत संघर्ष का भी जिक्र हुआ। केरल में भूतपूर्व कम्युनिस्ट सरकार का भी प्रसंग उठा। उस दिन शिरीन महाशय में भारत के प्रति बड़ा प्रेम, ममत्व और सहानुभूति दिखाई दी थी। उसे यादकर अचानक मेरे मन में एक प्रश्न उठा। मैंने उनसे पूछा—बन्धुवर, यदि आज भारत किसी कारणवश कम्युनिस्ट हो जाए तो आपका उसके प्रति क्या रुख होगा ?

छूटते ही वे बोले—अरे कम्युनिस्ट ! मैं उसी वक्त से आपके देश से नफरत करने लगूंगा।

मैंने पलट कर बिजली के तीव्र प्रकाश में उस भोले, प्रियदर्शी चेहरे को देखा जो इस अप्रत्याशित प्रश्न से तमतमा उठा था। वे कुछ और कहना चाहते थे कि बगल की एक दूकान की खिड़कियों में मैंने रंग-बिरंगी मिठाइयाँ, हलवे और उम्दा दही सजी देखी। हिन्दुस्तानी मन ही तो ठहरा। चल गया।

—भई, रोटी आदि का भोजन तो रोज करते हैं। आज अपने राम मिठाई और दही का 'डिनर' करेंगे। आइये, इस दूकान पर धावा बोल दें। जिस तेजी से शिरीन का गोरा चेहरा लाल हुआ था, उससे भी अधिक तेजी से वह लाल से गोरा हो गया। हलवे-दही से अनुप्राणित मन और भरपूर पेट ने हमें साम्यवाद का भयानक भय भुलवा दिया। परिवार, गरीबी और अंधेरे शिकस्त घरों की समस्या फिलहाल धूमिल पड़ गई। खूब जमकर जो खाया था। मैंने भी अनुभव किया कि मेरी इस्ताम्बूल यात्रा समाप्ति पर है।

सबेरे श्री बाइले और शिरीन भाई ने जब हाथ मिलाकर विदा दी तो पानी बरस रहा था। विमान हमें जब लेकर उड़ा तो पानी बरस रहा था। पर बादलों के उस पार खूब ऊँचे, सूरज मुक्त होकर चमक रहा था। सफेद, पीली या नारंगी किरणें मानो हमारे विमान को दबाये डाल रही थीं। इस्ता-

म्बूल शहर, जो एक पैर योरोप में और दूसरा एशिया में रखे सदियों से लोगों को दो संस्कृतियों, दो महाद्वीपों के महामिलन का सन्देश सुनाता रहा है, पता नहीं कब बादलों के तले चुपचाप हमसे मीलों पीछे छूट गया था। न जाने कब हम योरोप छोड़ चिरपरिचित एशिया में दाखिल हो चुके थे। शायद नीलाकाश और उन्मुक्त प्रकाश पुंज हमें इसकी सूचना देने को बार बार विमान की खिड़कियों से झांक-झांक जाते थे।